गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037
July-Aug. 2026
Volume 14, Issue 7-8

Impact Factor :
7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

Editor :
Dr. Rekha Soni
Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.



संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com



संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 14 अंक : 7–8, भाग–1 जुलाई–अगस्त : 2026 आईएसएसएन : 2321–8037

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर, राज.

प्रधन सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

अंतर्राष्ट्रीय सम्पादक मण्डल :
डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।
शिओंग छन श्यू, चीन।
डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पाँडे
साहित्यकार, शिक्षाविद, नीदरलैंड।
डॉ. सुनीता शर्मा
हिन्दी साहित्यकार, कवयित्री, संपादक
एवं शिक्षाविद् मेलबोर्न, ऑस्ट्रेलिया
डॉ. अनुरुद्ध बायन
मध्य कामरूप कॉलेज, सुभा
जिला बारपेटा, असम।
डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स एंड
कम्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक
कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।
श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर,
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, साहिबजादा
अजित सिंह नगर, मोहाली, पंजाब।
कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार, अनुवादक, यूक्रेन।

डॉ. हेमराज न्यौपाने
काठमाण्डु, नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

डॉ. मधुबाला
राजकीय महाविद्यालय, लाखनमाजरा।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा
शिक्षा संकाय, टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला
महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, लखनऊ।

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग**, एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज**, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा। सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

Impact Factor : 7.834

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	07–07
2.	कोमल गांधार नाटक में नारी अस्मिता और आत्मसंघर्ष का विमर्श	डॉ. शालिनी सी.	08–17
3.	अनुराधा बेनीवाल की यादों के दस्तावेज : लोग जो मुझमें रह गए	भँवरी महरानिया	18–21
4.	आधुनिक स्त्री की चेतना और स्वर : मंजुल भगत के उपन्यास ''टूटा हूआ इन्द्रधनुष'' के परिप्रेक्ष्य में	अंजली प्रकाश, डॉ. श्रीजा जी. आर	22-25
5.	The Politics of Vilification : Eurocentrism, Ethnocentrism, and the Discursive Construction of India as an Intolerant Civilization	Mr. Hari Shanker Singh	26-43
6.	ग्रामीण रोजगार का सामाजिक व्यवस्था पर प्रभाव	डॉ. रंजना सिंह	44–47
7.	TRAINING FOR YOUTH IN TRANSISITION : A HOLISTIC DEVELOPMENT MODEL TO FOSTER CONFIDENCE, COURAGE AND CHARACTER	Vikram Kumar	48-54
8.	अद्वैत वेदान्त परम्परागत गुरू–शिष्य सम्बन्ध की वर्तमान में प्रासंगिकता	गायत्री मिड्ढ़ा	55–58
9.	Displacement And Identity in Bengal : Narratives of Refugee Lives Across Borders	Sagar Sarker	59-65
10.	প্রথম প্রতিশ্রুতি উপন্যাসে নারীমুক্তি ও সমাজ-বাস্তবতা	রতন বর্মন	66-70
11.	POLITICS OF AUTONOMY IN SIXTH SCHEDULE AREAS IN NORTHEAST INDIA	Tina Kimngaiting Vaiphei	71-77
12.	स्वयं सहायता समूह और महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण	सोनम डावर, डॉ. वर्षा पटेल	78–85
13.	An Analytical Study of India- Bangladesh Relations: Recent Challenges and Possibilities	Prof. Bina Rai, Nikhil Kumar Rai	86-94
14.	Digital Governance and the Transformation of the Welfare State :A Case Study of the Parivar Pehchan Patra (PPP) in Haryana	Kamal	95-106
15.	रीवा जिले में महिला उद्यमिता एवं स्वरोजगारमूलक योजनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. मनीष शुक्ला, शालिनी श्रीवास्तव	107–116

16.	1857 की क्रांति से 1947 तक : स्वतंत्रता संग्राम में मुसलमानों का योगदान	खालिक हुसैन	117–122
17.	अतिपिछड़ा वर्ग, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक राजनीति : लालू प्रसाद यादव युग का मूल्यांकन	आरती कुमारी साह, नवल कुमार	123–126
18.	आधुनिक नारीवाद और ताराबाई शिन्दे का वैचारिक दर्शन : एक अवलोकन	डॉ. अरूण कुमार	127–131
19.	नक्सलवाद : समस्या एवं निराकरण हेतु सुझाव	डॉ. जय शंकर पाण्डेय	132–136
20.	**Role of Women in India's Freedom Movement and Political Development**	**Dr. Ansari Naseem Jameel Ahmed**	**137-144**
21.	**The Role of Microfinance in India's Economic Development and Financial Inclusion**	**Dr. Sanjeev Kumar Bansal, Akashdeep, Suhani Bharadiya**	**145-161**
22.	'छोटा जादूगर' और 'परायी प्यास का सफर' कहानियों में निहित बाल श्रम	उपासना	162–168
23.	**Corporate Governance and Corporate Social Responsibility : A Legal Perspective**	**Dr. Anita Parmar**	**169-190**
24.	**Caste, Untouchability and the Law: Its Origin and Contemporary Forms**	**Mukesh Kumar**	**191-198**
25.	**DR. B. R. AMBEDKAR : A BEACON OF HOPE FOR HUMAN RIGHTS IN INDIA**	**Maheshpal**	**199-205**
26.	**Okakura Tenzing interaction with Rabindranath Tagore**	**Ankur Majumdar**	**206-216**
27.	प्राचीन भारत में श्रेणी व्यवस्था और बौद्ध धर्म का अर्न्तसम्बन्ध	विजय कुमार	217–221

सम्पादक की कलम से.....

साहित्य और समाज : समय के संग संवाद

वर्तमान दौर में जब समाज बहुआयामी संकटों और संभावनाओं के द्वंद्व में फंसा हुआ है, साहित्य की भूमिका और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है। साहित्य केवल कल्पनाओं का ताना–बाना नहीं है, यह समाज की आत्मा का आईना है। 'गीना शोध संगम' के जुलाई–अगस्त अंक में हम इसी आत्मा की पड़ताल करने का विनम्र प्रयास कर रहे हैं – एक ऐसे विमर्श की ओर जो न केवल ज्ञानवर्धक हो, बल्कि संवेदनाओं को भी स्पर्श करे।

यह अंक साहित्य, समाज और संस्कृति की त्रिवेणी में डुबकी लगाने का आमंत्रण है, जहां विचार, संवेदना और विवेक के साथ विभिन्न लेखकों ने समसामयिक विषयों की पड़ताल की है। आज जब तकनीक ने सूचनाओं को तेजी से फैलाना शुरू कर दिया है, तब यह जरूरी हो गया है कि हम इस प्रवाह में मूल्य, मर्यादा और मौलिकता को बनाए रखें। गीना शोध संगम का यह विशेषांक उसी प्रयोजन की एक कड़ी है – जहाँ शोध, समीक्षा और सृजन के तीनों स्तरों को संतुलित दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।

साहित्य महज अक्षरों का संकलन नहीं, बल्कि एक कालबद्ध चेतना है जो युगों को पार कर संवेदना की मशाल थामे चलती है। कबीर, तुलसी, मीरा से लेकर प्रेमचंद, अज्ञेय, नागार्जुन और समकालीन कवियों तक हर युग में साहित्य ने न केवल सामाजिक विसंगतियों को रेखांकित किया, बल्कि वैकल्पिक सोच को जन्म भी दिया। इस अंक में प्रकाशित शोध आलेखों और समीक्षाओं में यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि साहित्य आज भी मनुष्य को मनुष्यता की ओर लौटने का आमंत्रण देता है। पत्रिका के इस अंक में शामिल शोधार्थियों और लेखकों ने भारतीय साहित्य के विविध पक्षों 'जैसे दलित विमर्श, नारी चेतना, ग्रामीण यथार्थ, शिक्षण में साहित्य की भूमिका, और वैश्विक साहित्य में भारतीयता' पर अत्यंत गंभीर और संतुलित विवेचन किया है। उनकी यह विशेषता रही कि उन्होंने न केवल सैद्धांतिक विमर्श किया, बल्कि व्यावहारिक पहलुओं को भी सामने रखा। यह शोध न केवल विद्वानों के लिए उपयोगी हैं, बल्कि विद्यार्थियों और सामान्य पाठकों को भी दिशा देने में सक्षम हैं।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि साहित्य समाज से कटकर जीवित नहीं रह सकता और न ही समाज साहित्य से विमुख होकर अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा रह सकता है। इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। चाहे वह ग्रामीण परिवेश की समस्याओं पर आधारित लघु कथाएँ हों या स्त्री–विमर्श पर केंद्रित आलोचनात्मक लेख, सभी में यह अनुभव किया जा सकता है कि साहित्यकार अपने समय की नब्ज को पहचान रहा है। 'गीना शोध संगम' का यह अंक केवल एक साहित्यिक संकलन नहीं, बल्कि एक संवाद है – शोध और सृजन के मध्य। यह संवाद न केवल पाठक और लेखक के बीच होता है, बल्कि समाज और विचार के मध्य भी एक सेतु का कार्य करता है। इस अंक की विशेषता यह भी है कि इसमें रचनात्मक साहित्य के साथ–साथ विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण को भी समान महत्व दिया गया है।

अंत में, हम गीना शोध संगम के सभी लेखकों, शोधार्थियों, संपादन सहयोगियों और पाठकों का आभार प्रकट करते हैं, जिनकी सहभागिता इस अंक को समृद्ध बनाती है। हम आशा करते हैं कि यह अंक आपको न केवल विचारों में नवीनता देगा, बल्कि आपको आपके सामाजिक सरोकारों के प्रति भी और अधिक सजग करेगा। साहित्य–संधान–संवाद की यह परंपरा यों ही चलती रहे – इसी मंगलकामना के साथ...

–संपादक

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 08–17

कोमल गांधार नाटक में नारी अस्मिता और आत्मसंघर्ष का विमर्श

डॉ. शालिनी सी.
सह–प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
राजकीय महिला महाविद्यालय, वझुथाकौड, तिरुवनंतपुरम, केरल–695014

सारांश :

शंकर शेष का कोमल गांधार आधुनिक हिन्दी नाटक में नारी–अस्मिता और आत्मसंघर्ष के विमर्श का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। यह नाटक महाभारत की गांधारी के चरित्र को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हुए स्त्री के अस्तित्व, अधिकार–बोध और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध उसके मौन प्रतिरोध को अभिव्यक्त करता है। प्रस्तुत अध्ययन में उपलब्ध शोध–पत्रों और समीक्षात्मक अध्ययनों के आधार पर नाटक में निहित नारी–चेतना, अस्मिता–बोध तथा आत्मसंघर्ष के विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गांधारी केवल एक पौराणिक पात्र नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय, दमन और उपेक्षा का सामना करने वाली संवेदनशील स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। उसका संघर्ष व्यक्तिगत पीड़ा से आगे बढ़कर स्त्री–स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और सामाजिक न्याय के प्रश्नों को उद्घाटित करता है। यह नाटक आधुनिक स्त्री–विमर्श की दृष्टि से अत्यंत प्रासंगिक है तथा समकालीन समाज में स्त्री–अधिकारों और लैंगिक समानता पर गंभीर चिंतन के लिए प्रेरित करता है।

मुख्य शब्द : कोमल गांधार, शंकर शेष, नारी अस्मिता, आत्मसंघर्ष, स्त्री–विमर्श, गांधारी, पितृसत्ता।

परिचय :

हिन्दी नाट्य साहित्य में मिथकीय पात्रों के पुनर्पाठ की परंपरा ने आधुनिक सामाजिक और वैचारिक प्रश्नों को अभिव्यक्त करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसी परंपरा में शंकर शेष का नाटक कोमल गांधार एक विशिष्ट कृति के रूप में स्थापित है। यह नाटक महाभारत की गांधारी के चरित्र को केंद्र में रखकर नारी–अस्मिता, आत्मसंघर्ष, सामाजिक अन्याय और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विभिन्न आयामों को उजागर करता है। शंकर शेष ने गांधारी को केवल एक आदर्श पत्नी या त्यागमयी स्त्री के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसे एक संवेदनशील, विचारशील और आत्मसम्मान से परिपूर्ण स्त्री के रूप में चित्रित किया है, जो अपने अस्तित्व और अधिकारों के लिए निरंतर संघर्ष करती है।

भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति लंबे समय तक सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताओं द्वारा नियंत्रित रही है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री की स्वतंत्रता, निर्णय क्षमता और व्यक्तित्व विकास को सीमित करने का प्रयास किया। कोमल गांधार में गांधारी का जीवन इसी व्यवस्था की विडंबनाओं का प्रतीक बनकर

उभरता है। उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध किया जाता है तथा उससे संबंधित महत्वपूर्ण तथ्यों को उससे छिपाया जाता है। यह स्थिति स्त्री की अस्मिता और उसके अधिकारों के हनन को स्पष्ट करती है। गांधारी द्वारा स्वयं अपनी आंखों पर पट्टी बांध लेना केवल पति के प्रति समर्पण का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह उस सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध एक मौन प्रतिरोध भी है जिसने उसके जीवन के निर्णय स्वयं किए।

नाटक में नारी अस्मिता का प्रश्न केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह व्यापक सामाजिक संरचना और सत्ता–संबंधों से जुड़ जाता है। गांधारी का आत्मसंघर्ष उसके भीतर चल रहे भावनात्मक, नैतिक और वैचारिक द्वंद्व का प्रतिनिधित्व करता है। वह एक ओर पत्नी, माता और रानी के दायित्वों का निर्वाह करती है, वहीं दूसरी ओर अपने अस्तित्व, सम्मान और स्वतंत्र पहचान की खोज भी करती है। यही कारण है कि कोमल गांधार आधुनिक स्त्री–विमर्श की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण नाटक माना जाता है।



चित्र 1 : अध्ययन का वैचारिक ढाँचा

समकालीन संदर्भ में भी यह नाटक प्रासंगिक है क्योंकि आज भी अनेक महिलाएं सामाजिक रूढ़ियों, लैंगिक भेदभाव और असमान अवसरों का सामना कर रही हैं। इस प्रकार कोमल गांधार न केवल एक मिथकीय कथा का पुनर्सृजन है, बल्कि स्त्री चेतना, अस्मिता और आत्मसंघर्ष के प्रश्नों को गहनता से प्रस्तुत करने वाला सशक्त नाटक भी है।

साहित्य समीक्षा :

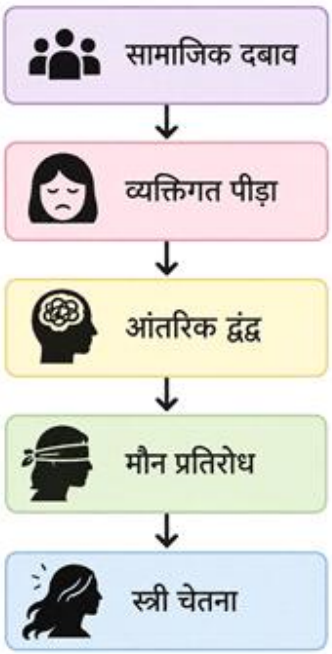
शंकर शेष का नाटक कोमल गांधार महाभारत की गांधारी को केवल पौराणिक पात्र के रूप में नहीं, बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में छली गई, अपमानित और आत्मसंघर्षरत स्त्री के रूप में प्रस्तुत करता है। उपलब्ध शोध–पत्रों में इस नाटक को नारी–अस्मिता, स्त्री–शोषण और मिथकीय पुनर्पाठ के महत्वपूर्ण उदाहरण के रूप में देखा गया है। 'पुरुष सत्तात्मक समाज में गांधारी की नारी अस्मिता' शीर्षक अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि गांधारी का अंधत्व स्वैच्छिक त्याग नहीं, बल्कि सामाजिक–राजनीतिक छल के विरुद्ध मौन प्रतिरोध है। इसी प्रकार 'कोमल गांधार में रंगमंचीय संभावनाएं' में नाटक की रंगभाषा, संवाद और मंचीय संरचना को गांधारी की आंतरिक वेदना को व्यक्त करने वाला प्रभावी माध्यम माना गया है।

शोधकर्ताओं ने यह भी रेखांकित किया है कि शंकर शेष ने महाभारत की कथा को दोहराने के बजाय उसे आधुनिक स्त्री–चेतना से जोड़ा है। गांधारी का विवाह, उसकी इच्छा की उपेक्षा, पति की वास्तविकता छिपाना

और राजसत्ता द्वारा उसके जीवन का उपयोग– ये सभी प्रसंग नारी की वैयक्तिक अस्मिता के हनन को उजागर करते हैं। 'डॉ. शंकर शेष के नाटकों में मुखरित स्त्री स्वर' में शेष के स्त्री–पात्रों को परंपरा के निष्क्रिय प्रतीक नहीं, बल्कि शोषण के विरुद्ध संवेदनात्मक और वैचारिक प्रतिरोध की आवाज माना गया है।

हिन्दी नाटकों में स्त्री चेतना पर हुए व्यापक अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु युग से लेकर आधुनिक नाटक तक स्त्री–पात्र धीरे–धीरे दया, त्याग और सहनशीलता की छवि से बाहर आकर आत्मसम्मान, अधिकार–बोध और विद्रोह की दिशा में बढ़ते हैं। इस संदर्भ में कोमल गांधार की गांधारी विशेष है, क्योंकि उसका संघर्ष बाहरी विद्रोह से अधिक आंतरिक प्रतिरोध का संघर्ष है। वह अपने साथ हुए अन्याय को पहचानती है, किंतु राजसत्ता, विवाह–संस्था और मातृत्व के दबावों के बीच उसका व्यक्तित्व लगातार कुचला जाता है।

मिथकीय नाटकों पर हुए शोध, विशेषकर माधवी और अन्य महाभारत–आधारित नाटकों से संबंधित अध्ययनों में यह बात सामने आती है कि आधुनिक हिन्दी नाटककारों ने मिथक का प्रयोग स्त्री–शोषण, सत्ता और नैतिक पाखंड को उजागर करने के लिए किया है। इस दृष्टि से कोमल गांधार केवल गांधारी की करुण कथा नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था की आलोचना है जो स्त्री की देह, इच्छा और निर्णय को परिवार, वंश और सत्ता के हित में नियंत्रित करती है।



चित्र 2 : गांधारी का आत्मसंघर्ष मॉडल

अतः पूर्ववर्ती शोधों का समग्र निष्कर्ष यह है कि कोमल गांधार में नारी अस्मिता का प्रश्न केवल व्यक्तिगत पीड़ा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह पितृसत्ता, सत्ता–राजनीति, विवाह–संस्था और स्त्री की स्वायत्तता से जुड़ा व्यापक विमर्श है। गांधारी का आत्मसंघर्ष आधुनिक स्त्री की उस चेतना का प्रतीक है जो अन्याय को पहचानती है, अपनी अस्मिता की खोज करती है और मौन के भीतर भी प्रतिरोध की भाषा रचती है।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. शंकर शेष के नाटक कोमल गांधार में नारी अस्मिता के विभिन्न आयामों का अध्ययन करना।
2. गांधारी के चरित्र में निहित आत्मसंघर्ष, प्रतिरोध और आत्मसम्मान की भावना का विश्लेषण करना।

3. नाटक में चित्रित पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था तथा उसके स्त्री जीवन पर प्रभाव का मूल्यांकन करना।
4. कोमल गांधार में प्रस्तुत स्त्री–चेतना और आधुनिक स्त्री–विमर्श के अंतर्संबंधों का परीक्षण करना।
5. नाटक के माध्यम से स्त्री की स्वतंत्र पहचान, अधिकार–बोध और सामाजिक न्याय संबंधी प्रश्नों को समझना तथा उनकी समकालीन प्रासंगिकता को रेखांकित करना।

शोध पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य शंकर शेष के नाटक कोमल गांधार में नारी अस्मिता और आत्मसंघर्ष के विमर्श का विश्लेषण करना है। इस शोध में द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है, जिनमें शोध–पत्र, समीक्षात्मक लेख, पुस्तकें, शोध–प्रबंध तथा स्त्री–विमर्श और हिन्दी नाट्य साहित्य से संबंधित प्रकाशित सामग्री शामिल हैं। नाटक के मूल पाठ का गहन अध्ययन कर उसमें निहित स्त्री–चेतना, पितृसत्तात्मक संरचना, सामाजिक असमानता तथा गांधारी के आत्मसंघर्ष से जुड़े प्रसंगों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक पद्धति का प्रयोग करते हुए उपलब्ध साहित्य के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं। इस प्रकार शोध का आधार साहित्यिक पाठ और प्रामाणिक अकादमिक स्रोतों का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन है।

कोमल गांधार : कथावस्तु एवं नाट्य-परिप्रेक्ष्य :

शंकर शेष का कोमल गांधार महाभारत की कथा पर आधारित एक महत्वपूर्ण आधुनिक हिन्दी नाटक है, जिसमें गांधारी के जीवन और उसके अंर्तद्वंद्व को केंद्र में रखा गया है। नाटक की कथावस्तु गांधारी के विवाह, उसके सपनों, भावनात्मक संघर्षों तथा हस्तिनापुर की राजसत्ता के बीच उत्पन्न परिस्थितियों के इर्द–गिर्द विकसित होती है। गांधारी को यह ज्ञात नहीं होता कि उसका विवाह नेत्रहीन धृतराष्ट्र से होने जा रहा है। सत्य का पता चलने पर वह गहरे आघात का अनुभव करती है और अपनी आंखों पर पट्टी बांध लेने का निर्णय करती है। यह निर्णय केवल पति के प्रति समर्पण नहीं, बल्कि उसके साथ हुए छल और अन्याय के विरुद्ध एक मौन प्रतिरोध के रूप में भी देखा जाता है।

नाटक का नाट्य–परिप्रेक्ष्य आधुनिक दृष्टिकोण से मिथकीय पात्रों की पुर्नव्याख्या पर आधारित है। शंकर शेष ने गांधारी को पारंपरिक आदर्श नारी की छवि से आगे बढ़ाकर एक संवेदनशील, विचारशील और आत्मसम्मानी स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया है। नाटक में सत्ता, परिवार, नैतिकता और स्त्री–अस्तित्व के प्रश्नों को गहराई से उठाया गया है। संवादों और घटनाओं के माध्यम से यह दिखाया गया है कि किस प्रकार सामाजिक और राजनीतिक संरचनाएं स्त्री की स्वतंत्रता और पहचान को प्रभावित करती हैं।

कोमल गांधार का नाट्य–परिप्रेक्ष्य समकालीन स्त्री–विमर्श से जुड़ता है, जहाँ गांधारी का चरित्र स्त्री–अस्मिता, आत्मसंघर्ष और प्रतिरोध का प्रतीक बनकर उभरता है। इस प्रकार नाटक मिथकीय कथा के माध्यम से आधुनिक समाज में स्त्री की स्थिति और उसके अस्तित्व संबंधी प्रश्नों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करता है।



चित्र 3 : पितृसत्तात्मक व्यवस्था और स्त्री प्रतिरोध

नारी अस्मिता का विमर्श :

शंकर शेष के कोमल गांधार में नारी अस्मिता का प्रश्न केंद्रीय विषय के रूप में उपस्थित है। नाटक की नायिका गांधारी केवल एक पौराणिक पात्र नहीं है, बल्कि वह उस स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है जिसकी इच्छाओं, भावनाओं और अधिकारों की उपेक्षा पुरुष–प्रधान समाज द्वारा की जाती रही है। नाटककार ने गांधारी के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि स्त्री का अस्तित्व केवल पत्नी, माता अथवा परिवार की मर्यादाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि उसकी अपनी स्वतंत्र पहचान, चेतना और आत्मसम्मान भी है।

गांधारी के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि उसके विवाह का निर्णय उसकी सहमति के बिना लिया जाता है। उसे यह तथ्य भी नहीं बताया जाता कि उसका होने वाला पति धृतराष्ट्र नेत्रहीन है। यह घटना स्त्री की स्वायत्तता और उसके निर्णय लेने के अधिकार के हनन को दर्शाती है। जब गांधारी को इस छल का ज्ञान होता है, तब वह अपनी आंखों पर पट्टी बांधने का निर्णय लेती है। परंपरागत दृष्टि से इसे पति–भक्ति का प्रतीक माना गया है, किंतु आधुनिक स्त्री–विमर्श की दृष्टि से यह उसके आत्मसम्मान और विरोध का प्रतीक भी है। यह उसका मौन प्रतिरोध है, जिसके माध्यम से वह उस व्यवस्था के प्रति असहमति व्यक्त करती है जिसने उसके जीवन को उसकी इच्छा के विरुद्ध नियंत्रित किया।

नाटक में गांधारी का संघर्ष केवल बाहरी परिस्थितियों से नहीं है, बल्कि वह अपने भीतर भी निरंतर द्वंद्व का अनुभव करती है। एक ओर वह सामाजिक और पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करती है, वहीं दूसरी ओर उसके भीतर स्वतंत्र अस्तित्व की आकांक्षा जीवित रहती है। यही आत्मसंघर्ष नारी अस्मिता के विमर्श को और अधिक गहन बनाता है। गांधारी की पीड़ा केवल व्यक्तिगत नहीं है वह उन असंख्य स्त्रियों की पीड़ा का प्रतिनिधित्व करती है जिन्हें सामाजिक संरचनाओं के कारण अपनी इच्छाओं का त्याग करना पड़ता है।



चित्र 4 : नाटक के प्रमुख विमर्श

शंकर शेष ने गांधारी के माध्यम से यह स्थापित किया है कि स्त्री केवल सहनशीलता और त्याग की प्रतिमूर्ति नहीं है, बल्कि वह संवेदनशील, चिंतनशील और आत्मनिर्णय की अधिकारिणी भी है। नाटक में उसकी चेतना समय–समय पर प्रश्न उठाती है और अन्याय के प्रति प्रतिरोध व्यक्त करती है। इस प्रकार कोमल गांधार नारी अस्मिता को केवल भावनात्मक स्तर पर नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक स्तर पर भी प्रस्तुत करता है।

समकालीन संदर्भ में यह नाटक अत्यंत प्रासंगिक है क्योंकि आज भी अनेक महिलाएं सामाजिक रूढ़ियों, लैंगिक असमानताओं और निर्णय लेने की सीमित स्वतंत्रता जैसी समस्याओं का सामना कर रही हैं। नाटक यह संदेश देता है कि स्त्री की पहचान को उसके संबंधों के आधार पर नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व, अधिकारों और स्वतंत्र अस्तित्व के आधार पर समझा जाना चाहिए। यही कोमल गांधार में नारी अस्मिता के विमर्श का मूल स्वर है।

तालिका 1 : नाटक में नारी अस्मिता के प्रमुख आयाम

क्रमांक	आयाम	नाटक में अभिव्यक्ति
1	आत्मसम्मान	गांधारी द्वारा अन्याय के विरुद्ध मौन प्रतिरोध
2	स्वायत्तता	विवाह संबंधी निर्णय में स्त्री की उपेक्षा
3	अस्तित्व–बोध	स्वयं की स्वतंत्र पहचान की खोज
4	प्रतिरोध	आंखों पर पट्टी बांधना एक सांकेतिक विरोध
5	चेतना	सामाजिक और नैतिक प्रश्नों पर विचार

तालिका 2 : पितृसत्तात्मक व्यवस्था और उसका प्रभाव

पितृसत्तात्मक तत्व	गांधारी पर प्रभाव	नारी अस्मिता से संबंध
विवाह का थोपना	व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन	स्वायत्तता का संकट

सत्य का छिपाया जाना	मानसिक आघात	आत्मसम्मान को ठेस
राजसत्ता का दबाव	व्यक्तिगत इच्छाओं का दमन	अस्तित्व संघर्ष
सामाजिक मर्यादाएं	विरोध की सीमित संभावनाएं	मौन प्रतिरोध
स्त्री की गौण स्थिति	निर्णय प्रक्रिया से बहिष्कार	अस्मिता का प्रश्न

तालिका 3 : गांधारी के चरित्र में नारी अस्मिता के संकेत

चरित्रगत विशेषता	**उदाहरण**	**निहितार्थ**
संवेदनशीलता	छल का अनुभव	मानवीय चेतना
आत्मसम्मान	अन्याय को स्वीकार न करना	अस्मिता–बोध
धैर्य	परिस्थितियों का सामना	आंतरिक शक्ति
प्रतिरोध	आंखों पर पट्टी बांधना	विरोध का प्रतीक
आत्मसंघर्ष	कर्तव्य और अस्तित्व के बीच द्वंद्व	स्त्री चेतना का विकास

आत्मसंघर्ष और स्त्री-चेतना का विश्लेषण :

शंकर शेष के कोमल गांधार में आत्मसंघर्ष और स्त्री–चेतना का अत्यंत सशक्त चित्रण मिलता है। नाटक की नायिका गांधारी बाहरी परिस्थितियों के साथ–साथ अपने भीतर भी निरंतर संघर्ष करती दिखाई देती है। उसका जीवन व्यक्तिगत इच्छाओं, सामाजिक अपेक्षाओं, पारिवारिक दायित्वों और आत्मसम्मान के बीच चलने वाले द्वंद्व का प्रतीक है। यही आंतरिक संघर्ष उसे एक सामान्य पौराणिक पात्र से आगे बढ़ाकर आधुनिक स्त्री–चेतना की प्रतिनिधि बना देता है।

गांधारी का आत्मसंघर्ष उस समय प्रारंभ होता है जब उसे ज्ञात होता है कि उसका विवाह नेत्रहीन धृतराष्ट्र से किया गया है और इस तथ्य को उससे छिपाया गया था। यह घटना उसके विश्वास, स्वाभिमान और व्यक्तित्व को गहरे स्तर पर प्रभावित करती है। एक ओर वह राजपरिवार की मर्यादाओं का पालन करने के लिए बाध्य है, वहीं दूसरी ओर उसके भीतर अन्याय के विरुद्ध असंतोष और प्रतिरोध की भावना विद्यमान रहती है। उसकी आंखों पर पट्टी बांधने की क्रिया इसी मानसिक संघर्ष की अभिव्यक्ति है।

नाटक में स्त्री–चेतना केवल विरोध तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आत्मबोध और आत्मविश्लेषण की प्रक्रिया भी है। गांधारी अपने जीवन की परिस्थितियों को समझती है, उन पर प्रश्न उठाती है और अपनी स्थिति का मूल्यांकन करती है। वह यह अनुभव करती है कि समाज में स्त्री को अक्सर एक साधन या दायित्व के रूप में देखा जाता है, जबकि उसकी व्यक्तिगत आकांक्षाओं और भावनाओं की उपेक्षा की जाती है। इस बोध से उसके भीतर स्त्री–अस्मिता और स्वतंत्र अस्तित्व की चेतना विकसित होती है।

गांधारी का संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक स्त्री–अनुभव का प्रतिनिधित्व करता है। वह उन महिलाओं का प्रतीक है जो सामाजिक संरचनाओं और परंपराओं के दबाव में अपने अधिकारों से वंचित रहती हैं। उसके माध्यम से नाटककार ने यह स्पष्ट किया है कि स्त्री की वास्तविक मुक्ति केवल बाहरी स्वतंत्रता से नहीं, बल्कि आत्मचेतना और आत्मसम्मान के विकास से संभव है। इस प्रकार कोमल गांधार में आत्मसंघर्ष स्त्री–चेतना के जागरण का माध्यम बनता है और नाटक को समकालीन स्त्री–विमर्श से जोड़ता है।

तालिका 4 : गांधारी के आत्मसंघर्ष के प्रमुख आयाम

क्रमांक	आत्मसंघर्ष का आयाम	नाटक में अभिव्यक्ति
1	व्यक्तिगत इच्छा बनाम सामाजिक दायित्व	विवाह संबंधी निर्णय को स्वीकार करना
2	आत्मसम्मान बनाम पारिवारिक मर्यादा	अन्याय के बावजूद परिवार का निर्वाह
3	सत्य बनाम छल	विवाह से पूर्व सत्य छिपाया जाना
4	प्रतिरोध बनाम समर्पण	आंखों पर पट्टी बांधने का निर्णय
5	अस्तित्व बनाम भूमिका	पत्नी और व्यक्ति के बीच द्वंद्व

तालिका 5 : स्त्री-चेतना के संकेत

स्त्री-चेतना का तत्व	गांधारी के चरित्र में अभिव्यक्ति	महत्व
आत्मबोध	अपनी स्थिति का मूल्यांकन	पहचान का विकास
अधिकार–बोध	अन्याय को समझना	जागरूकता
प्रतिरोध	मौन विरोध का चयन	असहमति की अभिव्यक्ति
संवेदनशीलता	भावनात्मक प्रतिक्रिया	मानवीय पक्ष
स्वतंत्र चिंतन	परिस्थितियों पर प्रश्न उठाना	स्त्री–विमर्श का आधार

तालिका 6 : आत्मसंघर्ष और स्त्री-चेतना का संबंध

आत्मसंघर्ष की स्थिति	विकसित होने वाली चेतना	परिणाम
सामाजिक अन्याय	अधिकार–बोध	प्रतिरोध की भावना
व्यक्तिगत पीड़ा	आत्मविश्लेषण	आत्मपहचान
निर्णयों में उपेक्षा	स्वतंत्रता की आकांक्षा	अस्मिता का विकास
दमनकारी परंपराएं	प्रश्नाकुलता	सामाजिक चेतना
अस्तित्व संकट	आत्मसम्मान	स्त्री सशक्तिकरण का आधार

पितृसत्तात्मक व्यवस्था और स्त्री प्रतिरोध :

शंकर शेष के कोमल गांधार में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रभाव अत्यंत स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। नाटक में स्त्री को निर्णय लेने की स्वतंत्रता से वंचित रखा गया है तथा उसके जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण निर्णय पुरुषों और सत्ता–प्रतिष्ठानों द्वारा लिए जाते हैं। गांधारी का विवाह उसकी इच्छा के बिना धृतराष्ट्र से तय किया जाना तथा उसके होने वाले पति की वास्तविक स्थिति को उससे छिपाया जाना इसी व्यवस्था का उदाहरण है। यह स्थिति दर्शाती है कि स्त्री को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में नहीं, बल्कि राजनीतिक और पारिवारिक हितों की पूर्ति के साधन के रूप में देखा जाता था।

गांधारी इस व्यवस्था की पीड़ित अवश्य है, किंतु वह पूरी तरह निष्क्रिय नहीं रहती। उसका प्रतिरोध प्रत्यक्ष विद्रोह के रूप में नहीं, बल्कि सांकेतिक और मौन रूप में सामने आता है। अपनी आंखों पर पट्टी बांध लेना उसके आत्मसम्मान और असहमति की अभिव्यक्ति है। यह निर्णय उस सामाजिक व्यवस्था के प्रति विरोध का प्रतीक बन जाता है जिसने उसकी इच्छाओं और अधिकारों की उपेक्षा की। गांधारी का यह प्रतिरोध यह संकेत देता है कि स्त्री अन्याय को केवल सहन ही नहीं करती, बल्कि उसके विरुद्ध अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करती है।

नाटक में स्त्री प्रतिरोध का स्वर भावनात्मक, वैचारिक और नैतिक स्तर पर विकसित होता है। गांधारी अपने अनुभवों के माध्यम से यह प्रश्न उठाती है कि क्या स्त्री का जीवन केवल पुरुषों द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार ही संचालित होगा। उसका संघर्ष और प्रतिरोध स्त्री–अस्मिता, आत्मसम्मान तथा स्वतंत्र अस्तित्व की खोज से जुड़ जाता है। इस प्रकार कोमल गांधार पितृसत्तात्मक व्यवस्था की आलोचना करते हुए स्त्री–प्रतिरोध की एक सशक्त और संवेदनशील अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है।

तालिका 7 : पितृसत्तात्मक व्यवस्था और स्त्री प्रतिरोध

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के तत्व	नाटक में स्थिति	स्त्री प्रतिरोध का स्वरूप
विवाह में स्त्री की असहमति की उपेक्षा	गांधारी का विवाह बिना इच्छा के	आंतरिक असंतोष एवं प्रश्नाकुलता
सत्य का छिपाया जाना	धृतराष्ट्र के अंधत्व की जानकारी न देना	आत्मसम्मान आधारित प्रतिक्रिया
पुरुष–प्रधान निर्णय व्यवस्था	परिवार और राजसत्ता का नियंत्रण	मौन असहमति
स्त्री की सीमित भूमिका	कर्तव्यों तक सीमित पहचान	स्वतंत्र अस्तित्व की खोज
सामाजिक मर्यादाओं का दबाव	खुला विद्रोह असंभव	प्रतीकात्मक प्रतिरोध (पट्टी बांधना)

समकालीन संदर्भ में नाटक की प्रासंगिकता :

शंकर शेष का कोमल गांधार आज के सामाजिक परिदृश्य में भी अत्यंत प्रासंगिक है। यद्यपि नाटक की कथा महाभारतकालीन पृष्ठभूमि पर आधारित है, फिर भी इसमें उठाए गए नारी–अस्मिता, लैंगिक असमानता, आत्मसम्मान और स्त्री–अधिकारों के प्रश्न आज भी समाज में विद्यमान हैं। वर्तमान समय में महिलाओं को शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक भागीदारी के अधिक अवसर प्राप्त हुए हैं, किंतु अनेक स्तरों पर उन्हें भेदभाव, सामाजिक दबाव और निर्णय लेने की सीमित स्वतंत्रता जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

गांधारी का आत्मसंघर्ष आधुनिक स्त्री के संघर्ष का प्रतीक बनकर उभरता है। उसका मौन प्रतिरोध महिलाओं के आत्मसम्मान और अधिकार–बोध की चेतना को अभिव्यक्त करता है। यह नाटक समाज को यह संदेश देता है कि स्त्री को केवल पारिवारिक भूमिकाओं तक सीमित न समझकर उसकी स्वतंत्र पहचान और व्यक्तित्व का सम्मान किया जाना चाहिए। इस प्रकार कोमल गांधार समकालीन स्त्री–विमर्श और लैंगिक समानता की बहसों में महत्वपूर्ण योगदान देने वाली एक प्रासंगिक नाट्यकृति है।

निष्कर्ष :

शंकर शेष का कोमल गांधार नारी–अस्मिता, आत्मसंघर्ष और स्त्री–चेतना का सशक्त नाट्य–दस्तावेज है। नाटक में गांधारी के चरित्र के माध्यम से स्त्री के अस्तित्व, आत्मसम्मान और स्वतंत्र पहचान से जुड़े महत्वपूर्ण प्रश्नों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उसके जीवन में उपस्थित संघर्ष, पीड़ा और प्रतिरोध पितृसत्तात्मक व्यवस्था की विसंगतियों को उजागर करते हैं तथा स्त्री की संवेदनशीलता और वैचारिक शक्ति को रेखांकित करते हैं।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गांधारी केवल एक पौराणिक पात्र नहीं, बल्कि हर उस स्त्री का प्रतीक है जो सामाजिक बंधनों और असमानताओं के बीच अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष करती है। नाटक स्त्री

के मौन प्रतिरोध को भी एक महत्वपूर्ण सामाजिक और वैचारिक शक्ति के रूप में स्थापित करता है। इस प्रकार कोमल गांधार आधुनिक स्त्री–विमर्श के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण और प्रासंगिक कृति है, जो समानता, सम्मान और न्यायपूर्ण समाज की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

संदर्भ :

- शेष, शंकर. कोमल गांधार. नई दिल्ली : शिवानी बुक्स, 2006.
- शेष, शंकर. शंकर शेष : समग्र नाटक. संपादक : हेमंत कुकरेती. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 2010.
- राय, नारायण. शंकर शेष का नाटक साहित्य. कानपुर : साहित्य रत्नालय, 1998. (उल्लेखित संदर्भ)
- "डॉ. शंकर शेष के नाटकों में युगबोध और मूल्यदृष्टि." गोवा विश्वविद्यालय, शोधप्रबंध.
- "शंकर शेष के नाटकों की मंचीय संप्रेषणीयता." Universal Research Reports.
- त्रिपाठी, नरेन्द्रनाथ. साठोत्तर हिन्दी नाटकों में स्त्री–पुरुष सम्बन्ध. लखनऊ : शाश्वत प्रकाशन, 1985.
- त्रिपाठी, नरेन्द्रनाथ. साठोत्तर हिन्दी नाटकों में स्त्री पुरुष सम्बन्ध. लखनऊ डिजिटल लाइब्रेरी संस्करण.
- हिन्दी की स्त्री आत्मकथाएँ : अस्मिता विमर्श. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय (NDLI).
- सिंह, बच्चन. हिन्दी नाटक और रंगमंच. नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन.
- नागेन्द्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
- शर्मा, रामविलास. भारतीय साहित्य और नारी चेतना. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- पांडेय, मैनेजर. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 18–21

अनुराधा बेनीवाल की यादों के दस्तावेज : लोग जो मुझमें रह गए

भँवरी महरानिया
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

शोध सार :

अनुराधा बेनीवाल की यूरोप–घुमक्कड़ी के संस्मरणों की श्रृंखला 'यायावरी आवारगी' की दूसरी कड़ी 'लोग जो मुझमें रह गए' है, जिसका प्रकाशन राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से 2022 में हुआ। अनुराधा पहले एक घुमक्कड़ है, जिज्ञासु है, समाजों और देशों के विभाजनों के पार देखने में सक्षम एक संवेदनशील 'सेल्फ'हैं, उसके बाद, और इस सबको मिलाकर एक समर्थ लेखिका है। आजादी मेरा ब्रांड कहने और जीने वाली अनुराधा बेनीवाल की यह दूसरी किताब है। कई भीतरी–बाहरी यात्राओं का वैचारिक और रूहानी आख्यान जो यात्रा वृतांत के तयशुदा फ्रेम से बाहर छिटकते शिल्प में तयशुदा परिभाषाओं और मानकों के साँचे भी तोड़ता है। 'यायावरी आवारगी' श्रंखला की यह दूसरी किताब ''अपनी कंडीशनिंग से मुक्ति की एक भरोसेमंद पुकार है''।

बीज शब्द : स्त्री स्वतंत्रता, आजादी, बेफिक्री, बेपरवाह, घूमना, स्वतंत्र मन, स्वतंत्र विचार, जेंडर, निजता, समानता, आत्मनिर्भरता।

मूल आलेख :

अनुराधा बेनीवाल का जन्म हरियाणा के रोहतक जिले में 1986 में हुआ। अनुराधा एक राष्ट्रीय शतरंज चैंपियन भी रह चुकी है। फिलहाल ये लंदन में एक जानी–मानी शतरंज कोच है। ये रोहतक में लड़कियों के सर्वांगीण व्यक्तित्व–विकास के लिए 'जियो बेटी 'नाम से एक स्वयंसेवी संस्था भी चला रही है। इन्होंने 'आजादी मेरा ब्रांड' और 'लोग जो मुझमें रह गए' नाम से यात्रा वृतांत लिखे हैं। यह किताब महज एक यात्रा वृतांत नहीं है बल्कि रूढ़िवादी सामाजिक बंधनों को तोड़कर अपनी शर्तों पर जीवन जीने की एक प्रेरणादायक कहानी है। हरियाणा के एक गाँव से निकली एक लड़की जो अलग अलग देशों में जाती है, अलग–अलग जींस सौर जज्बात के लोगों से मिलती हैं। कहीं गे, कहीं लेस्बियन, तलाकशुदा, परिवारशुदा, कहीं धूप की तरह खुली सड़कें–गलियाँ, कहीं भारत से भी ज्यादा 'बन्द समाज'।

उनसे मुख़ातिब होते हुए उसे लगता है कि ये सब अलग हैं लेकिन सब खास हैं। दुनिया इन सबके होने से ही सुंदर है, क्योंकि सबकी अपनी अलहदा कहानी हैं। इनमें से किसी के भी नहीं होने से दुनिया से कुछ चला जाएगा। अलग–अलग तरह के लोगों से कटकर रहना नहीं, उनसे जुड़ना, उनको जोड़ना ही हमें बेहतर मनुष्य बनाता है यहमें हमारी आत्मा की पवित्र और श्रेष्ठ के पास ले जाता है। ऐसे में उस लड़की को लगता है – ''मेरे भीतर अब सिर्फ मैं नहीं हूँ, और भी अनेक लोग हैं। लोग, जो मुझमें हमेशा के लिए रह गए।''[1]

यायावरी–आवारगी की दूसरी कड़ी में आई किताब 'लोग जो मुझमें रह गए' में लेखिका ऐसी कई मान्यताओं को तोड़ती है जो हमने दूर बसे लोगों से बिना मिले और उन्हें बिना जाने ही बना ली हैं। वह दुनियाभर के देशों में भटकती हैं लेकिन उनकी लेखनी हमें रास्ता दिखाती चलती है। ऐसा लगता है हम उनके पीछे–पीछे उन देशों की गलियों, बाजारों, चौक–चौराहों पर घूम रहे हैं। वह दुनिया के जिस भी नक्शे पर जाती हैं उनका गांव, गालियां, लोग, बातें, दुख, सुख सब साथ चलता है।

हरियाणा के रोहतक जिले से निकलकर दुनिया की सैर करने वाली अनुराधा कहती हैं उन्होंने अपनी नई किताब में उन लोगों को खासतौर पर जगह दी है जिनसे अपनी यायावरी के दौरान वह मिलीं और जिनकी जिंदगी के अनदेखे–अनजाने पहलुओं ने उनके दिल–दिमाग पर गहरी छाप छोड़ी। अनुराधा ने कहा कि यात्राएं हमें महसूस करा देती हैं कि एक दुनिया के भीतर कई दुनियां हैं और एक देश के भीतर कई देश हैं. किसी का रहनदृसहन या खानपान अलग हो सकता है पर वास्तव में हम सब एक हैं. विविधिताओं पर विशिष्टताओं को स्वीकार करना चाहिए।

पोलैंड की सड़कों पर घूमते हुए लेखिका लिखती हैं, "छोटा सा शहर है क्राको, चाहो तो एक दिन में पैदल घूम लो। सब कुछ है यहां, इतिहास भी, कल्चर भी, आर्किटेक्चर भी, बाजार भी, नदी भी, मॉल भी, शांति भी, चहल–पहल भी और औरतों को रात–बेरात बेफिक्री से घूमने की आजादी भी। कितनी छोटी सी बात है लेकिन कितनी जरूरी। सब कुछ हो आपके शहर में लेकिन उसे देख सकने की इजाजत न हो, रात की अंधेरी गलियों में डर भरा हो, अपने ही शहर की अपने ही बसों में फब्तियां हो, भीड़ में चिकोटियां हो, अकेले में कुछ अनहोनी हो सकने का भय हो, इंसान पर इंसान को संदेह हो तो उस होने का मतलब क्या है!"[2]

अनुराधा नार्वे में एक गे कपल और फिनलैंड में एक लेस्बियन कपल से मिली और उनके अनुभव जाने। वहां लोग बेझिझक पसंद–नापसंद साझा कर सेक्सुअल ओरिएंटेशन जाहिर करते हैं और साथ रह सकते हैं, शादी कर सकते हैं। हालांकि स्पेन जैसे देश में धार्मिक लोग इसे कानूनन लागू होने के बाद भी अपनाने को तैयार नहीं है। ठीक वैसे ही जैसे हम भारत में ट्रांसजेंडर समुदाय के लोगों की पहचान को एक जेंडर मानने को तैयार नहीं हैं। समाज इन्हें लाल बत्ती पर खड़े होकर पैसे मांगते, हाईवे के नीचे जिस्म बेचते, बसों ट्रेनों में तालियां बजाते हुए देखकर सहज है लेकिन अपने जैसा बराबर का दर्जा देने, नौकरियों में समानता देने और पास में बैठाने में परहेज करता है। कानून बराबर की मान्यताएं दें तो समाज, धर्म और लोग इसमें अपनी मान्यताओं को बीच में ला देते हैं। यह अपने को ऊपर रखने के साथ दूसरे को नीचा दिखाने से ज्यादा कुछ नहीं।

लेखिका ने इस यात्रा वृत्तान्त में नार्वे देश का जिक्र किया है ''जहां का कानून लेस्बियन, गे, बाइसेक्सुअल, ट्रांसजेंडर, क्वीयर, इंटरसेक्स (एलजीबीटीक्यूआई) सबको समान तरह के अधिकार देता है। यहां सभी तरह की सेक्स ओरिएंटेशन के लोग साथ रह सकते हैं, शादी कर सकते हैं, बच्चे गोद ले सकते हैं। जो भी हक एक हेट्रोसेक्सुअल कपल को मिलते हैं एलजीबीटीक्यूआई के हक भी सेम हैं। नॉर्वे का नाम उन चुनिंदा शुरुआत के देशों में लिया जाता है जिसने मैरिज इक्विलिटी यानी सेम सेक्स मैरिज के रिश्तों को मान्यताएं दी है। सेम सेक्स जोड़ों के साथ कोई भेदभाव न हो इसके लिए 1981 में एक कानून भी पास किया गया''[3]।

''फिनलैंड में समलैंगिकता को क़ानूनी दर्जा 1971 में ही मिल गया था, लेकिन आपस में शादी करने,

बच्चा गोद लेने और एक–दूसरे का सरनेम ले सकते का क़ानून 1 मार्च 2014 को पास हुआ।''[4]

इस किताब में अनुराधा लिखती हैं, "इस दुनिया में दर्जनों तरह की सेक्स ओरिएंटेशंस हैं, सैकड़ों तरह की पसंद हैं, प्रेफरेंसेज हैं। उनके बारे में बात होनी चाहिए ताकि मान्य से अलग कोई चीज हमें डराए नहीं। जो स्वीकृत है, उससे अलग को हम दुत्कारें नहीं। सेक्स के बारे में बात होनी चाहिए बेडरूम्स के बारे में नहीं" दुनिया के हर कोने में लोग अलग–अलग तरीके से जीवन जीते हैं। इतने धर्म, जबानें, परंपराएं और लाइफ स्टाइल होने के चलते सभी सिर्फ एक चीज चाहते हैं वह है– प्रेम। यूरोप के उस पार लोग कैसे रहते हैं, जवान लड़कियां ऐसी होती हैं, पश्चिमी लोगों में संस्कार नहीं होते, काले ऐसे होते हैं, गोरे ऐसे होते हैं और इसी तरह की न जाने कितनी धारणाओं को तोड़ते हुए अनुराधा बेनीवाल पीठ पर बैगपैक लादे रूस, नार्वे और लुथविया जैसे देशों की सड़कों पर घूमती हैं। वह लोगों का मन टटोलती है जिसमें कहीं उदासी, कहीं खुशी तो कहीं दरियादिली हाथ लगती है। वह देर रात अनजान देश की सड़कों पर अकेली बेखौफ घूमती है।

इस किताब में अनुराधा बेनीवाल ने अपनी रूस ,सोवियत और यूरोपीय देशों की यात्राओं का वर्णन किया है। सोवियत और यूरोपीय देशों की यात्रा करने निकली एक अकेली लड़की ने उन जगहों को उनके प्राकृतिक दृश्यों को, उनकी खूबसूरती, इमारतों, आर्किटेक्चर रास्तों, सड़को, सभ्यता–संस्कृति के रूप में ही नहीं बल्कि वहाँ रहने वाले लोगों और उनकी सोच, जीवन जीने के उनके तौर तरीक़ों, प्रकृति के साथ उनका संबंध, मेहमान नवाजी, उनकी इच्छा, उनके जज्बात आदि को देखा है।

यात्रा के दौरान लेखिका दुनिया के अलग–अलग कोनों में अलग–अलग लोगों से मिलती हैं– जैसे गे, लेस्बियन, तलाकशुदा, सिंगल, और पूर्ण परिवार। इन सभी से मिलने के बाद उन्हें यह एहसास होता है कि सब अलग होने के बावजूद कितने ख़ास हैं।

अनुराधा बेनीवाल ने कहा कि यात्राएं आपको हदों को पार कर नई हदों तक पहुंचाती हैं। आपके दायरे का विस्तार करती हैं। यात्रा का मतलब केवल एक जगह से दूसरी जगह जाना नही है। इसका मलतब उन लोगों, संस्कृतियों, रवायतों, मसलों को देखना–समझना और उनसे जुड़ना भी है, जिनसे आप अब तक अनजान हैं।

अनुराधा के अनुसार इस किताब में वो लोग हैं जो दिखते शायद हमसे अलग है, बसते हमसे बहुत दूर है, ख़ान पान पहनावा भले ही हम से अलग है लेकिन है हमारे जैसे।

अनुराधा जिस भी जगह पर जाती है सबसे पहले उसके क़दम वहाँ की गलियों में मुड़ते हैं। वो अपने होस्ट और आस–पास के लोगों से मिलते हुए उनसे बात करते हुए उनके छोटे–छोटे आयोजनों में शरीक होते हुए, वहाँ की संस्कृति सभ्यता वहाँ की रीतियों, रिवाज, परंपराओं, मान्यताओं और विश्वासों से रूबरू होती है। हर जगह का एक समाज होता है अनुराधा उस समाज को समझने में वक्त देती है और वहाँ के समाज और संस्कृति से जुड़े नायाब और रोचक जानकारियां हमसे साझा करती है। यह पुस्तक सामाजिक बंधनों और परिभाषाओं के साँचे को तोड़ने और अपने मन की कंडीशनिंग (मानसिक धारणाओं) से आजादी पाने की एक बहुत ही सशक्त पुकार है।

निष्कर्ष :-

अनुराधा बेनीवाल का यात्रा वृतांत पढ़ा जाना चाहिए ताकि हमें सनद रहे कि दुनिया घूमने से नई चीजें

ही नहीं पता चलती, पुरानी मान्यताएं भी टूटती हैं। ताकि हमें यह आभास हो कि दुनिया इतनी छोटी नहीं है, यहां हर किसी का अपनी पसंद है, जिसका सम्मान होना चाहिए। इस किताब में लेखिका के न सिर्फ यात्राओं के अनुभव शामिल है बल्कि साथ साथ ही लेखिका का मन भी चल रहा है और साथ साथ ही चलता है एक विमर्श ढेरों सवाल और एक बेचैनी जो प्रेम और आजादी के मायने ढूंढने के बीच कहीं छायी हुई है। लड़कियों के लिए आजादी के मायने क्या है क्या प्रेम में आजादी संभव है और एक लड़की के लिए विश्वास के मायने क्या है। विश्वास किस पर सही किस पर गलत इस तरह से सवाल आते जाते हैं।

संदर्भ :

1. अनुराधा बेनीवाल, आजादी मेरा ब्रांड (2016) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, फ्लैप पेज से।
2. वही, फ्लैप पेज से।
3. वही, पृ. 112
4. वही, पृ. 96
5. वही, पृ. 88
6. वही, भूमिका

Bhavikamaharaniyao2@gmail.com
8619688256

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 22–25

आधुनिक स्त्री की चेतना और स्वर : मंजुल भगत के उपन्यास ''टूटा हूआ इन्द्रधनुष'' के परिप्रेक्ष्य में

अंजली प्रकाश, शोधार्थी,
Department Of Hindi, Nirmala College Muvattupuzha (Autonomous)
Affiliated to Mahatma Gandhi University, Kottayam.
डॉ. श्रीजा जी. आर, शोध निर्देशिका,
Assistant Professor, Nirmala College Muvattupuzha.

साहित्य में एक जादू का अंश होती है, जो समय के साथ होने वाले सभी परिवर्तनों को अपनाकर आगे जाते है। इसी जादू के फलस्वरूप ही समाज साहित्य से जुड़ते हैं। साहित्य के अंतर्गत कई तरह के समस्याएं उभरकर आते हैं। समाज के समस्याओं से मानव को जुड़ाने में साहित्य सफल कार्य किया है। साहित्यकार अपने रचनाओं द्वारा मानव को समस्याओं से अवगत कराते हैं।

समाज के समस्याओं में मुख्य स्थान पर स्त्री विषय आते हैं। स्त्री–पुरुष परस्पर पूरक होने पर भी स्त्री को समाज में दोयम दर्जे का स्थान ही प्राप्त है। पुरुष सत्ता हमेशा स्त्री को अपने अधीन रखने की कोशिश करते हैं। अपने दमन, पीड़ा आदि से मुक्त होकर अपने अस्तित्व के लिए जब वह लड़ना चाहा तब उनके आवाज बनकर स्त्री विमर्श सामने आई।

साहित्य के द्वारा स्त्री के कई चेहरे पाठकों के सामने आई। चाहे वह किसी भी क्षेत्र के हिस्सा हो दर्द तो समान होती है। स्त्री जीवन की विविध पहलुओं को साहित्यकारों ने अपने रचनाओं में उभारने की कोशिश किया है। कहा जाता है ना भोगे हुए बातों में गहराई ज्यादा होती है। इसी तरह जब महिला लेखिकाओं ने अपने कलम स्त्री विषय पर चलाई तो यह बहुत ही सराहनीय कार्य रहा। स्त्री के दर्द भरी कहानियों को अंकित करने में उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान और मंजुल भगत आदि ने उल्लेखनीय कार्य किया है। जिसमें मंजुल भगत का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने साधारण जनसमूह से स्त्री पात्रों को चुनकर अपने रचनाओं के केंद्र में ले आया।

मंजुल भगत ने अपने रचना काल में सात उपन्यास और ग्यारह कहानी संग्रहों का सृजन किया है। उनके पहला उपन्यास 'टूटा हुआ इंद्रधनुष' में आधुनिक स्त्री जीवन के सोच विचार निहित है।

कहानी पूर्ण रूप से प्रेम पर आधारित है। शोभना और उनके प्रेमी मनीष का प्रेम वर्णन यहाँ मौजूद है। कहानी के आरंभ से ही शोभना के शादीशुदा जिंदगी का वर्णन होती है। उनके पति है प्रभात, एक बेटा है टुन्नू।

अपनी शादीशुदा जिंदगी के साथ–साथ वह अपने पहले प्रेमी मनीष के साथ यौन संबंध रखते हैं। मनीष और शोभना के बीच उनके प्रेम का निशान पलने लगते हैं तो गर्भपात करके उसे दुनिया से विदा करने के बारे में सोचती है। लेकिन सब कुछ जानकर भी उनके पति प्रभात किसी दूसरे के खून को अपना औलाद की तरह पालते हैं।

शोभना को लड़की पैदा होती है– जिनका नाम रखा था संध्या। अपने खून न होने पर भी प्रभात उसे किसी भी तरह का भेदभाव नहीं किया था। इसी के बीच मनीष अलग विवाह कर देती है अर्चना से। लेकिन उन दोनों के बीच माँ–बाप पुकारने के लिए कोई नहीं था। मनीष काम की सिलसिले में स्थानांतरित होकर शोभना के घर के पड़ोस में रहने लगते हैं। तब से संध्या अर्चना–मनीष के जीवन का एक हिस्सा बन जाते हैं। अपने असली पिता के मौजूदगी में भी वे उनसे अनजान है। लेकिन शोभना और मनीष को पूरी सच्चाई पता था लेकिन वे किसी से कुछ नहीं कहती है। मनीष और अर्चना औलाद के अभाव को दूर करना चाहती है। अर्चना सच्चाई जानकर शोभना से संध्या की मांग करती है, लेकिन शोभना उसे तिरस्कृत कर देती है। बड़ा होते संध्या अनुराग नामक युवक से प्यार करने लगती है। यह जानकर मनीष ने असल में एक पिता होने का फर्ज निभाती है। शोभना और प्रभात से बात करके वह संध्या की शादी करा देती है। शादी के बाद दोनों कलकत्ता चले जाते हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए शोभना और प्रभात के बेटा अरुण विलायत चले जाते हैं। वहाँ से चिट्ठी आती है तो पता चलता है कि वह शादी करने वाली है जैनी नामक लड़की से। शादी के बुलावा की तरह पत्र मिला था।

यह पत्र मिलकर प्रभात के आँखों से आँसू आने लगते हैं। उपन्यास के शीर्षक बहुत कुछ कहती है 'टूटा हुआ इंद्रधनुष' – इंद्रधनुष अनेक रंगों का है। यह रंग जीवन के सपनों, उम्मीदों और संबंधों का प्रतीक हो सकती है। लेकिन यह जिंदगी रूपी इंद्रधनुष तो टूटा हुआ है। इंद्रधनुष के रंग के समान कई लोगों की जिंदगियाँ मौजूद है। यह कभी कभी टूट जाता है। परिवार के सारे लोग एक साथ होते हैं तो यह इंद्रधनुष की तरह सुंदर और शोभित रहते हैं। लेकिन परिवार के सदस्यों में से कुछ दूर जाने पर परिवार रूपी इंद्रधनुष की शोभा नष्ट हो जाती है। यहाँ प्रभात के दुख का भी यही कारण था, अपने बेटा और बेटी दूर चली जाने से वे अपने को अपने परिवार को अधूरा महसूस करते हैं। उपन्यास के अंत में प्रभात–शोभना और मनीष–अर्चना साथ एक घर में रहने का निर्णय ले लेते हैं। शोभना की बेटी संध्या की कहानी अपनी माँ से सीधा उल्टा हुआ है। शोभना अपने प्रेम संबंधों को शादी के बंधन में बाँधना नहीं चाहता था। वे शादी और प्यार को अलग करके जीना चाहती थी, परंतु संध्या जिसे प्यार करती थी उसी से विवाह करके कलकत्ता चली जाती है। इसका मुख्य कारण मनीष ही है, उन्होंने चाहा होगा कि, जो स्थिति का अनुभव उसने पहले किया था वह किसी और को भुगतना ना पड़े।

उपन्यास की नायिका शोभना में आधुनिक स्त्री जीवन की पुकार निहित है। स्वतंत्र निर्णय का अधिकार शोभना में पूर्ण रूप से विद्यमान है। वे अपने मन की खुशी के लिए कुछ भी करने में जरा भी नहीं हिचकती। शोभना और प्रभात की जिंदगी तो ठीक रूप से चल रहा था, उसमें किसी भी तरह की कमी या बुराई नजर नहीं आती। लेकिन साथ–साथ शोभना के मन में मनीष के प्रति पहले वाला प्यार अभी भी मौजूद था। इसलिए ही वह उनके साथ यौन संबंध रख लेता है। अपने जिंदगी के फैसले वे खुद लेते हैं। उनकी मन के सही ही वह करती है। दूसरों के आईने से वह अपनी जिंदगी को नहीं देखती। आधुनिक सोच विचार के प्रतिरूप बनकर ही

शोभना यहाँ उपस्थित है।

उपन्यास के प्रत्येक पात्र एक नई मोड पर हमें ले जाते हैं। शोभना आधुनिक विचार वाला है, पति प्रभात भी आधुनिक विचारों में विश्वास रखने वाला है। मनीष के द्वारा सच्चे प्रेम का रुप दिखाते हैं। अर्चना के माध्यम से पति को परमेश्वर की तरह देखने वाली पतिव्रता स्त्री जीवन सामने आती है। यह सभी पात्र कुछ ना कुछ सोचने के लिए हमें विवश कर देते हैं।

शोभना में आधुनिकता का स्वर है। वह एक ऐसी स्वभाव वाली है जो, अपने दोनों पैर एक ही समय अलग–अलग नावों पर रख लेते हैं। एक ही समय वह प्रभात के साथ पत्नी का धर्म निभाते हैं साथ ही अपने मन की इच्छाओं को तृप्त करने के लिए पहले वाले प्यार को अपनाती रहती है। लेकिन प्यार और शादी दोनों को एक धागे से बांधना वह नहीं चाहती। उनके मत में प्यार को शादी में बदलने से वह एहसास नष्ट हो जाते हैं जो केवल प्यार में उपस्थित है। वे उस आत्मा बंधन को त्यागना नहीं चाहती। प्यार के एहसास को मनीष से और शादी के एहसास को प्रभात से महसूस करती है। इन दोनों खुशी के पल को वह एक साथ अनुभव करना चाहती है, इसलिए उनके मन के सही ही वह करती है। अपने खुशी के लिए ही जीते हैं। एक पत्नी, माँ, प्रेमी आदि कई किरदारों पर वह एक साथ खड़े होती है।

प्रभात के सोच विचार भी उल्लेखनीय है। वे शोभना को पूरा मन लगाकर प्यार करती है। इसीलिए ही वह अपने पत्नी की गलतियों को जानकर भी वे स्वयं को नियंत्रित करते हैं। शादीशुदा जिंदगी में किसी तरह का बाधा डालना नहीं चाहती, इसलिए ही वह शोभना और मनीष के प्यार के निशान को अपना बना कर पालते हैं।

मनीष उपन्यास के दूसरा पुरुष पात्र है। वे अपने प्यार को यानी शोभना को दिल से अपनाना चाहता था। उन्होंने प्यार को ही शादी में बदलना चाहा, लेकिन शोभना के विचार उनसे भिन्न था। वे मनीष से कहती है– 'मनीष हम विवाह कभी नहीं करेंगे, अगर करना ही होगा, तो मैं किसी अन्य पुरुष से ब्याह करूंगी और तुम कोई और लड़की पसंद कर लेना'। यह सुनकर मनीष को दुख तो होता है, लेकिन वह शोभना को किसी तरह की दुख ना पहुँचाना चाहता थी इसलिए शोभना की सारी बातें मान जाती है। शोभना अपनी सोच विचार से ही आगे जाती है। वह दोबारा ना सोचे हुए प्रभात से शादी कर देती है। एक अच्छे नेक इंसान को पति के रूप में प्रकार शोभना अपने शादीशुदा जिंदगी में सफल हो जाते हैं। वह पलटकर मनीष के जिंदगी के बारे में सोचती तक नहीं है। लेकिन मनीष का प्यार सच्चा था, वह अपने प्यार को दिल और दिमाग में रखकर पालते थे। शादी करने को भी तैयार नहीं थे बाद में शोभना के कहने पर ही वे अर्चना से शादी करते हैं।

उपन्यास के नारी पात्रों में मुख्य चेहरा शोभना की है। उनके इर्द–गिर्द ही पुरुष पात्रों का सफर देख पाते हैं। शोभना के साथ एक स्त्री पात्र भी उपन्यास में शामिल है वह है अर्चना मनीष के पत्नी। लेकिन कम ही जगहों पर उनका उपस्थिति हम देख सकते हैं एक गौण पात्र के समान उपन्यास में स्थित है। लेकिन शोभना और मनीष के नाजायज संबंध के कारण अर्चना अपने अधिकार से वंचित हो जाते हैं। आधुनिक स्त्री जीवन की झलक शोभना और अर्चना से प्राप्त होती है। लेकिन यह दोनों अलग–अलग रुपों में है। उपन्यास को आगे ले जाने वाला शोभना ही है। उनके प्यार और शादी के प्रति दृष्टिकोण ही उपन्यास के अहम हिस्सा है।

कहते हैं न स्त्री में ऐसी दम होती है, जो एक साथ अनेक प्रकार के किरदारों को अकेले ही निभाने की

क्षमता रखती है। यहाँ शोभना इसका उदाहरण है। यह पत्नी के रूप में प्रभात के इच्छाओं को मिटाती है, माँ बनकर अपने बेटा टुन्नू को मातृत्व की छाया देते हैं। प्रेमिका बनाकर मनीष के प्यास को भी बुझाती है। समाज क्या सोचेंगे यह बात से दूर रहकर वे अपनी जिंदगी की सफर करते हैं। उपन्यास में कोई ऐसा अंश नहीं है, जो यह दिखाती है कि, शोभना को अपने प्रवृत्ति पर अपराध का बोध हो। वे अपने द्वारा किए सारे बातों पर परिपूर्ण रूप से खुश है। अपने सोच विचारों पर स्थित खड़े रहने वाले स्त्रीत्व की झलक शोभना के द्वारा लेखिका व्यक्त करते हैं। लेकिन शोभना के यह व्यवहार के शिकार बनकर अर्चना भी सामने आती है।

समाज के एक नग्न सत्य की ओर मंजुल जी हमें ले जाते है। उनके सभी रचनाएँ एक न एक सामाजिक यथार्थ की ओर हमें खींच लेते है। अलग–अलग स्त्री पात्रों को ले आकर भिन्न भिन्न जिंदगियों को दर्शाती है। यहाँ अर्चना के खुशी छीनने वाला दूसरा स्त्री है। किसी एक ही अमानत को छीन कर शोभना अपने मन को शांत कराते हैं। यह शांति में किसी अन्य स्त्री के दुख की आँसू छुपी होती है।

आधुनिक समाज में लोग केवल अपने बारे में सोचते हैं। किसी ओर की परवाह नहीं करते, अपने खुशी के लिए किसी को भी यातना में डाल देते हैं। शोभना और मनीष के प्यार का निशान है संध्या यह बात अर्चना और प्रभात जानते हैं। लेकिन यह लोग आपस में किसी को दोषी न ठहराती है। जानकर भी अनजान की तरह रहकर वे एक ही घर में रह लेते हैं। आजकल मनुष्य को कुछ भी करने की अधिकार है। इसी के बल पर आधुनिक जनता भविष्य की ओर जाते हैं। शोभना भी आधुनिक प्रतिनिधि है वे भी अपने खुशी के लिए कार्य करते हैं। अपने खुशी को पाने की जल्दी में दूसरों के बारे में सोच पाना मुश्किल हो जाती है इसी के चलते कितने ही लोगों की जिंदगी की खुशियाँ नष्ट हो जाती है यह सोचने वाली बात है।

इंद्रधनुष रुपी जिंदगी में जो कुछ घटित होती है वह माया है या मिथ्या। लेखिका जिंदगी को टूटा हुआ इंद्रधनुष के साथ तुलना करते हैं। बंधनों में अलगाव आने से इंद्रधनुष रुपी जिंदगी टूटी हुई नजर आते हैं। आधुनिक स्त्री जीवन के चेतना को उजागर करने में मंजुल जी इस रचना के द्वारा सफल हुआ है। आधुनिकता के बल पर खड़े रहकर मंजुल जी अपनी नायिका को वैवाहिक जीवन और घर के बंधनों के साथ अपने प्रेम को उन्मुक्त होकर जीने का अवसर दिया है, बिना इसकी चिंता किए हुए कि पति, संतान और समाज की क्या प्रतिक्रिया होगी। नायिका को बदलते समय के साथ पूर्ण आजादी देकर ही लेखिका रचना करते हैं।

संदर्भ :

1. कमल किशोर गोयनका : मंजुल भगत : समग्र कथा साहित्य (1) –किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. सं. –23

Postal Address – Anjaly Prakash, Malieckal House Vattapparambu,
Kalady (p.o) Ernakulam Dist, Kerala State, Pin Code 683574
Mob : 6235862871, Email Id – prakashradha502@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 26–43

The Politics of Vilification : Eurocentrism, Ethnocentrism, and the Discursive Construction of India as an Intolerant Civilization

Mr. Hari Shanker Singh
Ph.D. Scholar, department of Political Science, University of Delhi.

Abstract :

India gradually began to be the subject of global scrutiny with regard to its democracy, human rights and religious freedom. Since 2014, the narrative of India's "crisis of democratic consolidation or democratic decline" and the spectre of religious intolerance and 'majoritarian politics' have been built into the media, policy documents, advocacy literature and academia broadly. These evaluations have been influential in determining the global image of India, but they also have broader implications with regard to the process of global knowledge production, the politics of representations and the moralization of states. The aim of this paper is to critically examine some of the major texts that represent a specific ideology of India being an "intolerant civilization" between 2014 and 2024. It is based on postcolonial theory, critical discourse analysis, and theories of epistemic power and examines the role of recurring narratives in the production, circulation and legitimation in transnational academic, policy and media networks. Also, it considers whether the same issues are conceptualized and analysed with similar consideration of racial discrimination, religious persecution and ethnic violence in other geopolitical settings. The paper does not evaluate the factual correctness of specific incidents, but rather takes heed of the larger discursion Al patterns that interpret, classify, and represent civilizational identities. It argues that the struggle against Eurocentric narratives of the state of India is an old story that is continuing to be produced today and continues to influence global narratives of tolerance, democracy and freedom of religion. The paper introduces the term 'politics of vilification' and is a contribution to the discussions concerning epistemic authority, civilizational identity and how moral scrutiny is differently distributed in the current international discourse.

Keywords : Eurocentrism; Ethnocentrism; India; Indianness; Civilizational Politics; Critical Discourse

Analysis; Epistemic Power; Postcolonial Theory.

1. Introduction :

New transnational communication, international advocacy groups and academic circles to influence the image and reputation of states globally had proliferated in the last two decades. New transnational communication, international advocacy groups and academic circles, now with the capacity to shape the image and reputation of states across the world, had also emerged in the last twenty years. Today states are not legitimate simply because they are founded on a constitution or have democratic political structures, but because of narratives created through global networks of knowledge. Reputations, foreign policy, investment climates, and diplomacy are increasingly influenced by reports on national human rights and civil liberty records, religious freedom, and minority protection, as well as national democracy. National human rights and civil liberty records, religious freedom, and minorities are all important parts of national records which have an impact on national reputations, foreign policy discussions, investment climate conditions and diplomatic activity. As a result, the creation of global knowledge is also an important arena of political power.

In this broader context, India is a democracy which has become one of the most talked about in the political arena worldwide. There have been numerous academic studies, policy research papers, media commentaries and other advocacy papers since 2014 which more and more depicted India as a democratic erosion, a continuous change of majorities, and a country beset by religious intolerance. Indian narrative on the status of freedom of religion or belief since 2014 as well as documents from international organisations and think tanks have contributed to this process of national narration around India's continued democratic backsliding and the deterioration of religious freedom. Whatever the individual studies have been strong or weak, the impact of the club has been on constructing a particular narrative on the world's Indian identity.

It is an important theoretical question we have to discuss in the light of the importance of this discourse. In a global perspective, why do certain societies remain the butt of international censure when they fail to make progress on issues of racial discrimination, ethnic and religious conflict, and exclusion and/or mistreatment of minorities, while other societies, despite continuing struggles, are placed in a more "relative" position in the global political narrative? Rajeev is no one to ignore or criticize the problem of the country – domestic problem in India. Rather, it is interested in the process of becoming symbolically overvalued in the discourse of international politics and of the production, legitimatization and reproduction of such symbols within institutional frameworks used by selected cases.

The concept of "intolerant civilization" cannot be assessed only in the context of the processes inside the country, the paper argues. It has, instead, had to be situated in these other modes of production of knowledge that were abandoned by colonial contact, and are cultivated and sustained in the present by the world's already in place institutions. Traditions are Eurocentric and have created universal authority over notions of a civilization, modernity, tolerance and political legitimacy. Colonialism's structures are no longer evident but the epistemological assumptions of the colonial period are still manifest within the global frameworks of interpretation of non-Western societies. Such assumptions often take Western historical experiences as the universal norm, and alternative experiences of civilisations as that which is to be judged, corrected, or doubted.

This paper views these processes in the following manner: as a "politics of vilification. It is an on-going discursive practice that continues to depict some states and/or civilisations as 'morally deficient', lacking in democracy and/or 'civilizational deficient'. This does not need to imply "to invent," or "to make up. Rather, it points to a narrow-mindedness that involves concentrating on elements of a community's political culture, recurring treatment of subjects, framing and asymmetrical comparison that may culminate in shaping perceptions of a political community at the international level. Processes may occur unintentionally: when it comes to institutional routines, to dominant theories or the theoretical tradition they come from, and to strategic political communication.

The study has been carried out during the twelve years spanning two decades 2014 to 2024, when India was witnessing its rising geopolitical stature along with that of its growing international focus. During the 10-year period, there were considerable changes in India's foreign policy, economic diplomacy, capability development, technology development and strategic partnerships with other countries, which resulted in extensive comments from other countries on democracy, religious freedom, minority rights and constitutional government. The developments provide a sufficient empirical basis to speak about the intertwining of changes in geopolitical space and representation in the discourse.

In methodological terms the paper adopts critical discourse analysis approach for analysing key selected books, policy reports, media publications and scholarly writings which have formed the backbone of dominant discourses about India. The focus of the analysis is not on the validity/invalidity of every and each criticism, but on the conceptual vocabulary, and comparing frames and frameworks, categories of analysis, and assumptions that India is operating on. The focus of the paper moves from events to patterns of knowledge production to open up the light on the functioning of international stories in creating civilizational identities.

It then reviews the literature on Eurocentrism as well as on postcolonial theory and global knowledge production, and outlines its theoretical underpinning and the method. It then examines how influential international texts discursively produce India, looks at the relation of such disclosures to other patterns of international moral discourse, and finally sketches the outlines of such vilifications in contemporary debates concerning epistemic authority, civilizational legitimacy, and international political thought.

2. Literature Review : Knowledge, Civilizational Hierarchies, and the Global Representation of India

Human rights, religious freedom, and democracy are central issues in many debates that are topical in today's world. Many debates of the day about religious freedom, human rights and democracy are claimed to be statements of universal political values. But a powerful wave of postcolonial scholarship has been sceptical of the idea that the creation and use of such norms is somehow unlinked to the historical webs of power. The debate is no longer about the universal values and importance of democracy, liberty and religious freedom but about who sets the standard for democracy, who defines what religious freedom means and thus who determines which societies are considered legitimate or not. This shift from a normative to epistemological inquiry has had important consequences for international politics and provided an analytical and interpretative framework intended to grasp current conceptions of India.

Global knowledge is never politically, historically neutral and innocent, postcolonial writers have always said. Orientalism (1978), by Edward Said, was a classic study on the history of colonial scholarship in the representation of the Orient that illustrates how orientalist learning produced a cluster of representations which, at the same time, depoliticized colonial power and secured its identity as superior. Samir Amin (1989) expanded this idea of Eurocentrism, an ideology that essentially attributes the experiences of Enlightenment to all countries, and bars alternatives. Dipesh Chakrabarty (2000) also argues that the current "political" discussions in the world circle are still rooted in Europe; Walter Mignolo (2011) and Boaventura de Sousa Santos (2014) follow that line of thought and demonstrate the continuation of the "coloniality of knowledge" after the "end of empire." Although there are some significant differences between them, all of these scholars make a similar argument: the production of global knowledge continues to be caught up in unequal patterns of epistemic authority that inform the ways in which non-Western societies are comprehended.

Where history and geography have set a hierarchy, so does the present-day global governance in the use of language; colonialism has established the hierarchy and now global governance is doing

the same with language. The Foucaultian perspective of power/knowledge is of particular importance for the understanding of this change. Foucault says there are other ways that political power is visible and these include the production of truths that are taken for granted, the production of legitimate classifications, and the production of legitimate modes of representation. From this perspective, critical discourse analysts have demonstrated that language is not just the reflection of political reality, but also a part of it and a construction of it. International reports, democracy indices, religious freedom evaluations and policy documents are not only descriptive tools, but also technologies with which states acquire global political identities.

Within this bigger picture, at the international level, India has emerged as one of the most closely-watched and studied democracies today. Since 2014, several themes have come together and grown in importance to the extent that they are treated as interwoven strands of analysis in a significant body of academic work, advocacy reporting, media investigations and policy analysis to explain the political evolution of India in various ways. There have been increasing voices of academic research, advocacy reports, media investigations and policy analysis in the four intertwined geographies of democratic backsliding, religious majoritarianism, shrinking civic space and minority rights which have pointed to the political trajectory of India since 2014 onwards. Since 2014, India has faced various climate assessments, such as the Status of Freedom of Religion or Belief in India, which influence worldviews regarding India's democratic and constitutional trajectory, and assessments by Freedom House, the V-Dem Institute, USCIRF, Amnesty International and others. These texts have shaped a prevailing reading of India that has been frequently employed in international academic and policy debates on India.

This scholarship is a significant and should not be taken lightly. It has communicated on salient issues relating to constitutional management, freedom of expression, liberty of religion, citizenship, and minorities, which has enriched the academic debate on the current nature of Indian politics. While there has been a surge of literature, there is also an important (but thin, and subtle) gap in analytical research of this literature. The existing literature and reports have been mainly about the condition of religious freedom and the Indian democracy from a factual point of view. A far less studied topic is the being of the Constitution of India as an inter-nationally haunted moral entity, as mentioned above. The processes of how particular stories become dominant, how they are institutionalised and how they become knowledge around the globe, however, remain comparatively little studied.

This is especially important since international political discourse is rapidly moving to

comparative in-judgments. Human rights violations, racial discrimination, ethnic conflict, religious persecution and democratic erosion take place within a variety of geopolitical contexts, but they are represented in places, with concepts and languages, and in terms of intensities that can vary significantly. It could be due to geopolitical interests, institutional requirements, media fact, historical context and/or epistemological mechanisms, but these theoretical possibilities have been explored somewhat superficially and systematically to a lesser extent.

This article aims to remedy that and refocus the analytical interests from the 'empirical validity of individual criticism' to the politics of their production and circulation. It refers to the accretion of this 'the Politics of Vilification', explanation of which are the 'recurrent discursive practices', 'interpretative frameworks', and 'institutional networks' all contributing to the construction of the image of a political community internationally. In this approach, representation is not seen as a straightforward image of domestic realities; rather it becomes a space for examining the epistemological process which constitute civilizational identity as it is produced, stabilized and contested in the present global discourse. The purpose of this article is to link postcolonial theory and discourse analysis with international political thought and to offer a framework that could be extended not only to the Indian context, but also to other questions of the twenty first century in the field of knowledge, legitimacy and civilizational politics.

3. Theoretical Framework : Civilizational Reputation and the Politics of Vilification :

For a long time, it is proved in politics that power is not only in the form of institutionalized coercive nature but also in the form of the production of knowledge and meaning. Cultural hegemony, the capacity of political power to construct, mould and naturalise social realities is a concept conceived by Antonio Gramsci, examined by Michel Foucault in his idea of power/knowledge and Edward Said in his notion of Orientalism. As these traditions bring together, they show us what extent the power to rule is preserved not necessarily by military or economic power but by the power to create a legitimate knowledge of political facts. But, despite these contributions, modern state and civilizational theories pay little attention to a basic question: how do states and civilizations earn lasting international reputations?

Past scholarship mostly has come to a focus on the domestic political performance available to explain international reputation. The idea of democratic backsliding is based on the premise in academic research that reputations are the result of institutional realities, including research on human rights, religious freedom and governance. While these kinds of approaches remain important, they often are not involved in an awareness of the epistemic processes by which political form is created

for political reality—at least for knowledge: in interpretations, in selections, in amplifications, and in institutionalization in the global networks of knowledge. Narrative, comparison and organization of political events are discursive practices which are necessary if they are to acquire international significance. The process of political performance is not the only means through which international legitimacy is achieved; but also, the creation of authoritative interpretations.

This article attempts to theorize these processes as a process of 'Civilizational Reputation'. Civilizational reputation is the durable, if not permanent, image of an entire civilization or political community that is internationally recognised, interpreted and evaluated in terms of its civility. Civilizational reputation is generally discussed in terms of a wider symbolic identity of a society and is not related to foreign policy behaviour or the credibility of the state as is usually the case with diplomatic reputation. It determines the interpretation of a political community prior to the understanding of any particular political concept, which subsequently leads to assessments of democracy, human rights, the freedom of religion and belief as well as constitutional governance.

The Politics of Vilification is one key pathway in creating civilizational reputations, the article suggest. Politics of Vilification, defined as a repeated process of discursive representation, authoritative classification and comparative framework, has been claimed to be "a process of discursive and institutionalization that transforms contingent political events into relatively lasting civilizational features." It is not meant to be interpreted as a condemnation of anything that is not right, unorganized, or political. Otherwise, the democratic societies are not possible without a critical scrutiny. Rather, the conditions under which some representations acquire epistemic authority, become widely circulated, and become accepted accounts of political reality are explored.

The Politics of Vilification is different in four ways from the existing critical perspectives. First, the present frame calls on institutions of knowledge production not primarily colonial who are looking to the East as in Orientalism but present ones in what purports to be a postcolonial international order. Production of civilizational images today takes place in the fields of academic research, policy reports, advocacy networks, global governance rankings, media agencies and expert communities. The actors do not necessarily have to be working towards the same goal but they can use common terminology (concepts) and commonly employ referencing to "firm up" certain representations.

Second, Foucault has theorized how objects of knowledge are produced by discourse, and in the present approach, it is the aggregate institutional products of repetition that are considered. An isolated newspaper article does not reflect the foreign perception of a country. Instead, the authority

of a reputation is developed when the same interpretive frame happens repeatedly in a variety of institutions. The more it is heard the more familiar, the more familiar the more credible, the more credible it is a more official one for the institution. This is an iterative process, wherein particular readings become ever more indistinguishable from the object-descriptive description of the political reality.

Third, the concept of epistemic amplification is introduced. Epistemic amplification is when certain stories increase in their power and influence when repeated within a network of closely coupled institutional arenas in which some knowledge is produced. Citations, thematic convergence, and mutual reinforcement of academic publications, international reports, media, policy analyses, and governance indices are common mechanisms wherein academic publications interact with media, international reports, policy analyses, and governance indices. These spaces are through which narratives pass, and become legitimate as if outside the scope of any single text or institution. Power is with sets of repetitions, with networks of repetitions, therefore, in the power of discourse.

Fourth, it brings in the notion of reputational essentialism. Reputational essentialism is the move from the historically contingent understandings of political events to the political gesture type of understandings of political events, an approach that sees the political events as gestures made by the political community or the political civilization as a whole. At this stage in discourse development, the event is being described, and now a more general affiliation to civilizations is being added. Such essentialisation is analytic relevant in that sense only because it becomes part of future interpretations of the new political content as a cycle of self-sustaining representations.

These conceptual arguments provide the basis for a five-stage analytical model of the construction of civilizational reputation as outlined in this article.

The first step is a process of selection of the narratives: certain political events are recognized as having international significance and many of them are rather invisible. It is not just how often it happens, it's also what it means on the symbolic level, and which events are symbolic of the overall political situation.

Interpretative framing is the second step. Political events only become significant when they are conceptualised as such. There is a gap between the empirical reality of political events and the way in which they are made significant through concepts. Constructive concepts such as religious freedom, Nationalism, constitutionalism, minority rights, etc. provide an interpretative frame to connect the disjointed events in the political story.

In the third step these interpretations are disseminated in transnational knowledge networks

(epistemic amplification). When these stories are repeated, endorsed and disseminated by different institutions and media, and picked up by scholars, they acquire an increasing degree of authority and become part of the international political discourse.

Reputational essentialism is the fourth. As time goes on, the repetition of such events can over time transform the specificity and contingency of political events into what appear to be elements of a political community. Now the focus of the interpretation, or of action or institution, becomes the focus of a description of the assumed nature of a civilisation per se.

Last step is institutional legitimization. Some of these representations are then internalized, appearing in important reports, papers, debates and international governance that act as benchmarks for further evaluation. At stage 1, the civilizational reputation is more stable, and it determines the international agendas and expectations for evaluating political development in the future.

It is impossible to state that this theoretical model makes any assumptions about inaccuracies or unfairness of reputational processes. On the contrary, it seeks to examine processes of internationalization of identities in discourse and institutional practice. The empirical case examined is India where these mechanisms are examined. Big picture, though, it is to create a conceptual framework that can be used to examine the building of civilizations' reputation in contexts of geopolitical systems. The Politics of Vilification offers a novel analytical toolset – drawing on postcolonial, discourse analysis, and the analysis of international legitimacy – to capture the nature of the new modes of power that are increasingly characterised by the governances of political reputation in the contemporary international order.

4. Methodology :

A qualitative research method that uses Critical Discourse Analysis (CDA) is used in this study to delve into the construction of the representation of India in influential international texts during the period 2014-2024. The intent is not just to challenge or validate the factual veracity of any particular report or publication but to examine how discourse functions in the construction of a particular reputation of the nation as a civilisational identity and how such authoritative discourse helps construct India's international image. As in the post structural and postcolonial doctrines, the discourse is not content with descripting language, but rather it is conceived as a means of power that produces political reality, what is seen, heard, known and experienced in the international discourse. Particularly CDA is an approach that is well suited, as the paper is about relation between language, power, and institutional authority. With Fairclough (1995), discourse is viewed as a site of social meaning production and consolidation, and like van Dijk (1998), the recurrence of discourse forms

constructs people's worldviews and their political understandings. The following insights are underpinned by Foucault's idea of power/knowledge, which is to say that authoritative knowledge isn't simply the "fact," but is rather an institutional "product". These perspectives provide a context for the analysis of the production, circulation and construction of international narratives about India.

5. Corpus Selection :

The empirical corpus consists of key works of English literature that have influenced the international discourse of democracy, religious freedom, minority rights and constitutional debates of India from 2014 to 2024. This is only a selection and not a comprehensive list. Incorporation of texts occurred because they have been shown to be influential in academic, policy or international governance discourses, through institutional authority, citation by other scholars, policy relevance or regular media coverage.

The corpus includes four categories of material :

- Academic books or edited volumes, like The Status of Freedom of Religion or Belief in India Since 2014, which particularly examine the current political trajectory in India.
- International organisations and advocacy institutions' reports, such as Freedom House, V-Dem Institute, USCIRF, Amnesty International, Human Rights Watch and the U.S. Department of State. They are significant benchmarks in international policy discussions and for comparative governance assessments.
- International publication of policy documents and publications of think-tanks for democratic and constitutional development process in India.
- Analysis of selected media commentaries from internationally known media which have been sustaining their presence and policy salience on narratives of India's democratic identity.

It is not about imposing a single "voice" from one institution to another, but rather about looking at a particular idea, category and frame travelling across and within a variety of "institutions" to produce knowledge and then linking that store of knowledge to identity and reputation.

5.1. Analytical Strategy :

The analysis proceeds through four interconnected stages.

First, the study highlights the key concepts which have been used to classify political institutions as democratic backsliding, majoritarianism, religious freedom, constitutionalism, civic space and minority rights in India. Special attention is paid in the comprehension, application and definition of these concepts in other institutional contexts.

Secondly, it is characterized by the interpretative framing trend. Engages with the connections

between empirical processes and narratives of democracy, secularism, nationalism and civilizational identity, instead of thinking of political events as a predictable mode of explanation. This stage involves the linguistic and conceptual processes of the embedding of isolated events in broader explanatory systems.

Thirdly, processes of epistemic amplification are considered, as reflected in the analysis of intertextuality, citation practices, thematic convergence, and in the institutional circulation. Thirdly, intertextuality, citation practices, thematic convergence and institutional circulation are analysed to account for the processes of epistemic amplification. To engage in learning about the ways in which interpretations become authoritative through repetition in academic writing, policy reports, advocacy writing and media articles.

Fourth, what's the explanation of the results in the theory of the previous section. Recurrent representation and their effect on generating the image of India as a civilizational centre are illuminated through the analytical lens of the categories of narrative selection, interpretative framing, epistemological amplifications and reputational essentialism and institutional legitimization. The recurrent representations are analysed by the lenses of the categories of narrative selection, interpretative framing, epistemological amplifications and reputational essentialism and institutional legitimization, which illuminate its effect on the generation of the image of India as a civilizational centre in the international political discourse.

- **Scope and Limitations :**

The study is not an effort to discover whether all the "criticisms" against India are genuine or fake facts or to find how much India is meeting the international norm of human rights or not. It is a more restricted and more abstract, more theoretical one – one that aims to uncover discursive mechanisms that give political representations authority in global discursive regimes. Furthermore, the available analysis consists only of texts in English and those of great influence in the international realm. It does not therefore represent all scholarly/policy perspectives on India. Instead, it analyses a corpus that has been strategically chosen to illustrate how influential narratives were created, circulated and institutionalized through it during the period we study, in relation to India's democratic identity.

The methodology strives to de-stabilize the meanings of important texts of India, but also the meaning's function of language, concepts and institutional power in the construction of international political legitimacy.

- **Analysis and Discussion: Reconstructing India's Civilizational Reputation :**

The scholarship of post-2014 scholarship was rather sparse, yet there was a profusion of literature on democracy, constitutionalism, religion and the rights of minorities. These studies have very much approached the same subject in quite different ways, from the institutions with which they are connected, and the arguments that they advance, but in the language that they use, there is a remarkable consistency. The current concepts that are available to explain otherwise diverse political developments are at the heart of democratic backsliding, majoritarianism, shrinking civic space, religious nationalism, and constitutional erosion (Freedom House, 2024; V-Dem Institute, 2024; and USCIRF, 2024). It is not sufficient to claim that these are the categories that appear again and again, these categories have also become epistemically "valid" in the current international political discourse. This convergence is a sign of being helpful to the empirical validity of the conclusions of the existing scholarship. The present article offers an alternative approach of analysis. Instead of posing the questions of whether the representations are completely accurate or inaccurate, it poses the question of how specific types of interpretations can become so authoritative that they shape international understandings of a political community. The change is part of what's known as the postcolonial political theoretical shift of knowing where the focus is not on every knowledge being politically neutral and value-free, but on all knowledge being an object of political research (Said, 1978; Chakrabarty, 2000; Mignolo, 2011). Criticism, therefore, is not the question to ask, it is the institutional production of epistemic authority that is at stake.

7.1 The Hegemony of Interpretive Categories :

One of the finest characteristics of modern literature is the presence of categorization of ideas in their interpretive statements. In libraries, academic journals, policy documents and advocacy texts, the country's "unique" patterns of development are repeatedly described as "return to majoritarian nationalism", "increased religious intolerance", "decline of democracy" and "shrinking of civil society" (Engineer 2021, Freedom House 2024, V-Dem Institute 2024). This convergence in the analytical sense is significant since it does not talk only about notions of political reality but carries the critical lens of the realities that are being constructed. Discourse is a mechanism that makes it possible for some things to be thought, known, and politically relevant, according to Foucault (1980). Similarly, Fairclough (1995) demonstrates that the social reality lies in a continual series of language and institutional events and practices, not just in reflection of real events.

The remark is not a statement on the coordination or coordination-like behaviour of international scholars and institutions. And in terms of ideology there is no neutrality. Rather, it

proposes a process akin to one Kuhn (1962) suggested as "paradigm shift or formation". New scholarship often emerges within the confines of the said analytical framework that has now become "disciplinary" upon the gaining of legitimacy. Convergence is, consequently, a phenomenon that has to be explained and examined. The present article therefore aims to argue that such arguments on "backsliding" the democracy, "regression" to the status quo, or "majoritarianism" should not be accepted as facts but as politics of discourse.

7.2 From Political Events to Civilizational Identity :

There is no civilizing meaning in political matters. They produce their broader sense through interpretative acts that lead them to the development of stories, narratives, and identity of the political community at large. The focus of this study is therefore a transition in academia, where image is created, identity is formed.

In the analysed corpus, legislative reform, communal violence, issues around religious conversion, citizenship laws and limitations on civil society organizations are often used as proxy measures for more sweeping changes to India's democratic path (Engineer 2021, Freedom House 2024). This article is not dealing with the issue of whether specific interpretations are persuasive or what the actual case may be. Rather, it is the understanding of how the process of repeated representations can produce relatively enduring forms of collective identity as part of historically specific political processes that is emphasized.

This article suggests that it is in this sense a process which is essential from the standpoint of the reputation. Reputational essentialism is the way that some events in politics are brought about and come to appear as if they are permanent parts of the political community. It builds on Said's (1978) critique of representational essentialism and asks what other ways in which today's international knowledge regimes can reproduce and circulate between institutions and states the same political discourse, and how they can reinforce it via comparison. Once established, the expectations that can be attributed to a name influence what follows. Emergence of new political events analysed by existing frameworks of reputation boosts political identity; it does not just reflect identity.

- **Epistemic Authority and the Institutional Production of Reputation :**

Credibility of individual polities is only a component part of the power of international political discourse, as it comes to be enmeshed in wider global networks of knowledge. Policy reports are referenced in academic scholarship, and peer-reviewed research is referenced in advocacy documents, which media copies. They can reflect an institutionalizing process of interpretation, called recursive circulation, because they are progressively consolidated with the passage of time.

This process is conceptualized in the present article as epistemic amplification. Political stories are propagated and amplified by several interconnected processes of knowledge production, which is the term epistemic amplification. For authority, the empirical observation is not the only thing but also institutional recognition, method familiarity, and repetition by scholars. It is a sense of power/knowledge, and a concept that is expanded to the global ecology of today's global governance, that is characterised by an interlocking network of academic publishers, think tanks, advocacy groups and international indices.

Implication is not that these institutions are in lock-step or are seeking the same ends. Rather, the recursive link and the recurrency of thoughts is what brings forth "symbolic authority," in Bourdieu's (1991) terminology, in certain classifications, if they are frequently mentioned in the main courses of thought. To suggest, then, that a good part of future scholarship is just the repetition of already worked out avenues of interpretation, an attitude that treats the history as a starting point for interpretation and does not question it as a result, is acceptable only because it requires only little effort. It is acceptable, then, that much of future scholarship is simply the repetition of already worked out avenues of interpretation, an attitude that sees the history as a starting point rather than poses it as a product of historical circumstances and asks questions about it.

- **Politics of Vilification and the Construction of Civilizational Reputation :**

Both postcolonial theory and discourse analysis on its own are insufficient to explain the durable international reputation that can be won by a contemporary political community as the previous discussion might suggest. Said (1978) illuminated the history of representation in both the colonial period and thereafter, and Foucault (1980) demonstrated that discourse came into existence through a co-construction with power. Both discourse and power however, have the potential to be developed in terms of the cumulative institutional processes which have the effect of creating repeated representations into enduring identities of the political world.

The Politics of Vilification would focus on this theoretical space – a gap to be filled. A Politics of Vilification may not be considered a means of propaganda or intentional distortion. Rather, it is the institutional apparatus that allows the stamping of regularly repeated representations, comparisons and institutional reputations to gradually make the relations they root in become civilizational reputations. Vilification goes not as a consequence of substantively untrue statements, but rather as a consequence of interpretational stabilization. Historically-specific political events, which emerge as significant by repetition, institutionalization, and epistemic amplification, come to be unrecognizable within political communities.

This is an empirical demonstration of some general theoretical claim. The analytical aim is not to objectify or falsely objectify the truth or falsity of criticism but to question the process of the making of international reputations by discourse, the institutional power, and transnational knowledge production. The article contributes to the widening of a political theory of civilizational reputation by cantering the account on epistemic conditions of the legitimacy of individual claims, instead of their empirical accuracy. Such a framework has the potential of application not just for India but also for comparative studies of other societies with international identities that are created in the context of the global regimes of knowledge.

- **Conclusion: Rethinking International Legitimacy Through Civilizational Reputation**

The epistemological process of the international recognition should be studied with a more analytical approach as a field of study of international legitimacy, as it has been suggested by the article. While there has been important scholarship on the nature of democracy, constitutionalism, religious freedom and minority rights in India, there has been little scholarship exploring how Indian representations become established in international authority and as enduring civilizational identities. That international legitimacy is not only created by performances of political institutions, but also by the institutional mediation of political knowledge, this omission cannot be not forgotten, that knows how to classify, to define and to circulate (Foucault, 1980; Fairclough, 1995; Bourdieu, 1991).

The recurring messages, frames and interpretations and institutional authority's ability to shape and create relatively enduring reputational identities in the political process was one of the central drivers that informed the article's discussion of the Theory of Civilizational Reputation. Based on four interrelated processes of international legitimacy production (narrative selection, interpretive framing, epistemic amplification, reputational essentialism and institutional legitimization), the article conceptualises the language of discourse that help to produce international legitimacy. This is because it not only looks at reputation as a by-product of domestic political processes, but reputation as an institutional accomplishment that emerges from a process of interaction between political events and transnational fields of knowledge.

The article has demonstrated that the "significant academic publications, policy reports, governance indexes and advocacy documents do not just reflect political processes, but also "shape" political processes in India. They also construct political reality through repetition of the concepts of the "understandable" and through the formation of interpretive premises related to international perspectives on political communities which are discussed only in comparative terms (Said, 1978; van Dijk, 1998). This analysis was not designed to ignore the empirical problems that have been

raised in these texts, or to take these texts as necessarily being biased. It has rather examined epistemic conditions that can make certain representations legitimate, inter institutional and naturalised in the international political order. The article contributes to the general understanding of discourse as a tool to achieve international legitimization by redirecting the analytical focus away from the validity of the individual claim and to the of institutional production of political reputation.

The postulates deduced from the study do not only apply to India. Institutionalized constellations of 'good' or 'bad' democracy, security, religious freedom, human rights, migration, or authoritarianism can be found throughout other societies who have been the subject of repeated narratives over a long period of time, and may therefore be analysed in a similar way to institutions of civilizations. Comparative research then might focus on the differences and/or similarities in the operation of analogous processes in different geopolitical settings and/or in the creation of different reputational trajectories with different institutional settings. This would have application also for discourse studies and research on international status, legitimacy and the sociology of global knowledge (Adler-Nissen, 2014; Acharya, 2014).

The article also carries forward the arguments raised about Eurocentrism and epistemic authority from the past to the institutional world of the present of global governance. The history of knowledge creation and colonial power has been extensively explored by the postcolonial scholarship (Said, 1978; Chakrabarty, 2000; Mignolo, 2011), but far less is known about the ways in which networks of experts, from academic knowledge to policy institutions, to advocacy organizations to governance indicators, to media systems, together stabilize international political representations at the present moment. The Theory of Civilizational Reputation, which draws on the postcolonial theory, critical discourse analysis and international political sociology, provides a method to analyse the process of the construction, reproduction and institutionalization of political identities within the current global regimes of knowledge.

There is a number of caveats that are to be recognized. The empirical study is limited to texts in English published during the years 2014-2024, and thus excludes other linguistic traditions and regionally different debates. Furthermore, discourse analysis does not go so far as a causal measurement of consequences, but is concerned with interpretive explanation; so it has no capacity to formulate a theory about the wider consequences of reputational narratives by itself. Topics for future research include the processes of emerging, circulating and evolving of reputational narratives, as examined using critical discourse analysis, combined with bibliometric, citation network analysis, computational text analysis, or comparative case study analysis of different institutions.

Finally, I want to put forward a bigger claim: 21st century politics is not just about resources such as territory, military power and economy, but is also about ideas, images and epistemic authority. To be a rival to other states, not only in their international institutional influence, but also in their way of being portrayed in the international political system. The transformation of this process must be brought to light in the way the political knowledge is utilized to affirm the reputation of the civilizations (Foucault, 1980; Bourdieu, 1991). Theory of Civilizational Reputation offers a new analytical lenses to consider the relation between discourse, legitimacy and power in current world politics.

References :

- Acharya, A. (2014). The end of American world order. Polity Press.
- Adler-Nissen, R. (Ed.). (2014). Bourdieu in international relations: Rethinking key concepts in IR. Routledge.
- Amin, S. (1989). Eurocentrism. Monthly Review Press.
- Bourdieu, P. (1991). Language and symbolic power (J. B. Thompson, Ed.; G. Raymond & M. Adamson, Trans.). Harvard University Press.
- Chakrabarty, D. (2000). Provincializing Europe: Postcolonial thought and historical difference. Princeton University Press.
- Charmaz, K. (2014). Constructing grounded theory (2nd ed.). Sage.
- Creswell, J. W., & Creswell, J. D. (2023). Research design: Qualitative, quantitative, and mixed methods approaches (6th ed.). Sage.
- Fairclough, N. (1995). Critical discourse analysis: The critical study of language. Longman.
- Fairclough, N. (2003). Analysing discourse: Textual analysis for social research. Routledge.
- Flyvbjerg, B. (2006). Five misunderstandings about case-study research. Qualitative Inquiry, 12(2), 219–245.
- Foucault, M. (1980). Power/knowledge: Selected interviews and other writings, 1972–1977 (C. Gordon, Ed.). Pantheon Books.
- Freedom House. (2024). Freedom in the world 2024: The mounting damage of flawed elections and armed conflict. Freedom House.
- Gramsci, A. (1971). Selections from the prison notebooks (Q. Hoare & G. Nowell Smith, Eds. & Trans.). International Publishers.
- Kuhn, T. S. (1962). The structure of scientific revolutions. University of Chicago Press.
- Mbembe, A. (2001). On the postcolony. University of California Press.

- Mignolo, W. D. (2011). The darker side of Western modernity: Global futures, decolonial options. Duke University Press.
- Said, E. W. (1978). Orientalism. Pantheon Books.
- Saldaña, J. (2021). The coding manual for qualitative researchers (4th ed.). Sage.
- Santos, B. de S. (2014). Epistemologies of the South: Justice against epistemicide. Routledge.
- Spivak, G. C. (1988). Can the subaltern speak? In C. Nelson & L. Grossberg (Eds.), Marxism and the interpretation of culture (pp. 271–313). University of Illinois Press.
- United States Commission on International Religious Freedom. (2024). Annual report 2024. USCIRF.
- Van Dijk, T. A. (1998). Ideology: A multidisciplinary approach. Sage.
- Van Dijk, T. A. (2008). Discourse and power. Palgrave Macmillan.
- Varshney, A. (2002). Ethnic conflict and civic life: Hindus and Muslims in India (2nd ed.). Yale University Press.
- V-Dem Institute. (2024). Democracy report 2024: Democracy winning and losing at the ballot. University of Gothenburg.
- Engineer, A. A. (Year). The status of freedom of religion or belief in India since 2014. [Complete publisher details to be verified].
- Amnesty International. (2024). Annual report 2023/24: The state of the world's human rights. Amnesty International.
- Human Rights Watch. (2024). World report 2024. Human Rights Watch.

Email Id: hssingh.phd2025@polscience.du.ac.in/abpr90@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 44–47

ग्रामीण रोजगार का सामाजिक व्यवस्था पर प्रभाव

डॉ. रंजना सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, छत्रपति शाहूजी महिला महाविद्यालय, कर्वी, जनपद–चित्रकूट।

भूमिका :

भारत एक ग्रामीण प्रधान देश है, जहाँ जनसंख्या का एक बड़ा भाग गाँवों में निवास करता है। ग्रामीण समाज की सामाजिक व्यवस्था मुख्यतः कृषि, परंपरागत व्यवसायों, पारिवारिक ढाँचे, सामाजिक संबंधों एवं सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित रही है। ऐसे में ग्रामीण रोजगार न केवल आजीविका का साधन है, बल्कि वह सामाजिक व्यवस्था को दिशा देने वाला एक महत्वपूर्ण कारक भी है। ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध रोजगार के अवसर समाज की आर्थिक स्थिति, सामाजिक संबंधों, जीवन–स्तर तथा सामाजिक गतिशीलता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

ग्रामीण रोजगार से आय में वृद्धि होती है, जिससे निर्धनता, बेरोजगारी और पलायन जैसी समस्याओं में कमी आती है। रोजगार के अवसर बढ़ने से ग्रामीण परिवारों में आत्मनिर्भरता का भाव विकसित होता है और शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सामाजिक सहभागिता में सुधार होता है। इसके साथ ही जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर व्याप्त असमानताओं को कम करने में भी रोजगार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विशेषकर महिलाओं और कमजोर वर्गों को रोजगार मिलने से उनकी सामाजिक स्थिति सुदृढ़ होती है और पारंपरिक सामाजिक बंधनों में परिवर्तन देखने को मिलता है।

इस प्रकार ग्रामीण रोजगार सामाजिक संरचना, सामाजिक संबंधों और मूल्यों को प्रभावित करते हुए ग्रामीण समाज में सकारात्मक परिवर्तन का माध्यम बनता है। अतः ग्रामीण रोजगार का अध्ययन सामाजिक व्यवस्था के व्यापक परिप्रेक्ष्य में अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि यह ग्रामीण विकास, सामाजिक न्याय और समावेशी प्रगति की आधारशिला है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित है। तथा कृषक वर्ग के सभी सदस्य कृषि पर निर्भर होते हैं। यदि परिवार सीमित आय वाले तथा परिवार में सदस्य अधिक हों, तो आर्थिक समस्या बनी रहती है। वर्तमान में निरंतर वृद्धि के बेरोजगारी ने निर्धन वर्ग की स्थिति को और भी अधिक जटिल बना दिया है। (विशेषकर कोविड–19 के बाद)

ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित होने तथा कृषि मानसून पर आधारित होने के कारण रोजगार भी मानसून से प्रभावित होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में वर्ष में चार महीने ही रोजगार मिलता है, शेष महीनों में बेरोजगारी

बढ़ जाती है। गांवों में ग्रामीण क्षेत्र के निर्धन परिवार कृषि मजदूरी को ही प्रमुख रोजगार मानते हैं, जिसकी संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। ये ऐसे कारण हैं जो ग्रामीण रोजगार पर प्रभाव डालते हैं।

उद्देश्य :

1. ग्रामीण समाज की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण रोजगार का सामाजिक व्यवस्था पर प्रभाव का अध्ययन करना।
3. ग्रामीण रोजगार की सुलभता न हो पाने के कारणों का पता लगाना।
4. ग्रामीण रोजगार से संबंधित वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।

शोध पद्धति :

- प्रमुख स्रोत हेतु चयनित ग्राम पंचायत "भखारा" के ग्राम "पिपरिया" का चयन किया गया है।
- क्षेत्रीय स्तर पर यह सर्वेक्षण जनवरी 2023 में किया गया।
- इस हेतु कुल 5 उत्तरदाताओं का चयन कर साक्षात्कार विधि द्वारा जानकारी प्राप्त की गई।
- प्रश्नों में सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के 3 प्रश्नों को सम्मिलित किया गया।

(1) व्यवसाय का आधार पर वर्गीकरण :

क्रमांक	व्यवसाय	संख्या	प्रतिशत
1	मजदूरी	11	22%
2	कृषि	32	64%
3	व्यापार	05	10%
4	अन्य	02	04%
	कुल योग	**50**	**100%**

विश्लेषण :

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 64% उत्तरदाता कृषि कार्य में संलग्न हैं। 22% मजदूरी में, 10% व्यापार में और 4% अन्य कार्यों में लगे हैं। इससे ज्ञात होता है कि अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण रोजगार का मुख्य स्रोत कृषि है।

(2) जाति के आधार पर वर्गीकरण :

क्रमांक	जाति	**संख्या**	**प्रतिशत**
1	सामान्य	07	14%
2	पिछड़ी	12	24%
3	अनुसूचित जाति	11	22%
4	अनुसूचित जनजाति	20	40%
	कुल योग	**50**	**100%**

विश्लेषण :

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सर्वाधिक उत्तरदाता अनुसूचित जनजातियों से संबंधित हैं, जिनका प्रतिशत 40% है। इसके पश्चात 24% पिछड़ी जातियों से, 22% अनुसूचित जातियों से और 14% सामान्य जातियों से हैं।

यह भी ज्ञात होता है कि अनुसूचित जनजाति के उत्तरदाता ग्रामीण रोजगार में अधिक भागीदारी करते पाए गए।

(3) मासिक आय के आधार पर वर्गीकरण :

क्रमांक	मासिक आय	**संख्या**	**प्रतिशत**
1	5,000 तक	30	60%
2	10,000 – 20,000	12	24%
3	20,000 – 30,000	05	10%
4	30,000 से अधिक	03	06%
	कुल योग	**50**	**100%**

विश्लेषण :

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाताओं की मासिक आय 5,000 तक है (60%)। केवल 6% उत्तरदाताओं की आय 30,000 से अधिक है। यह दर्शाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आय का स्तर अपेक्षाकृत कम है।

रूपरेखा का संकलन :

रूपरेखा के संकलन हेतु विषय के उद्देश्यों के अनुरूप एक अनुसूची का निर्माण किया गया। इस अनुसूची को लेकर क्षेत्र के उत्तरदाताओं से प्रश्नों सम्बन्धी फील्ड सर्वेक्षण की जाएगी।

निष्कर्ष :

अनुसूचित जनजातियों के उत्तरदाता ग्रामीण रोजगार के प्रति अधिक भागीदारी रखते पाए गए।

- 18–45 आयु वर्गों के सभी उत्तरदाता ग्रामीण रोजगार में भागीदारी करते पाए गए।
- निर्धन वर्ग के उत्तरदाता अधिक थे, जो ग्रामीण रोजगार में भागीदारी करते पाए गए।
- पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को भी ग्रामीण रोजगार में अच्छी संख्या में भागीदारी करते हुए पाया गया।
- 5000–7000 तक की मासिक आमदनी वाले परिवारों की तुलना में अधिक है जो ग्रामीण क्षेत्रीय रोजगार में अधिक भागीदारी करते पाए गए।

सुझाव :

- गाँव में 18–28 वर्ष के सभी लोगों को ग्रामीण रोजगार में भागीदारी करना आवश्यक है।
- गाँव में शैक्षिक स्तर में वृद्धि के लिए व्यक्तियों को जागरूक करना आवश्यक है।
- गाँव के व्यापार क्षेत्र में नये व्यवसायों को बढ़ावा देना आवश्यक है।
- गाँव में कम आय प्राप्त होने के कारणों को दूर कर रोजगार के लिए कुटीर उद्योग, स्वरोजगार के विकल्पों को विकसित करना आवश्यक है।
- गाँव में वर्तमान में छूटे हुए बेरोजगारों को तकनीकी ज्ञान प्रदान करना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ. जी.एन.पी. शर्मा, ग्रामीण समाजशास्त्र अध्ययन, मंगलदीप पब्लिकेशन, गांधी टेकरी, भोपाल, संस्करण – प्रथम, 2009
2. डॉ. प्रदीप डी. अशोक, ग्रामीण एवं सामाजिक समस्याएं, सरोज पब्लिकेशन, गांधी टॉकीज, भोपाल, संस्करण (एम.पी.एस.सी.) सितंबर 2009
3. डॉ. प्रदीप डी. अशोक, भारतीय समाज संरचना, नवम् 2009
4. सुषमा पुष्पा त्रिपाठी, भारत में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन तथा परिवेश, 4–378, दिल्ली –110032, संस्करण – 2001
5. डॉ. सुषमा सिंह, समकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था : व्यावहारिक रूप।

पत्रिका :

1. कुरुक्षेत्र – ग्रामीण रोजगार विकास, 2001
2. प्रतियोगिता दर्पण – हिंदी मासिक पत्रिका, जनवरी 2007

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 48–54
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

TRAINING FOR YOUTH IN TRANSISITION : A HOLISTIC DEVELOPMENT MODEL TO FOSTER CONFIDENCE, COURAGE AND CHARACTER

Vikram Kumar
Assistant Professor (Guest Faculty)
Department of Zoology,
Govt. Girls College, Pokaran, Dist- Jaisalmer (Rajasthan) INDIA

Abstract :

This research paper presents a holistic development model focusing on the emotional, mental, physical, social, and moral growth of youth, specifically targeting school leavers preparing for competitive exams. The study examines the psychological challenges faced by students in intense competitive environments. It is observed that while students possess immense potential and the capacity to study rigorously, many remain trapped in confusion and lack clarity in their learning journey. To address this critical gap, the paper proposes an integrated training framework aimed at fostering resilience, clarity, confidence, and inner strength. The model provides structured psychological and developmental guidance to help students overcome fear, reduce distress, and focus their energy effectively. The findings and recommendations serve as a foundation for educators, policymakers, and mental health professionals to implement supportive interventions tailored to the unique needs of exam aspirants in high-pressure environments.

Keywords :

Holistic Development, Emotional Well-being, Competitive Exam Stress, Youth Empowerment, Self-Guided Learning, Decision-Making

Introduction :

In recent years, there has been a significant rise in emotional and psychological challenges faced by students preparing for competitive examinations. Despite having the potential and willingness to study, many students struggle with confusion, fear, lack of guidance, and an overwhelming pressure to succeed. These internal conflicts, when left unaddressed, can lead to mental fatigue, loss of

motivation, isolation.

This research emphasizes the urgent need for a holistic training approach for youth transitioning from school to the competitive academic world. Unlike traditional methods that focus only on academic success, this framework integrates emotional stability, mental strength, physical discipline, social balance, and moral reasoning — all of which are critical for sustainable success and mental well-being.

The paper also aims to build a self-sufficient decision-making capacity in students, especially for those who may lack mentorship or support systems. Through this framework, students can learn how to manage fear, reduce stress, and achieve clarity without depending entirely on external validation or constant supervision.

The holistic model discussed here is designed not only to enhance academic performance but also to build life skills and inner resilience, allowing students to grow into emotionally and mentally balanced individuals.

Objective of paper :

1. To develop a holistic training framework that nurtures emotional, mental, physical, social, and moral development in students preparing for competitive exams.
2. To identify key psychological challenges such as fear, confusion, and pressure that commonly affect youth in high-stress academic environments.
3. To propose self-guided learning strategies that enable students to make clear and confident decisions even in the absence of external mentorship.
4. To reduce anxiety, fear-based reactions, and the risk of emotional breakdowns through structured personal development techniques.
5. To promote balanced, independent, and resilient personalities capable of handling academic and life challenges effectively.
6. To empower students with inner discipline so that they can progress confidently even without constant mentorship or guidance.
7. To integrate the 5S Technique (Sort, Set in Order, Shine, Standardize, Sustain) into student self-management practices, enabling them to organize their study plans, environment, and mental state for better academic outcomes.
8. To demonstrate that emotionally, mentally, physically, socially, and morally balanced students are capable of independent, stress-free, and value-based decision-making in academic as well as personal life.

Problem statement :

In the current educational scenario, students who genuinely wish to focus and excel often face multiple challenges beyond their control. Not only do parents sometimes lack sufficient knowledge or strategies to guide their children effectively, but teachers and the immediate environment also play a crucial role. For instance, a student aspiring to become a doctor may struggle if the surrounding teachers or peer group do not support or align with his goals, which can negatively affect his motivation and performance.

Furthermore, the pervasive influence of social media continues to distract students, hampering their concentration and focus on studies. Many students experience confusion and anxiety, not due to lack of ability but due to absence of structured guidance on effective study techniques such as note-making, reading strategies, memory retention, and time management.

This situation underscores the urgent need for a holistic and comprehensive training model that empowers students emotionally, mentally, physically, socially, and morally. Such a model would enable students to overcome external and internal obstacles, cultivate self-discipline, and progress confidently even in the absence of direct mentorship.

Literature review :

In the Indian education system, efforts have long been made to promote the holistic development of students — encompassing emotional, mental, physical, social, and moral growth. However, most school curriculums and coaching systems have traditionally focused only on academic achievement, often neglecting the overall well-being and personal development of learners. As a result, students frequently experience stress, confusion, and a lack of self-reliance.

The National Curriculum Framework (NCF 2005 and NCF 2023) has emphasized that education should not be limited to rote learning or exam performance. Instead, it should serve as a foundation for shaping the learner's complete personality. The framework promotes the idea that students must be empowered to think independently, make informed decisions, and develop the emotional and mental resilience needed to face life's challenges.

Today's students are seeking more than textbook knowledge — they want to develop life skills, self-discipline, and moral values. Achieving this requires collaboration among teachers, parents, and policymakers to create an environment where students can explore their identities, grow with confidence, and act based on their true potential — not just societal or academic expectations.

Several psychological studies and educational reports also highlight that decisions made during adolescence significantly impact long-term development. If students are guided in understanding their emotions, setting goals, and managing their time effectively, they are more likely to succeed

both academically and in life.

In today's digital world, where social media pressure, constant comparison, and performance anxiety are common, a balanced, practical, and supportive education system is needed — one that teaches students not just how to study, but how to live.

Methodology :

This research is based on conceptual compilation and qualitative analysis. The study synthesizes existing psychological, educational, and social development theories to design a holistic training guideline aimed at school graduates and competitive exam aspirants.

The methodology includes the following steps :

1. Literature Compilation :

Information from various books, government policies (like NEP, NCF), psychological theories, and existing developmental models was collected.

2. Thematic Integration :

The collected material was classified under five domains — emotional, mental, physical, social, and moral development.

3. Problem Identification :

Issues such as student confusion, lack of mentoring, and social media distraction were identified through secondary sources, expert discussions, and observation.

4. Framework Construction :

A structured training model was proposed including daily techniques such as self-discipline, emotional regulation, focus enhancement, decision-making without mentor dependency, and the 5S method for self-study.

5. Validation (Future Scope) :

Although this model is theoretical, it is proposed for practical validation through implementation among school graduates or aspirants. The results may be used for future action research.

Findings :

1. Students who receive holistic development training focusing on emotional, mental, physical, social, and moral aspects show improved self-confidence and decision-making abilities.
2. Integration of self-guided techniques, such as the 5S method for study organization, reduces confusion and increases study efficiency even without external mentoring.
3. Emotional and mental training helps students manage fear, anxiety, and pressure commonly associated with competitive exams.
4. Social and moral development components contribute to better interpersonal skills and ethical

grounding, which support long-term personal and academic success.

5. The absence of a mentor is less detrimental when students are trained to be self-reliant through structured routines and practices.

Discussion :

The proposed holistic training framework addresses a critical gap in existing education systems where academic performance is often prioritized over overall student well-being. By emphasizing emotional and mental resilience alongside physical health, social skills, and moral values, students become equipped to face competitive pressures confidently.

This model promotes independence, reducing student's dependency on mentors and external guidance, which is especially important in contexts where mentorship may be unavailable. Moreover, using simple organizational techniques like 5S encourages students to maintain a disciplined approach, which is crucial for sustaining motivation and clarity.

While this framework requires practical validation through application in real student settings, the theoretical foundations and literature support its potential effectiveness. Future studies could focus on implementing and measuring outcomes to further strengthen these findings.

Conclusion :

This study highlights the critical need for holistic development encompassing emotional, mental, social, moral, and physical growth in school graduates, especially those preparing for competitive examinations. Traditional education systems tend to focus primarily on academic achievement, often neglecting these essential dimensions, which leads to confusion, stress, and a lack of self-reliance among students.

The proposed holistic training model aims to empower students to become self-reliant, confident, and balanced individuals even in the absence of direct mentorship. By incorporating organizational techniques like the 5S method, the framework provides students with clear guidelines for effective study habits and life management, thereby enhancing focus and reducing fear and anxiety.

Ultimately, this research seeks to create an environment where students not only excel academically but also develop into strong, balanced, and ethical members of society capable of navigating life's challenges successfully.

Suggestions / recommendations :

1. Implementation of Holistic Training Programs :

Educational institutions, coaching centers, and policymakers should adopt and integrate holistic training models that focus on emotional, mental, physical, social, and moral development alongside academic preparation.

2. Promote Self-Reliance in Students :

Training modules should be designed to empower students to make decisions independently, especially in environments where mentorship is limited or unavailable.

3. Incorporate 5S Technique in Study Habits :

Encouraging students to apply the 5S (Sort, Set in order, Shine, Standardize, Sustain) method can significantly increase their productivity and organization. This structured approach helps students develop confidence and belief in their ability to handle any situation effectively.

4. Parental and Teacher Awareness Programs :

Workshops and awareness campaigns for parents and teachers can help them understand their role in supporting holistic student development and reduce pressure on students.

5. Leverage Technology Mindfully :

While digital tools and social media can be distractions, they can also be harnessed for educational and emotional support if used mindfully under guidance.

6. Future Research and Validation :

Encourage further studies to implement the proposed training model in real settings, gather feedback, and refine it for broader applicability.

References / Bibliography :

1. National Council of Educational Research and Training (NCERT).(2005). National Curriculum Framework 2005. New Delhi: NCERT.
2. National Council of Educational Research and Training (NCERT). (2023). National Curriculum Framework 2023. New Delhi: NCERT.
3. Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Education.
4. Maslow, A. H. (1943). A theory of human motivation. Psychological Review, 50(4), 370-396.
5. Pavlov, I. P. (1927). Conditioned Reflexes. Oxford University Press.
6. Pauk, W., & Owens, R. J. Q. (2013). How to Study in College: The Cornell Note Taking System. Wadsworth Publishing.
7. Ebbinghaus, H. (1885). Memory: A Contribution to Experimental Psychology.
8. National Education Policy 2020, Ministry of Education, India.
9. https://ncf.ncert.gov.in/ — National Curriculum Framework
10. https://en.wikipedia.org/wiki/5S_(methodology) — 5S Technique

11. ACKNOWLEDGEMENT :

I sincerely acknowledge the motivation and inspiration received from students facing emotional,

academic, and psychological challenges during competitive exam preparation. Their silent struggles gave this research its purpose.

I express deep gratitude to all the thinkers, educators, mentors, and well-wishers whose work in psychological and holistic learning methods laid the foundation of this study. Special thanks to the conceptual frameworks including the 5S Technique, Cornell Note-Taking System, Spaced Repetition (Ebbinghaus Curve), which significantly enriched the quality of this work.

I also thank my family, peers, and the educational environment that continuously inspired me to focus on creating a solution for independent, confident, and emotionally strong learners.

E-Mail – vikramgv2020@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 55–58

अद्वैत वेदान्त परम्परागत गुरू–शिष्य सम्बन्ध की वर्तमान में प्रासंगिकता

गायत्री मिड्ढ़ा
शोधार्थी, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर, पंजाब।

भारत की बात करें तो महात्मा बुद्ध द्वारा प्रवर्तित बौद्धदर्शन, चौबीसवें जैन तीर्थंकर महावीर अथवा वर्धमान महावीर द्वारा प्रवर्तित जैनदर्शन तथा चार्वाक द्वारा प्रवर्तित चार्वाक नामक नास्तिक दर्शनों तथा 6 आस्तिक दर्शनों का प्रचलन अनादि काल से चला आ रहा है। जिसमें युक्ति अर्थात् तर्कशास्त्र को सर्वश्रेष्ठ प्रमाण स्वीकार किया जाता हो, प्रत्येक वस्तु की सृष्टि स्वभाव से अर्थात् अपने आप मानी जाती हो, ईश्वर को सृष्टि का कर्ता तथा वेद को ईश्वरीय ज्ञान न माना जाये, उसे नास्तिक मत कहते हैं –

'युक्तिबलीयसी यत्र सर्व स्वभाविकं मतम्।
कस्यापि नेश्वरः कर्ता न वेदो नास्तिकं हि तत्।'[1]

आस्तिक दर्शन तथा उनके प्रवर्तक ऋषि हैं –

आस्तिक दर्शन प्रवर्तक ऋषि अथवा मुनि

सांख्यदर्शन	कपिल मुनि
न्यायदर्शन	महर्षि गौतम
वैशेषिकदर्शन	कणाद मुनि
योगदर्शन	महर्षि पतंजलि
पूर्वमीमांसा	आचार्य जैमिनी
उत्तरमीमांसा (वेदान्त)	ऋषि बादरायण

प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष अपनी विशेषताओं के कारण विश्व गुरु के नाम से विख्यात रहा है। भारतीय संविधान आज जिस शिक्षा के अधिकार की बात करता है, वहीं संस्कृत साहित्य तो प्राचीन काल से ही विद्या ग्रहण करने को बच्चों का मौलिक अधिकार मानता चला आ रहा है। संस्कृत साहित्य में माता–पिता को निर्देशित किया गया है कि वे अपनी सन्तान की शिक्षा–दीक्षा का पूर्ण ध्यान रखें। नीतिशास्त्रकार नारायण पण्डित का मानना है कि जिन माता–पिता ने अपनी सन्तान को नहीं पढ़ाया, वे उसके वैरी हैं तथा वह सन्तान सभा में उसी प्रकार शोभा को प्राप्त नहीं करता, जिस प्रकार हंसों में बगुला अपशोभित होता है –

'माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।'

'न पोषेते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा।।''[2]

स्नातक विद्या तभी ग्रहण कर पायेगा, यदि वह गुरु के सान्निध्य को प्राप्त करके उसके प्रति श्रद्धावान रहते हुए उसका अनुगमन करेगा। 'उपनिषद्' शब्द के अर्थ पर ही विचार किया जाये तो स्पष्ट है कि गुरु के सान्निध्य अर्थात् गुरुकुल में निवासपूर्वक गुरु के समीप रहते हुए ज्ञानार्जन करना। गुरु से पढ़ने का इच्छुक शिष्य शुद्ध वस्त्र पहनकर शास्त्रोक्त विधि से आचमन करके उत्तर दिशा की ओर मुख करके, जितेन्द्रिय होकर ब्रह्माञ्जलि करके गुरु के समीप बैठे और ऐसे शिष्य को गुरु शिक्षा प्रदान करे –

'अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमुदङ्मुखः।

ब्रह्माञ्जलिकृतोऽध्यायो लघुवासा जितेन्द्रियः।।'[3]

महर्षि वाल्मीकि ने आदिकाव्य रामायण में रामादि चार भाइयों का विद्याध्ययन के लिये गुरुकुल में जाने का उल्लेख किया है। भारतवर्ष की उन समस्त विशेषताओं में समृद्ध गुरु–शिष्य परम्परा का महत्त्व सर्वोपरि है। अद्वैत वेदान्त परम्परा में गुरु–शिष्य सम्बन्ध को घोषित किया गया है, वह सर्वथा उल्लेखनीय है। अद्वैत वेदान्त परम्परा में आचार्य शंकर का नाम विशेषतः स्मरण किया जाता है। विभिन्न उपनिषदों पर इनके द्वारा किया गया भाष्य सर्वमान्य है।

अद्वैत वेदान्त विचारधारा के संस्थापक शंकराचार्य हैं। इनका मानना है कि ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है, जीव और ब्रह्म भिन्न–भिन्न नहीं हैं। केवल अज्ञानवश जीव ब्रह्म को नहीं जान पाता, जबकि ब्रह्म तो स्वयं उसके भीतर विद्यमान है। शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र में "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा कहकर अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। एक, अद्वितीय, अनिर्वचनीय ब्रह्म ही इस संसार में है, नाना प्रकार की जो वस्तुएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं, वे असत्य हैं, वस्तुतः माया अर्थात् अज्ञान से उत्पन्न हुई अज्ञानवश ही सत्य के समान प्रतीत होती हैं। यह वेदान्तदर्शन की मान्यता है –

'ब्रह्मैकमद्वितीयं स्यान्नान्यन्नेहास्ति किंचन।

मायिकं सर्वभेदानामिति वेदान्तिनां मतम्।'[4]

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं को वेदान्त का संकलनकर्ता माना है। उनका कहना है कि वे प्रत्येक जीव के हृदय में आसीन हैं और उनसे ही स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति होती है। वे ही वेदों द्वारा जानने योग्य हैं। अतः निस्सन्देह रूप से वे वेदों के ज्ञाता और वेदान्त के संकलनकर्ता हैं–

'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो

मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो

वेदान्त-द्वेदविदेव चाहम्।'[5]

अद्वैत वेदान्त परम्परा में गुरु–शिष्य सम्बन्ध को घोषित किया। गुरु के लिये कर्तव्यों का निर्धारण करते हुए वेदान्तसार में गुरु के लिये निर्दिष्ट है कि गुरु को चाहिए कि वह प्रशान्तचित्त वाले, अपनी इन्द्रियों को

वशीभूत कर लेने वाले, निर्दिष्ट कर्मों को करने वाले, विवेकादि गुणों से सम्पन्न, आचार्य का अनुगमन करने वाले तथा मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति को सदा ज्ञान प्रदान करता रहे–

'प्रशान्तचित्ताय जितेन्द्रियाय च प्रहीणदोषाय यथोक्तकारिणे।

गुणान्वितायानुगताय सर्वदा प्रदेयमेतत् सततं मुमुक्षवे।।'[6]

आगे वेदान्त का कहना है कि भीषण गर्मी से सन्तप्त मनुष्य जिस प्रकार अपनी व्याकुलता को दूर करने के लिये सरोवर के समीप जाता है, उसी प्रकार वेदाङ्ग, ब्रह्मज्ञान का अधिकारी जन्म, अवस्था, वृद्धावस्था तथा रागादि सांसारिक कष्टों से पीड़ित होकर हाथ में भेंट लेकर ब्रह्म में निष्ठावान वेद–अध्येता आचार्य के सान्निध्य को प्राप्त कर उनका अनुग्रही बनता है –

'अयमधिकारी जन्ममरणादिसंसारानलतप्तो दीप्तरश्मि जलराशिमिवोपसरणीयः।

श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं गुरूमुपसृत्य तमनुसरेत्....।'[7]

अद्वैत वेदान्त का कहना है कि गुरु का भी दायित्व बनता है कि वह ऐसे सुयोग्य शिष्य के प्रति परम दयालु होकर 'अध्यारोप' और 'अपवाद' न्याय से उसे ब्रह्म रूप रहस्य का उपदेश प्रदान करे–

''सः (गुरूः) परमकृपया 'अध्यारोपापवाद' न्यायेनानुपपत्तिविघ्नान्....।''[8]

अद्वैत वेदान्त परम्परागत गुरु–शिष्य सम्बन्ध की विशेषताओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि वह व्यवस्था आधुनिक स्वरूप में अत्यन्त प्रासंगिक है। आज गुरु–शिष्य के सम्बन्धों में वह बात नहीं रही जोकि आज से वर्षों पूर्व थी। इस सम्बन्ध को सुधारने में अद्वैत–वेदान्त की विचारधारा अत्यन्त प्रासंगिक है। शंकराचार्य ने भाष्य करते समय श्वेताश्वेतरोपनिषद् के इस शान्तिपाठ में की गयी इस प्रार्थना में गुरु–शिष्य के गहन सम्बन्ध को घोषित किया है –

''ऊँ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवाव है। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।।''[9]

अर्थात् हे परमात्मन्! आप हम गुरु–शिष्य दोनों की साथ–साथ सब प्रकार से रक्षा करें, हम दोनों का आप साथ–साथ समुचित रूप से पालन–पोषण करें, हम दोनों साथ ही साथ सब प्रकार से बल प्राप्त करें, हम दोनों की अध्ययन की गयी विद्या तेजपूर्ण हो। हम विद्या में किसी से परास्त न हों, हम दोनों आजीवन परस्पर स्नेहसूत्र से बंधे रहें तथा हमारे भीतर परस्पर अथवा अन्य किसी से कभी भी द्वेष न हो। हे परमात्मन्! तीनों तापों से हमारी निवृत्ति हो।

उपनिषद् का '''आचार्य देवो भव''' अर्थात् 'गुरु को देवता मानो' कथन गुरु के महत्त्व को प्रकाशित करता है, जोकि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त अनुकरणीय है।

अतः उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि अद्वैत वेदान्त में गुरु तथा शिष्य की पारस्परिक समृद्ध परम्परा का अत्यन्त विस्तारपूर्वक वर्णन संस्कृत साहित्य ने करते हुए दोनों के गुणों एवं कर्तव्यों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

सन्दर्भ :

1. शुक्रनीति, 4/3/53

2. हितोपदेश, प्रस्ताविका, श्लोक संख्या 38
3. मनुस्मृति, 2/70
4. शुक्रनीति, 4/3/48
5. श्रीमद्भगवद्गीता, 15/15
6. वेदान्तसार, पृष्ठ संख्या 56
7. वेदान्तसार, पृष्ठ संख्या 60
8. वेदान्तसार, पृष्ठ संख्या 61
8. श्वेताश्वेतरोपनिषद्, शान्तिपाठ।
9. तैत्तिरीयोपनिषद्, 1.11।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 59-65

Displacement And Identity in Bengal : Narratives of Refugee Lives Across Borders

Sagar Sarker
Research Scholar, Department of Political Science
Munger university, Munger, Bihar -811201

Abstract :

The Partition of the country was finalized with the attainment of independence on August 15, 1947, marking the beginning of a massive influx of refugees. This migration had actually commenced following the Noakhali riots of 1946; however, in the wake of Partition and independence, a vast number of refugees—akin to a surging flood—poured into West Bengal. The events surrounding how millions of people, with heavy hearts, abandoned their ancestral homesteads to cross the border into this region—carrying dreams or nightmares of building a new life in an unfamiliar land—stand as a defining episode in South Asian history. A refugee is defined as someone forcibly displaced from their homestead and ancestral land. Those expelled from their ancestral homes sought shelter in the damp, marshy areas, ditches, and railway embankments of West Bengal. The influx of refugees into India occurred in two primary phases: the first spanning from the 1947 Partition to 1970, and the second extending from the birth of independent Bangladesh in 1971 to the present day. The first wave crossed the border at Darshana (during the era of train travel), while the second wave arrived via Jashore to cross the Bongaon border. Millions of Bengali Hindus and members of marginalized communities arriving in West Bengal endured a long and harrowing ordeal in their quest for survival and a new identity. In this struggle to live with the label of "refugee," their very identity and existence faced a profound crisis. In this research paper, I have attempted to discuss the multidimensional aspects of the displacement and identity formation of Bengali refugees. This displacement was not merely a geographical relocation; it was a deeply traumatic experience of severance from ancestral hearths, language, culture, and long-standing social roots. The objective of this paper is to analyze the refugees' experiences of displacement, understand the processes of identity construction, and grasp the significance of cultural adaptation and the narratives surrounding their cross-border migration.

Key-Words : Displacement, Identity, Refugees, Border, Partition, Belonging.

Following the Partition of 1947, a vast number of displaced persons migrated to West Bengal in the wake of the riots that broke out in February 1950. This migration from the other side of Bengal was by no means an easy process; these individuals were compelled to abandon their cherished ancestral homes—their very birthplaces—amidst immense hardship and turmoil. The causes behind this exodus were political, economic, and religious in nature. Faced with discrimination and fearing for their lives and honor, they were forced to leave everything behind. They made their way to West Bengal via waterways, railways, on foot, and by other means. Ultimately, the Partition rendered them uprooted and homeless. It is these displaced migrants in a new land who came to be known as 'refugees.' The demarcation of the Radcliffe Line in 1947 triggered a massive influx of people from East Bengal into India. This displacement was a curse in their lives; bearing the heavy burden of uprooting and shedding tears, they crossed borders to reach West Bengal. As a result of this forced displacement, they were compelled to live for extended periods in permanent or semi-permanent camps, or in settlements established through forcible occupation (squatter colonies). For the refugees arriving in this part of Bengal, Kolkata's Sealdah Railway Station was the primary destination.

However, life in the refugee camps was incredibly arduous. Upon disembarking at Sealdah Station, they had to queue up for vaccinations against cholera and other diseases, followed by another line for the Relief and Rehabilitation Department. Refugees waiting at the station were provided with flattened rice (chire) and jaggery (gur) free of cost. It is said that the platforms were often strewn with the refugees' luggage and unhygienic bedding, while their lives were made miserable by various ailments. It is a documented fact that many of these refugees initially sought shelter with friends and relatives in Kolkata and its surrounding areas; however, such arrangements rarely lasted long, forcing them to return to their previous shelters. Scrambling for government aid, fighting over water at public taps, sleepless nights, hunger, and thirst became their constant companions. Those who arrived early on took shelter in abandoned military camps, while later arrivals found refuge in military barracks or vacant houses. By 1950, several refugee camps had been established; examining them sheds further light on the realities of the refugees' lives. Let us first look at the medical facilities: at the Dhubulia camp in Nadia, there was a hospital with approximately 60 beds for general patients and 15 for those with infectious diseases, alongside 25 temporary tents set up for smallpox patients. The emergency department operated around the clock. A total of 625 refugees died at the Dhubulia camp; statistical data suggests that the annual mortality rate across West Bengal was 40 per 1,000 people. A medical facility for refugees was also opened at the Cooper's Camp in Ranaghat in March 1950.

Now, let us turn to the painful saga of uprooted refugees shedding their old identities to forge

new ones in an unfamiliar land. The refugee crisis was the most pressing issue in post-independence India, and specifically in West Bengal. Although officially designated as "displaced persons," they did not constitute a single, homogeneous community. The rehabilitation of refugees became increasingly complex due to West Bengal's high population density; acquiring land for their resettlement meant procuring it from those already residing in the state. This situation created the potential for growing friction between the refugee families and the local residents of West Bengal. Describing the dire plight of the refugees, Ashok Mitra wrote that the refugee communities—gathered in colonies, on railway platforms, and in urban slums—underwent a profound transformation over two decades. Brahmins, Vaidyas, and Kayasthas gradually let go of the pride and nostalgia associated with the secure, comfortable lives they had once led on their ancestral lands in East Bengal. Memories of granaries overflowing with paddy and ponds teeming with fish faded until they vanished completely. Yet, where there were no memories to bind them to the past, there was no rigidity; consequently, the children of the colonies could mingle on equal terms, drawn together by the shared experience of destitution.

Nevertheless, to sustain their existence in this new land, refugees staged various protests at different times—movements that came to be known collectively as the "Refugee Movement." Prominent figures such as Dr. Meghnad Saha, Acharya Jadunath Sarkar, Dr. Ramesh Chandra Majumdar, and Dr. Syama Prasad Mukherjee raised their voices in support of the refugees' demands. Through the efforts of Anil Sinha—a refugee leader and CPI theoretician—representatives from 43 different refugee organizations gathered at a conference in Kolkata in 1950, aiming to unite the diverse refugee groups into a single, cohesive organization; it was at this event that their unified organization was formed. Refugees arriving in West Bengal gradually became involved in Left-wing politics and movements. The Partition brought about profound changes in the lives of these refugees; however, there was a certain friction between the refugee families and the local residents of West Bengal. This gave rise to the "Bangal versus Ghoti" debate. The displacement experienced by those arriving from East Bengal had a massive impact on their personal lives, fostering a latent conflict—both familial and cultural—between the "Ghoti" and "Bangal" groups. Despite differences in language, dietary habits, and culture, the "Bangal" identity eventually evolved into a symbol of struggle, existence, and protest.

Leaving behind the sorrowful memories of their abandoned homelands, these refugees began preparing to adapt to their new environment. We know that the greatest crisis facing these refugees on Indian soil was the question of identity: were they people of East Bengal, or were they new citizens of this Bengal? Bearing this dual identity left them in a state of constant mental exhaustion. Refugee literature has demonstrated that identity is not a static or fixed concept; rather, it is continuously constructed through socio-political experiences. Following the enactment of the (Citizenship Act ,

1955,)rules regarding citizenship were established based on birth, descent, and registration. However, a vast number of these people in West Bengal live in fear, often concealing their true identities. Refugees who arrived from East Pakistan prior to 1971 did not initially agitate for citizenship rights; however, organizations representing refugees arriving from Bangladesh after 1975 began demanding citizenship. Numerous political and non-political groups emerged to address the refugee crisis, gradually organizing movements to press for their demands. Left-wing parties leveraged the refugee issue to advance their own political agendas, thereby making refugees increasingly relevant in the political landscape. Simultaneously, a bond began to form between the refugees and the local population. The political dynamics of West Bengal started shifting as early as the 1950s, with these refugees eventually playing a pivotal, almost decisive, role in the state's politics. Yet, the politicization of refugee life—or the entry of refugees into the political arena—was a formidable challenge. Having endured unspeakable oppression, exploitation, humiliation, and neglect, the refugees eventually became vocal in their protest. This spirit of protest paved the way for them to utilize the political arena to achieve their objectives. Gradually, they began to play an active role in political activities and established their own organizations. To ensure their survival in this new land, they focused on politics, the establishment of refugee colonies, education, and employment. As they began to achieve success in these endeavors, however, conflicts inevitably arose between the refugees and the local population.

The arrival of refugees from East Bengal in Kolkata brought about an immediate and massive shift in the city's demographic composition. Initially, refugees occupied abandoned army camps—such as those at Ballygunge Lake, Ballygunge Circular Road, Durgapur, and Dharmatala—as well as some vacant houses. The first planned colony was established in Jadavpur; refugees took over an abandoned military wireless station located slightly to the south and named the settlement 'Bijoygarh'. In 1948, they set up their first primary school in this squatter colony, naming it 'Bani Vidya Path'. In 1949, they established a secondary school called 'Jadavpur Bastuhara Vidyapith', which was later split into two separate institutions. Bijoygarh Jyotish Ray College was founded on November 2, 1950. Prior to this, in 1948, the Bijoygarh market had been established with limited capital; a post office opened in 1949, followed by a medical dispensary in 1950. It is worth noting that Triguna Sen, the Principal of Jadavpur Engineering College (now Jadavpur University), along with his students, played a pivotal role during the development of the Bijoygarh colony.

The roots of the protests at Jadavpur University against the new citizenship law introduced by the Modi government can be traced back to this very history. While some refugees eventually returned to East Bengal, the majority sought to become permanent residents of this region. They established several squatter colonies, such as Shahidnagar, Kalyangarh, Azadgarh, Gandhinagar, and Milangarh.

Organizations like the 'Sanjukta Bastuhara Parishad' and 'Nikhil Banga Bastuhara Karma Parishad' were formed to facilitate the creation of these colonies. Notably, upper-caste individuals from East Pakistan did not participate in the land-occupation initiatives. The process led to numerous legal battles and police crackdowns. Refugees frequently staged rallies and meetings, effectively bringing the city of Kolkata to a standstill. Prominent lawyers from Kolkata fought on their behalf, eventually compelling the government to grant official recognition to these colonies, thereby securing permanent homes for the refugees. Furthermore, the refugees demanded—and secured—voting rights in their new home. Even after securing voting rights, refugees continued to wage numerous movements and struggles. Indeed, Left-wing politics rose to prominence precisely through these struggles for refugee demands—a concept that remains largely established in West Bengal's politics today. This political landscape was shaped by the very hands of the pro-Communist refugees arriving from East Bengal.

Refugee organizations fought hard for land, housing, rations, employment, and full citizenship rights, achieving significant success. For those arriving in West Bengal after the Partition, the experience was not merely about leaving their homeland; it marked a profound transformation of their social and cultural identities in a new land. Driven by the necessity of survival in an unfamiliar environment, their dietary habits, language, and folk culture underwent unique blends and changes. The staple diet of the people from East Bengal consisted primarily of various fish—such as the Padma Hilsa, Chital, Koi, and Magur. Upon arriving in West Bengal, however, they could not access all the same fish varieties or ingredients due to geographical and climatic differences. Consequently, a new culinary fusion emerged: local fish like Rohu and Catla were prepared using East Bengali spices and cooking techniques—such as cooking with mustard paste and chili. In refugee colonies, they would adapt affordable food items, seasoning them to suit their own tastes. Let us now turn to the linguistic aspect. Refugees faced significant challenges regarding their dialects—such as the accents of Bikrampur, Noakhali, or Sylhet—when adapting to the local Bengali spoken in West Bengal.

However, out of economic necessity, people from East Bengal began speaking Standard Bengali while retaining traces of their native accents. Furthermore, prolonged interaction with the local population of West Bengal led to the influence of local vocabulary on the refugees' speech. The folk culture of East Bengal—which was primarily agrarian and river-centric—underwent a significant transformation upon relocation to West Bengal. Traditions such as Brata rituals, Poush Parban, Poush Sankranti festivals, and wedding songs evolved considerably to adapt to the new environment. Musical genres from the other side of the border—such as Ghatu, Bhatiyali, Jari, and Baul—merged with the culture of West Bengal, adding a new dimension to the local cultural landscape. During their time in places like Sealdah or harsh terrains like Dandakaranya, folk culture became a vital source of mental

solace for the refugees as they struggled to survive. A unique "Colony Culture" emerged from a blend of elements : the villages they had lost, stirring family tales, deep reverence for their homeland, and the juxtaposition of memories from the past with the realities of their new lives.

Following the Partition, the lives of refugee women underwent profound changes regarding social status and family roles; the need for survival compelled many to step out of the domestic sphere and engage in various professions. As the newly arrived refugees hailed from the fertile agricultural regions of East Bengal and were industrious by nature, they played a significant role in advancing agriculture in their new home. Alongside farming, many refugees engaged in diverse trades, working as blacksmiths, potters, barbers, carpenters, washermen, weavers, tailors, and bidi workers. Educated refugees established primary and secondary schools within the colonies; these institutions served as focal points for the refugees' political resistance. Additionally, a large number of refugees found employment in teaching and clerical positions. Under the rehabilitation policy of Dr. Bidhan Chandra Roy—the then Chief Minister of West Bengal—educated refugee youths demanded priority in government employment. However, educated Bengalis from upper-caste backgrounds were relatively more successful in securing government jobs. Since a significant portion of the refugee population arriving from East Bengal was already educated, they emerged as a middle class in West Bengal through their labor, intellect, and the establishment of refugee colonies.

Conclusion :

Extensive research, creative works, literature, plays, and films have been produced regarding the Partition of the country. Numerous valuable writings by and about refugees have also emerged over time. In conclusion, I would like to state that displacement was not merely geographical; it was also psychological and cultural. Initially, the identity of a 'refugee' in West Bengal led to social ostracism, but these refugees later evolved into a significant political force. While the first generation of refugees clung to memories of East Bengal, the second and third generations forged a new identity centered on West Bengal. Displacement and the crisis of identity constitute a historical reality for Bengalis. Upon arriving in this region, refugees blended their own culture with the local culture to create a unique synthesis. Over time, they shed the 'refugee' label and established themselves as citizens of West Bengal. Yet, their struggle did not cease there; in recent times, the issue of securing permanent citizenship for refugees—particularly the Matua community—has come to the forefront. Ultimately, the enduring shadow of the Partition and the experience of displacement will remain forever etched in history as an integral part of the Bengali identity.

References :

1. Chatterji,J.(2007). The Spoils of partition: Bengal and India,1947-1967,'(CPU:2018)

2. 2. chakrabarti,P.(1990).The Marginal Men:The Refugees and The left Political Syndrome in lWest Bengal. Naya prakash.
3. Ghatak ,R .(2000).Cinema and Ritwik Memorial Trust.
4. Dasgupta, Abhijit .(2016).Displacement and Exile :The state Refugee relations in India. New Delhi: Oxford University press
5. Chakraborty, Kumar ,Prafulla. prantik Manab, pratikshan publication Pvt Ltd ,Kolkata 1997
6. Chakraborty, Saroj . My year's With Dr.B.C Roy'(Sree saraswaty Press limited: June 1982),
7. R .R ,committees Report, government of West Bengal ,P.1
8. Mitra, Ashok.Kabita Theke Michhile, Ayan Publisher's Kolkata 1980,p-74
9. Bandopadhyay, Hiranmay. Udbastu,Shishu Sahitya ,Pvt Ltd Kolkata, 1970
10. Ray, Ranjit;Paschimbanger Udbastu: Kendra Rajya Dwanda Rajniti. Desbhag Smriti Ar Stabdhata, Sampadana Semanti Ghosh,Prakashak Gangchil,Prakash samay 2017 Kolkata.
11. Ananda bazar patrika ,29 October,1948
12. Amrita bazar Patrika, Kolkata:8 October,1948

Mob- 7001564954
Email - Sagarsarker2255@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 66–70

प्रथम प्रतिश्रुति उपन्यासে নারীমুক্তি ও সমাজ-বাস্তবতা

রতন বর্মন (গবেষক)

মুঙ্গের বিশ্ববিদ্যালয়, বাংলা বিভাগ মুঙ্গের, বিহার - 811201

সারসংক্ষেপঃ-

আশাপূর্ণা দেবীর প্রথম প্রতিশ্রুতি উপন্যাসে উনিশ শতকের বাঙালি সমাজে নারীর অবদমিত জীবন, সামাজিক কুসংস্কার এবং পিতৃতান্ত্রিক শাসনের বাস্তব চিত্র তুলে ধরা হয়েছে। উপন্যাসের কেন্দ্রীয় চরিত্র সত্যবতী নারীশিক্ষা, আত্মমর্যাদা ও স্বাধীন চিন্তার পক্ষে দৃঢ় অবস্থান গ্রহণ করে সমাজের প্রচলিত রীতিনীতির বিরুদ্ধে প্রতিবাদ জানিয়েছে।বাল্যবিবাহ, নারীশিক্ষার প্রতি অনীহা, লিঙ্গবৈষম্য এবং নারীর অধিকারহীনতার মতো সমস্যাগুলি বাস্তবধর্মীভাবে উপস্থাপিত হয়েছে। সত্যবতীর সংগ্রাম কেবল ব্যক্তিগত মুক্তির জন্য নয়, সমগ্র নারীসমাজের মুক্তির প্রতীক হিসেবে ধরা দিয়েছে। একই সঙ্গে উপন্যাসটি তৎকালীন সমাজের শ্রেণিবিভাজন, ধর্মীয় গোঁড়ামি ও সামাজিক বৈষম্যেরও বাস্তব প্রতিফলন ঘটিয়েছে। তাই প্রথম প্রতিশ্রুতি শুধু একটি নারীমুক্তির উপন্যাস নয়, বরং সমাজ-বাস্তবতার এক গুরুত্বপূর্ণ সাহিত্যিক দলিল, যেখানে মানবমুক্তি, শিক্ষার প্রসার এবং সামাজিক পরিবর্তনের প্রয়োজনীয়তা গভীরভাবে প্রকাশিত হয়েছে।

সূচক শব্দঃ-- প্রথম প্রতিশ্রুতি, সত্যবতী, সমাজ বাস্তবতা, নারীশিক্ষা,পুরুষতান্ত্রিক সমাজ ।

ভূমিকাঃ-

বাংলা কথাসাহিত্যে আশাপূর্ণা দেবী এক উজ্জ্বল নক্ষত্র। তাঁর জন্ম ১৯০৯ সালের ৮ই জানুয়ারি। নারীজীবনের অন্তর্লোক, পারিবারিক সম্পর্কের জটিলতা, সামাজিক বৈষম্য এবং নারীর আত্মপ্রতিষ্ঠার সংগ্রাম তাঁর একমাত্র প্রধান লক্ষ্য ছিল। সমাজের কঠিন নিয়মে আবদ্ধ থাকায় তিনি পড়াশোনা করতে পারেননি।তার পরেও তাঁর পড়ার প্রতি আগ্রহ ছিল অদম্য।বাংলা সাহিত্যে তাঁর আত্মপ্রকাশ ঘটে কবিতা লেখা দিয়ে এবং তা প্রকাশ হয় 'শিশুসাথী' পত্রিকায় ১৩২৯ বঙ্গাব্দে।তাঁর শ্রেষ্ঠ রচনা " প্রথম প্রতিশ্রুতি" (১৯৬৪)বাংলা সাহিত্যের এক উল্লেখযোগ্য উপন্যাস। এই উপন্যাসের জন্য তিনি রবীন্দ্র পুরস্কার (১৩৭২)বঙ্গাব্দে এবং জ্ঞানপীঠ পুরস্কার(১৩৮৪) বঙ্গাব্দে পান। এছাড়াও তিনি বহু পুরস্কারে সম্মানিত হয়েছেন।যেমন-লীলা পুরস্কার,মতিলাল পুরস্কার,পদ্মশ্রী, শরৎ ইত্যাদি। তিনি প্রায় ১৭৯ টি উপন্যাস,প্রায় ৩০০ টি ছোটগল্প রচনা করেছেন। 'প্রথম প্রতিশ্রুতি

'উপন্যাসটির কাহিনী যে কেবল একটি পরিবারের তা নয়; বরং এটি উনবিংশ শতাব্দীর বাঙালি সমাজে নারীর অবস্থান, পুরুষতান্ত্রিক সমাজব্যবস্থা এবং সামাজিক কুসংস্কারের এক জীবন্ত চিত্র বর্ণিত হয়েছে, যা বাংলা সাহিত্যে বিরল।
আশাপূর্ণা দেবী নিজে বলেছেন-
" বাংলাদেশে সেই অজ্ঞাত অন্তঃপুরের নিভৃতে যারা বহন করে এনেছিল প্রতিশ্রুতির স্বাক্ষর, এ গ্রন্থ সেই অনামী মেয়েদের একজনের কাহিনী। "

"প্রথম প্রতিশ্রুতি "উপন্যাসে আমরা দেখব যে উপন্যাসের কেন্দ্রীয় চরিত্র সত্যবতী সমাজের বিভিন্ন ধরনের কুসংস্কার, অন্ধবিশ্বাস এবং নারীদের ওপর অত্যাচারের বিরুদ্ধে প্রতিবাদী কণ্ঠস্বর প্রতিধ্বনিত হয়েছে। আশাপূর্ণা দেবী আসলে সত্যবতীর জীবনসংগ্রামের মধ্য দিয়ে নিজের জীবনকে তুলে ধরেছেন। বাংলা সাহিত্যে অনেকেই তাকে নারীবাদী লেখিকাও বলেছেন।তিনি দেখিয়েছেন যে নারীও সমাজের একজন পূর্ণাঙ্গ মানুষ; তারও শিক্ষা, মতপ্রকাশ স্বাধীনতা ও আত্মমর্যাদার অধিকার রয়েছে। যা তিনি সত্যবতী চরিত্রের মধ্য দিয়ে প্রকাশ করেছেন।তাই ' প্রথম প্রতিশ্রুতি 'বাংলা সাহিত্যে নারীমুক্তির অন্যতম শ্রেষ্ঠ উপন্যাস হিসেবে পরিগণিত হয়।

সমালোচক সরোজ বন্দ্যোপাধ্যায় 'প্রথম প্রতিশ্রুতি' উপন্যাস সম্পর্কে বলেছেন - " মহিলা গুণান্বিত এক স্ত্রী তাঁর উপন্যাস বর্ণনা রীতিতে, সংলাপে দক্ষতা, ঘটনা বিন্যাসে বরাবর লক্ষ্য করা গেছে।"প্রথম প্রতিশ্রুতি" তে সেই সমস্ত গুণাবলী সুসমন্বিত। তার সঙ্গে যুক্ত হয়েছে লেখিকার কালচেতনা, কালের রুপান্তর সম্বন্ধে তীক্ষ্ণ অনুভূতি। "

উপন্যাসটির মূল পটভূমি ছিল উনবিংশ শশতাব্দীর গ্রামীণ ও মধ্যবিত্ত বাঙালি সমাজ। তৎকালীন সমাজে নারীর জীবন ছিল নানা নিয়ম-নীতি, কুসংস্কার এবং ধর্মীয় গোঁড়ামির বেড়াজালে আবদ্ধ। তাই নারীর শিক্ষার সুযোগ ছিল অত্যন্ত সীমিত। তাই আমরা উপন্যাসে দেখতে পাই যে মেয়ে সত্যবতী লেখা-পড়ার অগ্রগতির খবর নিতে গিয়ে পিতা রামকালী তাঁর মেয়েকে বলছে " মেয়ে মানুষের এত বেদ পুরাণ জানবারই দরকার কি?"

তখন সত্যবতী তার পিতাকে বিদ্রুপ করে বলে " এত যদি না দরকারই কথা তো মেয়ে মানুষের জন্মাবারই বা দরকার কি, তাই বল তো বাবা শুনি"

সত্যবতীর এমন দুঃসাহসিক উত্তর এর পূর্বে পুরুষতান্ত্রিক সমাজে কখনো শোনা যায়নি পিতার কাছে সত্যবতীর এই যে জিজ্ঞাসা এ আসলে সমগ্র পুরুষতান্ত্রিক সমাজের বিরুদ্ধে লাঞ্ছিত নারীর তীব্র জেহাদ ঘোষনা।
উপন্যাসে আমরা দেখতে পাই সত্যবতীর অল্প বয়সে বিয়ে হয়ে যাচ্ছে।এছাড়াও বিভিন্ন ধরনের পর্দাপ্রথা, বহুবিবাহ, বিধবাদের করুণ জীবন এবং জাতিভেদের মতো সামাজিক কুপ্রথা সমাজে প্রচলিত ছিল।

আশাপূর্ণা দেবী অত্যন্ত বাস্তবতার সঙ্গে তৎকালীন সমাজের চিত্র তুলে ধরেছেন। তিনি কোথাও কোনো বিষয় অতিরঞ্জিত করে তুলেননি ; বরং তিনি দৈনন্দিন জীবনের ছোট ছোট ঘটনাকে কেন্দ্র করে সমাজের প্রকৃত রূপ পাঠকের সামনে উন্মোচিত করে তুলেছেন । এই বাস্তবধর্মী বিষয়গুলো উপস্থাপন করছেন বলেই উপন্যাসটিকে কালজয়ী হিসেবে অবস্থান করেছে বাংলা সাহিত্যে।

নারীমুক্তি বলতে কেবলমাত্র নারীর বাড়ির বাইরে বেরিয়ে আসাকে বোঝায় না। যা বোঝায় তা হল —শিক্ষার অধিকারকে , মতপ্রকাশের স্বাধীনতাকে, আত্মসম্মানকে,। অর্থনৈতিক স্বাধীনতাকে, সামাজিক মর্যাদা এবং সিদ্ধান্ত গ্রহণের স্বাধীনতাকে।তিনি বলতে চেয়েছেন নারীমুক্তি মানেই যে পুরুষ জাতিকে অবদমন করা তা কিন্তু নয়, নারী ও পুরুষ উভয়েই

সমাজে সমান অধিকার। তবেই সমাজের অগ্রগতি সম্ভব। নারীকে সমাজে অবদমিত রেখে প্রকৃত উন্নতি সম্ভব নয়।উপন্যাসে তাই দেখা যায় সত্যবতী নিজেকে সমাজের অন্তরালে আবদ্ধ না রেখে স্ব-ইচ্ছায় লেখা-পড়া শিখে নিজেকে সমাজের সামনে দাঁড় করিয়ে ছিল এবং নিজের জীবন দিয়ে নারীমুক্তির পথকে সুগম করে তুলেছিল।

উপন্যাসে সত্যবতীর চরিত্রটির মধ্য দিয়েই লেখিকা নারীমুক্তির সংগ্রাম এর আদর্শকেই প্রতিফলিত করেছেন। সে অন্যায়কে দেখলেই প্রশ্ন করবে, যুক্তির মাধ্যমে বিচার করবে এবং নিজের আত্মমর্যাদা রক্ষায় দিধাবোধ করবে না।
উপন্যাসের প্রাণকেন্দ্রই ছিল সত্যবতী। ছোটবেলা থেকেই সে কৌতূহলী, সাহসী । তাই উপন্যাসে দেখতে পাই যে জটাদা কেন্দ্র করে ছড়া বানিয়েছে -

" জটা দাদা পা গোদা
বৌ-ঠেঙানো দাদার পিঠে
ব্যাঙে মারে লাথি।
জটা জটা পেট মোটা--
ভাত মারবার ধাড়ি,
দেখব মজা, কেমন সাজা
যাও না শ্বশুরবাড়ি "১

সমাজের প্রচলিত নিয়ম-রীতিকে সে অন্ধভাবে মেনে নেয়নি । বরং তার কারণ জানতে চেয়েছে।
সত্যবতীর প্রতিবাদী মনোভাব উপন্যাসের ছত্রে ছত্রে ফুটে উঠেছে। সে প্রশ্ন করেছে —কেন মেয়েরা পড়াশোনা করতে পারবে না? কেন তারা ঘরের চার দেয়ালের মধ্যে আবদ্ধ থাকবে? কেন তাদের জীবন সম্পর্কে সিদ্ধান্ত নেবে পুরুষরা? এই প্রশ্নগুলোই সত্যবতীকে সাধারণ নারীর থেকে ব্যতিক্রমী করে তুলেছে। সে উপলব্ধি করতে পেরেছে যে শিক্ষা ও আত্মসম্মান ছাড়া নারীর মুক্তি অসম্ভব। তাই সে নিজের জীবনে নানা বাধা-বিপত্তি থাকা সত্ত্বেও নতুন প্রজন্মের জন্য পরিবর্তনের পথ তৈরি করতে অনেকখানি সক্ষম হয়েছে।

সত্যবতীর সংগ্রাম কেবল একার নয়; এটি সমগ্র নারীসমাজের সংগ্রামের লড়াই । সে অন্যায়ের কাছে কখনো মাথা নত করে না। সামাজিক অপমান, পারিবারিক বাধা বিঘ্ন কিংবা কুসংস্কার—কোনো কিছুই তাকে নিজের আদর্শ থেকে বিচ্যুত করতে পারে না

উপন্যাসে শিক্ষাই নারীমুক্তির প্রধান হাতিয়ার হিসেবে চিত্রিত হয়েছে।তৎকালীন সমাজের ধারণাই ছিল যে মেয়েদের পড়াশোনার কোনো প্রয়োজন নেই। তাদের কাজ শুধু গৃহেই মধ্যে থেকে সংসারকে সামলানো।সত্যবতী এই ধারণার প্রতি বিরোধিতা করেছে এবং সে বিশ্বাস করে যে একমাত্র পারে শিক্ষাই মানুষকে যুক্তিবাদী, কুসংস্কার মুক্ত করে তুলতে এবং নিজের জীবন দিয়ে সে তা প্রমাণ করেছে।

উপন্যাসে পুরুষতান্ত্রিক সমাজের উল্লেখ বহুবার উপন্যাসে ফুটে উঠেছে। সংসারের সমস্ত সিদ্ধান্ত গ্রহণ করত পুরুষেরা। নারীদের নিজস্ব মতামতের গুরুত্ব ছিল খুবই কম।নারীরা ছিল শুধুমাত্র বাড়ির ভেতরেই।রামকালীর সন্তানহীনতা বিধবা পিসী মোক্ষদা ও কাশীশ্বরী অর্থহীন সংস্কারে নিজেদেরকে আবদ্ধ রেখেছে এবং পরচর্চায় ভুলিয়ে রেখেছে তাদের আত্মিক জীবন যন্ত্রণা। তৎকালীন সমাজের রীতিই ছিল যারা বিধবা তারা কোনো শুভ কাজে নিজেদেরকে নিয়োজিত করতে পারবে না।তাই

তারা কোনো শুভ কাজে যেতে পারত না অথচ সংসারের হেঁসেলের কাজে এদের ওপরেই বেশি দায়িত্ব থাকত।পারিবারিক এইসব ছবি ফুটিয়ে তুলতেই এসেছে আমসত্ত্ব, বিভিন্ন ধরনের নাড়ু তৈরির প্রসঙ্গ।এসবই করতে হত ওই বিধবাদেরকে অথচ তারা মুখে বিন্দুমাত্র প্রশংসাটুকু পেত না।একদশীতে নির্জলা উপবাস,এটোকাঁটা ছোয়াছুয়ির বাছ বিচার এসব নিয়েই তাদের সময় কাটত।

নারীদের প্রধান পরিচয় ছিল কারও বা কন্যা, কারও বা স্ত্রী অথবা কারও বা মা। নিজেদের ব্যক্তিসত্তার কোনো মূল্য ছিল না। এই প্রথাগত সমাজব্যবস্থার বিরুদ্ধে সত্যবতী নিজে একাই প্রতিবাদ করেছে। সে প্রমাণ করতে চেয়েছে যে নারীও স্বাধীন চিন্তাশক্তিসম্পন্ন একজন মানুষ।এইভাবে আশাপূর্ণা দেবী পুরুষতান্ত্রিক সমাজের অসাম্য ও বৈষম্যকে বাস্তব ঘটনার মাধ্যমে তুলে ধরেছেন তাঁর প্রথম প্রতিশ্রুতি উপন্যাসে।

সমাজ-বাস্তবতার রূপায়ণঃ-

প্রথম প্রতিশ্রুতি উপন্যাসের সমাজ-বাস্তবতার রুপটি লেখিকা অত্যন্ত সুনিপুণতার সহিত তুলে ধরেছেন।আশাপূর্ণা দেবী উনবিংশ শতকের বাঙালি সমাজের যে চিত্র অঙ্কন করেছেন, তা ইতিহাসসম্মত, যুক্তিনিষ্ঠ ও জীবনঘনিষ্ঠ। সমাজে নারীর অবস্থান, পারিবারিক সম্পর্ক, ধর্মীয় গোঁড়ামি, কুসংস্কার, জাতিভেদ, বাল্যবিবাহ, নারীর শিক্ষাবঞ্চনা এবং পুরুষতান্ত্রিক মানসিকতা—সবকিছুই লেখিকা বাস্তব অভিজ্ঞতার আলোকে উপস্থাপন করেছেন।

তিনি কোনো কল্পনার দ্বারা উপন্যাসখানি নির্মাণ করেননি, সাধারণ মানুষের সুখ-দুঃখ, সংকট ও জীবন সংগ্রামের মধ্য দিয়ে সমাজের প্রকৃত চেহারা তুলে ধরেছেন। এই বাস্তবধর্মী উপস্থাপনাই উপন্যাসটিকে বাংলা সাহিত্যে এক অনন্য উচ্চতায় প্রতিষ্ঠিত করেছে।

উপন্যাসে বাল্যবিবাহকে একটি ভয়াবহ সামাজিক সমস্যা হিসেবে দেখিয়েছেন লেখিকা । সে সময় অল্প বয়সে মেয়েদের বিয়ে দেওয়া ছিল সমাজের স্বাভাবিক রীতি।আর সেই বাল্যবিবাহের শিকার হয়েছে সত্যবতী, বিয়ে হয়েছে মাত্র আট বছর বয়সে।ফলে তার শিক্ষা দীক্ষা সমস্তকিছুই বন্ধ হয়ে যেত।

আশাপূর্ণা দেবী দেখিয়েছেন যে বাল্যবিবাহ শুধুমাত্র যে একটি সামাজিক কু-প্রথা, তা নয় বরং সমগ্র নারীর স্বাধীনতা ও আত্মমর্যাদার ওপর এক গভীর আঘাত হেনেছিল এই বাল্যবিবাহের মতো কুপ্রথাটি। সত্যবতী চরিত্রের মধ্য দিয়ে লেখিকা তা তুলে ধরেছেন এবং এই সত্যবতীর মধ্য দিয়েই লেখিকা এই কুপ্রথার বিরুদ্ধে তীব্র প্রতিবাদ জানিয়েছেন।

তৎকালীন সমাজে ধর্মীয় আচার ও কুসংস্কারের প্রভাবও ছিল অত্যন্ত প্রবল। নারীদের জীবনের প্রতিটি পদক্ষেপে অসংখ্য বিধিনিষেধ আরোপিত করা হতো। অনেক বিধি নিয়মের কোনো যুক্তিসঙ্গত ভিত্তি না থাকলেও সমাজের ভয়ে সবাই তা মেনে চলত।যেমন- বিধবা হলে মাছ,মাংস খাওয়া বারণ।কোনো শুভ কাজে যাওয়া যাবে না -এইরকম বিভিন্ন নিয়মরীতি পালন করতে হত।সত্যবতী এইসব ধর্মীয় আচার, অন্ধবিশ্বাসকে প্রশ্ন করে। সে মনে করে যে মানুষের জীবন পরিচালিত হওয়া উচিত যুক্তি দিয়ে, মানবিকতা দিয়ে এবং বিচার বিশ্লেষণের মধ্য দিয়ে।আশাপূর্ণা দেবী এই যুক্তিবাদী দৃষ্টিভঙ্গির মাধ্যমে সমাজে চিন্তা স্বাধীনতার গুরুত্ব তুলে ধরেছেন।

উপন্যাসে পরিবারকে বৃহত্তর সমাজের প্রতিচ্ছবি হিসেবে দেখানো হয়েছে। পরিবারের মধ্যে নারী-পুরুষের অসম সম্পর্ক, শাশুড়ি-বউয়ের টানাপোড়েন, বয়োজ্যেষ্ঠদের কর্তৃত্ব এবং সামাজিক নিয়মের কঠোর প্রয়োগ—সবই তৎকালীন সমাজের

বাস্তব রুপকে প্রকাশ করে। লেখিকা দেখিয়েছেন, সমাজ পরিবর্তন করতে হলে পরিবার থেকেই সম্ভব।যদি পরিবারে সমতা থাকে, শিক্ষা ও পারস্পরিক শ্রদ্ধাবোধ থাকে তবেই বৃহত্তর সমাজেও পরিবর্তন আসবে।

প্রথম প্রতিশ্রুতি কেবল একটি সামাজিক উপন্যাস নয়; এটি বাংলা সাহিত্যে নারীবাদী চেতনার অন্যতম ভিত্তিপ্রস্তর। উপন্যাসের ভাষা সহজ, প্রাঞ্জল ও বাস্তবধর্মী। চরিত্রচিত্রণ অত্যন্ত স্বাভাবিক এবং সংলাপ জীবন্ত। প্রতিটি চরিত্র নিজস্ব বৈশিষ্ট্যে উজ্জ্বলে বিদ্যমান।

বর্তমান প্রেক্ষাপটে উপন্যাসটির প্রাসঙ্গিকতাঃ-

বর্তমান সময়ে এসেও নারীরা আজও যেন কোথাও না কোথাও পুরুষের দ্বারা প্রতিনিয়ত শোষিত হচ্ছে। লিঙ্গবৈষম্য, নারী নির্যাতন, সামাজিক কুসংস্কার এবং বৈষম্যমূলক মানসিকতা এখনও সম্পূর্ণ দূরীভূত হয়নি।এই কারণে "প্রথম প্রতিশ্রুতি " উপন্যাসখানি আজও সমানভাবে প্রাসঙ্গিক। সত্যবতীর সংগ্রাম আমাদের শেখায় যে শিক্ষা, আত্মবিশ্বাস, যুক্তিবোধ এবং প্রতিবাদী মানসিকতার মাধ্যমেই প্রকৃত সামাজিক পরিবর্তন করা সম্ভব।

উপসংহারঃ-

পরিশেষে আমরা বলতে পারি যে, "প্রথম প্রতিশ্রুতি "কেবল একটি উপন্যাস নয়; এটি নারীর আত্মপ্রতিষ্ঠা, সামাজিক ন্যায় এবং মানবিক মর্যাদার এক চিরন্তন দলিল। আশাপূর্ণা দেবী সত্যবতীর জীবনসংগ্রামের মধ্য দিয়ে দেখিয়েছেন যে সমাজে প্রকৃত উন্নতি তখনই সম্ভব, যখন নারীকে সমান অধিকার ও সম্মান দেওয়া হবে।

উপন্যাসে নারীমুক্তি ও সমাজ-বাস্তবতা পরস্পরের সঙ্গে অঙ্গাঙ্গিভাবে যুক্ত। নারীর ওপর সামাজিক নিপীড়ন, শিক্ষাবঞ্চনা, বাল্যবিবাহ, ধর্মীয় গোঁড়ামি ও পুরুষতান্ত্রিক মানসিকতার বিরুদ্ধে সত্যবতীর প্রতিবাদ সমগ্র নারীসমাজের মুক্তির আকাঙ্ক্ষাকে প্রকাশ করেছে। তাই প্রথম প্রতিশ্রুতি বাংলা সাহিত্যের এক কালজয়ী সৃষ্টি।

গ্রন্থপঞ্জিঃ-

১)দেবী,আশাপূর্ণা - প্রথম প্রতিশ্রুতি, মিত্র ও ঘোষ পাবলিশার্স প্রাঃলিঃ ১০ শ্যামাচরণ দে স্ট্রীট, কলকাতা-৭০০০৭৩

২)দেবী,আশাপূর্ণা - প্রথম প্রতিশ্রুতি, মিত্র ও ঘোষ পাবলিশার্স প্রাঃলিঃ ১০ শ্যামাচরণ দে স্ট্রীট, কলকাতা-৭০০০৭৩-পৃ-৩৫

৩)বন্দ্যোপাধ্যায় ;সরোজ-বাংলা উপন্যাসের কালান্তর, দে'জ পাবলিশিং,কল-৭৩; ডিসেম্বর

৪) বন্দ্যোপাধ্যায়, শ্রীকুমার- বঙ্গসাহিত্যে উপন্যাসের ধারা; মডার্ণ বুক এজেন্সি প্রাইভেট লিমিটেড - কল-৭৩১৯৮৪; সপ্তম সংস্করণ

৫)মুখোপাধ্যায়, অরুণকুমার-কালের প্রতিমা -দে'জ পাবলিশিং,১৩ বঙ্কিম চ্যাটার্জি স্ট্রিট, কলকাতা-৭০০০৭৩

৬)আচার্য্য,দেবেশ কুমার-বাংলা সাহিত্যের ইতিহাস, আধুনিক যুগ, ২য় খন্ড

৭)বন্দ্যোপাধ্যায় অসিত কুমার - বাংলা সাহিত্যের সম্পূর্ণ ইতিবৃত্ত-মডার্ণ বুক এজেন্সি প্রাইভেট লিমিটেড-১০ বঙ্কিম চ্যাটার্জি স্ট্রিট -কল-৭০০০৭৩

Mobile No.:- 6296515557

Email Id:- ratanbarman303@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 71-77

POLITICS OF AUTONOMY IN SIXTH SCHEDULE AREAS IN NORTHEAST INDIA

Tina Kimngaiting Vaiphei
PhD Scholar, Department of Political Science,
University of Delhi.

ABSTRACT :

The Sixth Schedule (Articles 244(2) and Schedule VI) of the Indian Constitution provides for Autonomous District Councils (ADCs) and autonomy in tribal and hill areas in Assam, Meghalaya, Tripura and Mizoram to preserve tribal customary law and give scope for local self-government on specified subject matters such as land, forest management other than reserved forests, inheritance, customary laws, village administration, etc while remaining within the Indian Union. The Schedule is an instance of asymmetric federalism which is a constitutional feature to reconcile tribal diversity with the unity of the state. The Sixth Schedule's historical founding of local autonomy is often debated as autonomy vary and overlaps with state administration and central policies.

Keywords : Autonomy, Federalism, Assam, Meghalaya, Manipur

Introduction :

The Indian Constitution consists of a diverse system of federalism that aims to offer special provisions of how tribal areas should be administered by establishing autonomy and protection of tribal land and resources. This is seen in the Northeast where there are numerous ethnic groups that have different identities, historians and political desires. The framers of the Constitution recognized the unique socio-political speciality of the hill regions, and thus included the Sixth Schedule (Articles 244(2) and 275(1)) as a constitutional tool of giving autonomy to some tribal areas in Assam, Meghalaya, Tripura, and Mizoram (Baruah, 2003). Under the leadership of Gopinath Bordoloi and the Bordoloi Sub-Committee, the Sixth Schedule aimed to protect indigenous land, culture, and customary laws through the establishment of Autonomous District Councils (ADCs) with legislative, executive, and judicial powers.

Theoritical Framework :

The Sixth Schedule is found on three aspects, 1. Constitutional law and decentralization, the structure and judicial interpretations of the Schedule, 2. Ethnopolitics and security, where ADCs are seen as arenas of local appropriate development, or as instruments of local state, 3. Development studies, where it is observed whether they support or undermine local development. The Sixth Schedule was to secure customary institutions but there have been conflicting uses (Agnihotri, 1994). The example of Karbi Anglong, North Cachar Hills, Meghalaya highlights the problem of the administrative capacities, financial limitations, and the contradictions between the customary law and the statutory one.

The Sixth Schedule is the coming together of the needs of unity by the Indian state and the demand by the hill tribes of autonomy. But, as Sanjib Baruah asserted in his article "India Against Itself: Assam and the Politics of Nationality (1999)" these can become unequal as state authority over-determines local independence such that it creates long term disorder (Baruah, 1999, p. 44). "Multicultural Citizenship: A Liberal Theory of Minority Rights by Will Kymlicka (1995)" asserts differentiated citizenship in liberal democracies. According to Kymlicka, minority rights do not conflict with national unity on the contrary, the minorities are better placed to integrate without assimilation (Kymlicka, 1995, p. 6).

The Sixth Schedule follows what Arend Lijphart has called what he called democracy in plural societies (1977) as consociational democracy. Lijphart found four principles which included grand coalition, segmental autonomy, proportionality, and minority veto as being the basis of power sharing in divided societies. He noted this system can only work when political leaders are wise enough to reach a compromise in the interests of stability (Lijphart, 1977, p. 25).

The developmental dimension is discussed by A.K. Nongkynrih (2011) in "Traditional Institutions and Development" among the Khasi of Meghalaya. Nongkynrih (2011) argues that "traditional self-governing institutions have been marginalized under the formalized structure of the ADCs," leading to a loss of community accountability (p. 22). This displacement of customary governance without adequate institutional adaptation has produced administrative alienation at the grassroots. Dasgupta (2016) in "Autonomy and Development in the North-East: Challenges of Democratic Governance" highlights how ADCs "have failed to link autonomy with inclusive planning" (Dasgupta, 2016, p. 78).

Ronojoy Sen (2019), in "House of the People: Parliament and the Making of Indian Democracy", emphasizes that India's federalism is "not rigid but adaptive, a living arrangement that balances diversity with state authority" (Sen, 2019, p. 47). John McGarry and Brendan O'Leary (2009),

in "The Politics of Ethnic Conflict Regulation", stress that "federal autonomy works when it guarantees both representation and resources" (p. 67). The Sixth Schedule continues to stand at the juncture of theory and practice as India's federalism and a field of varied governance.

Statement of Problem :

Local governance is sometimes limited by inadequate representation of the formal legislative powers of ADCs under the Sixth Schedule by fiscal autonomy. The presence of overlapping jurisdiction between the state governments and ADCs creates administration confusion and questions of accountability. ADCs often do not have bureaucratic potential and technical skills to undertake development projects successfully. The constitutional guarantees are sometimes in conflict with customary laws safeguarded by the Sixth Schedule.

ADC regulations on restriction of transfer of tribal land to outsiders restrictions are in terms of development. Counter-insurgency, migration causes state governments to become central to the control of regions, and it is to eliminate the ADC autonomy. The boundary between the traditional management of resources and the state forest/land legislation is one of the concerns that is in constant conflict.

Bodoland Territorial Region :

The Bodoland Territorial Region (BTR) represents one of the most significant areas in India's asymmetrical federalism under the Sixth Schedule. Emerging out of decades of ethnic insurgency led by organizations like the Bodo Liberation Tigers (BLT) and the National Democratic Front of Bodoland (NDFB), the BTR symbolizes the complex intersection of autonomy, peace, and developmental governance. While the BTC enjoys legislative and executive powers under the Sixth Schedule, the Governor's discretionary authority and the state government's financial control dilute autonomy at times. For instance, decisions on land allocation, forestry, and local taxation in Bodoland require state concurrence, effectively subordinating local self-governance to state oversight. Despite the Sixth Schedule's intent to empower local governance, the BTC remains fiscally dependent on the Government of Assam and the Ministry of Home Affairs. The allocations under Article 275(1) grants often face delays and irregularities, leading to delay infrastructure and welfare programs.

Smaller indigenous groups like the Rabhas, Koch-Rajbongshi complain of exclusion from the BTC's developmental priorities. The territorial ethnicity in Bodoland where non-Bodo communities form nearly half the population. The Sixth Schedule functions not only as a tool of decentralization but also as an instrument of containment federalism (Baruah, 2005), where autonomy is granted to manage insurgency rather than to deepen democracy. As Dasgupta (2016) argues, "the translation of autonomy into developmental capacity requires institutional design, not just political recognition"

(p. 83).

Smaller indigenous communities such as the Rabhas, Koch-Rajbongshi complain that they have been left behind in the priorities of development of the BTC. The ethnicization of territories in Bodoland where the population of non-Bodo communities is almost 50 percent (Census, 2011). Land and resource domination have turned into a tool of political legitimacy leading to the tension between Bodos and non-Bodos.

Meghalaya : Politics of Traditional Authority :

The Sixth Schedule, which was to protect the tribal socio-political institutions of the Khasi, Jaintia, and Garo Hills, was created in 1972 following a prolonged tribal mobilization. Nevertheless, there are lapses in the three Autonomous District Councils (ADCs),KHADC, JHADC, and GHADC fifty years later as Nongkynrih (2011) refers to such lapses as the dilemma of constitutionalizing custom (p. 24). Indeed, the Sixth Schedule has acted as the foundation of political self-articulation in the Khasi, Jaintia and Garo communities to ensure that the tribal social organisation continues to take centre stage in governance in spite of onslaughts of a fast modernising state.

The traditional Dorbar Shnongs (village councils) overlap with the ADCs has created two layers of government where the villages operate under the traditional institutions which are not necessarily under the formal authority of the ADC. Local headmen have opposed the efforts of the KHADC to codify customary laws as they perceive that is state intrusion and fears financial dependence and administrative wastefulness because ADCs are almost dependent on state and central government grants. Politicalization of customary law as on The Sixth Schedule was to have a guard over indigenous traditions occasionally to custom in order to support the exclusionary practice. In 2018, the KHADC defended a bill to regulate mixed marriages on customary prerogative but it weakens constitutional equality. This opposition between local standards and constitutional rights indicates what Austin (1999) called the unfinished project of the Indian Constitution, where the democracy had to negotiate with the tradition.

The councils have played an important role in preserving customary laws, regulating land, protecting indigenous inheritance practices such as the matrilineal system of the Khasis and Garos and maintaining the authority of traditional village institutions like the dorbar shnong. While customary practices prioritise community control over land, Meghalaya's ADCs display stronger customary institutions and more visible cultural autonomy, developmental indicators vary across districts and remain recurring disputes over land, language rights and the interfacing of customary law with constitutional protections (e.g., demands for Khasi language recognition).

Karbi Anglong : The Politics of Partial Autonomy :

The Karbi Anglong Autonomous Council (KAAC) in Assam represents the intersection of ethnicity, territory, and developmental aspiration, created in 1952 as the United Mikir and North Cachar Hills District Council, it has evolved through multiple peace accords. The Karbi Anglong Autonomous Council (KAAC) has kept Sixth Schedule powers to preserve customary laws, regulate land ownership, and protect shifting cultivation practices.

But this stands with problem of legislative jurisdiction. While the Sixth Schedule grants the ADC authority, the state government frequently overrides or duplicates these powers. For instance, forest and revenue administration remain effectively controlled by Assam's state departments, undermining local decision-making. The 2013 Karbi Anglong unrest by demands for full statehood, reflected deep frustration over this administrative subordination. Baruah (2005) aptly described this as "the illusion of autonomy, where centre decentralizes responsibility but not authority" (p. 147).

The North Cachar Hills Autonomous Council (NCHAC) became a medium through which local traditions, customary laws, and village-level political practices could be translated into governance frameworks without being overwritten by the central administration. The Karbi-dominated council area also home to Dimasas, Kukis, and Rengma Nagas, the Sixth Schedule's ethnic-territory may excludes smaller groups, creating new divisions. Misra (2014) argues that "autonomy in the Northeast has produced micro-nationalisms that fragment rather than federate" (p. 63) sometimes in institutional inefficiency. As Pakem (1990) notes, "without administrative modernization, the councils replicate the very colonial paternalism they were meant to replace" (p. 37).

Dima Hasao (Assam) :

Dima Hasao, formerly the North Cachar Hills, reflects both the aspirations that incorporated the Sixth Schedule and the complications that accompanied its implementation. Historically, the region has been dominated by the Dimasa people alongside other tribal communities. Their customary systems of land ownership, clan organisation, and forest management reflect centuries old traditions that prioritise collectivity over individual commonwealth. Under the Sixth Schedule, the North Cachar Hills Autonomous Council (NCHAC) became the principal institution responsible for safeguarding them. In Dima Hasao's council has functioned as more than a mere administrative intermediary; it has served as a crucial forum where customary law, democratic representation, and state policies intersect. Through the council, local leadership has been able to shape development priorities, protect the customary use of land, and negotiate with the state government on issues ranging from infrastructure to education.

The Sixth Schedule in Dima Hasao lies in the way it enabled the region to cultivate a form of

developmental governance rooted in the everyday realities of hill society rather than the administrative priorities of the Assamese plains. By granting the North Cachar Hills Autonomous Council discretionary authority, the region has been able to develop locally responsive systems for water harvesting, slope agriculture, and inter-village mobility that would otherwise have remained invisible to state-level bureaucratic planning. This autonomy has broadened ways for political participation from Dimasa, Hmar, Zeme, and Kuki communities have found in the Council an institutional structure to articulate aspirations, thereby strengthening democratic engagement in an area historically peripheral to mainstream politics.

Conclusion :

The Sixth Schedule represents a constitutional framework attempt to accommodate ethnically distinct hill populations within India's federal polity. Its success in delivering security and development is a long process with statutory powers to fiscal and administrative capacity and legitimate and inclusive local governance with improved development and security. Policy reforms that combine fiscal devolution, capacity building and constitutional harmonization offer the most effective means to fulfill the Sixth Schedule's objectives and strengthening federal democratic governance in India's Northeast.

The Sixth Schedule of the Indian Constitution remains a constitutional framework in accommodating diversity through federalism. The Sixth Schedule endures and it embodies the spirit of the Constitution, a spirit that values pluralism within unity. It provides a framework that can evolve with India's democracy, provided it is renewed through reforms and constitutional processes. The challenges of security, development, and federalism in the Northeast cannot be resolved through centralization alone but with empowered decentralised institutions that are transparent, inclusive, and proper devolution of resources. Thus, the future of the Sixth Schedule lies in its revitalization by reimagining autonomy as a dynamic process that harmonizes self-governance with shared governance to achieve development and security.

References :

- Agnihotri, S.K.(1994). "District Councils under Sixth Schedule," *Economic and Political Weekly.*
- Austin, G. (1999). *Working a Democratic Constitution: The Indian Experience.* Oxford University Press.
- Baruah, P., & Rouleau, N. M. (2011). Democracy, Representation, and Self-Rule in the Indian Constitution. *Verfassung Und Recht in Übersee / Law and Politics in Africa, Asia and Latin*

America, 44(2), 177–195. http://www.jstor.org/stable/43239606

- Baruah, S. (2003). Durable Disorder: *Understanding the Politics of Northeast India.* Oxford University Press.
- Baruah, S. (2005). *India Against Itself: Assam and the Politics of Nationality.* University of Pennsylvania Press.
- Baruah, S. (2020). *In the Name of the Nation: India and Its Northeast*. Stanford University Press.
- Bhaumik, S. (2009). *Troubled Periphery: Crisis of India's North East.* Sage Publications.
- Blair, G. S. (1988). [Review of Exploring Federalism., by D. J. Elazar]. *The Journal of Politics*, 50(2), 530–532. https://doi.org/10.2307/2131811
- Dasgupta, D. (2016). Governance and development in the Sixth Schedule areas. *Economic and Political Weekly*, 51(24), 43–50.
- Lijphart, A. (1977). *Democracy in Plural Societies: A Comparative Exploration.* Yale University Press. http://www.jstor.org/stable/j.ctt1dszvhq
- Nongkynrih, A. K. (2011). Gender and participation in tribal governance: Issues from the Sixth Schedule. *Social Change and Development* Journal, 8(2), 89–106.
- O'Leary, B. (1993). In McGarry and O'Leary (Eds.), *The Politics of Ethnic Conflict Regulation.*
- Pakem, B. (1990). *Autonomous District Councils in the North East: Functioning and Problems*. Omsons Publications.
- Sen, R. (2019). Asymmetrical federalism and Indian democracy. *India Review, 18(3)*, 210–232.
- Will Kymlicka. (1995). Multicultural Citizenship: A Liberal Theory of Minority Rights. Oxford University Press.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 78-85

स्वयं सहायता समूह और महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण

सोनम डावर
शोधार्थी (समाज कार्य) देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
डॉ. वर्षा पटेल
शोध निर्देशिका, सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र)
श्री अटल बिहारी वाजपेयी, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

सारांश –

स्वयं सहायता समूह प्रणाली की शुरुआत मैसूर पुनर्वास एवं विकास एशिया प्रशांत ग्रामीण एवं कृषि ऋण संघ आदि जैसे गैर–सरकारी संगठनों द्वारा की गई थी। राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक में स्वयं सहायता समूह बैंक लिंकेज कार्यक्रम के शुभारंभ के बाद भारत में एसएचजी को नई ऊर्जा मिली। बैंक लिंकेज कार्यक्रम का जुड़ना भारतीय अर्थव्यवस्था में एस.एच.जी के सफल विकास के लिये बड़ी उपलब्धि है। स्वयं सहायता समूहो को संक्षेप मे एस.एच.जी. कहा जाता है। जो उन्हे संगठित करता है और विभिन्न सामाजिक और आर्थिक मुद्दो से निपटने एक मंच प्रदान करता है। एस.एच.जी गरीब महिलाओ को आय सृजन मे शामिल करके सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता के लिये एक पहल के रूप मे कार्य करते है।

गठित समूहों में सदस्यों की संख्या 10–20 है। समूह मूलतः समरूप प्रकृति का है। वे अपनी सामान्य समस्याओं के समाधान के लिए मिलकर काम करते है। उन्हें नियमित रूप से बचत करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। बचत 20 रूपये से 100 रुपये के बीच होती है। वे इस साझा संसाधन को बहुत कम ब्याज दर पर उधार देते है। प्रत्येक समूह का एक नेता होता है जिसे अध्यक्ष या सचिव कहा जाता है। वे आमतौर पर दैनिक आधार पर लिखित रूप मे विभिन्न सरकारी और गैर सरकारी संगठनो और दान दाताओ से भी ऋण प्राप्त किया है।

प्रस्तावना :–

स्वयं सहायता समूह का अर्थ है, एक ही वर्ग के बीस या उससे कम लोग जो अपनी सामान्य समस्याओं पर चर्चा करने के लिए एक साथ आते है। वे नियमित रूप से बचत करते है। और संयुक्त बचत का उपयोग अपने सदस्यो को ब्याज सहित ऋण देने के लिये करते है। महिला स्वयं सहायता समूहो को महिलाओ द्वारा महिलाओं की सहायता करने वाले समूहो के रूप में परिभाषित किया जाता है। महिलाओं सशक्तिकरण स्वयं

सहायता समूहों का अगला महत्वपूर्ण उद्देश्य है। स्वयं सहायता समूहो के माध्यम से महिलाएँ आत्मनिर्भर बन रही है। इन्हे कोई भी बना सकता है। लेकिन भारत मे अधिकांश समूह महिलाओ ही बनाए जाते है महिलाएँ स्वयं सहायता समूह मे सक्रिय रूप से भाग लेती है और एक–दूसरे की मदद करती है। वित्तीय मामलो पर नियंत्रण रखने की क्षमता भी महिलाओं को मिलती है। संभव है, आय सष्जन गतिविधियो (IGA) के तहत समूह के सदस्यो को ऋण देने से पहले आय एकत्र की जाती है। जिससे आय सृजन की सटीक योजना बनती है फिर ऐसे सदस्यो को ऋण दिया जाता है। स्वयं सहायता समूहो के माध्यम से संसाधनो का संचय है। आय सृजन गतिविधियो (IGA) के माध्यम से सदस्यो को ऋण देने से पहले धनराशि एकत्र की जाती है। जब समूह का कोई सदस्य आय सृजन के लिये सटीक योजना प्रस्तुत करता है तो सदस्यो को बिना किसी शर्त के ऋण दिया जाता है। जब महिलाएँ स्वरोजगार करती है तो विकास संभव हो पाता है।

हाल ही में महिला स्वयं सहायता समूह (SHG) दुध उत्पादन बकरी मुर्गी पालन, सिलाई, मिट्टी के बर्तन, हस्तशिल्प उत्पादन, किराणा दुकान पशुओ की खरीदी एवं बिक्री बाग प्रिट मे महिलाओ द्वारा कपडो पर रंगाई एवं छपाई के कार्य किये जाते है। महिलाओ द्वारा स्कूलो में मध्यान्ह भोजन बनाने जैसे कई उत्पादो में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

स्वयं सहायता समूह की विशेषताएँ :

1. स्वयं सहायता समूह में लोगो का एक छोटा समूह होता है।
2. स्वयं सहायता समूह पंजीकृत या अपंजीकृत हो सकते है।
3. स्वयं सहायता समूह मे सदस्यों की संख्या 10–20 तक सीमित है।
4. स्वयं सहायता समूह के सदस्य अपनी स्वेच्छा से एक साथ जुड़ते है।
5. स्वयं सहायता समूहो को बैंको और गैर सरकारी संगठनो द्वारा बढावा दिया जाता है।
6. स्वयं सहायता समूह के सदस्य बचत की शर्तो और नियमों को तय करने के लिये नियमित रूप से मिलते है।
7. समूह सदस्यो द्वारा रखे जाने वाले अभिलेख कार्यवृत्त पुस्तिका, बचत पुस्तिका और ऋण पुस्तिका है।
8. समूह के सदस्यो के पास बैंक से पैसे उधर लेने और उसका उपयोग सह सदस्यों को प्रदान करने के लिये करने का भी प्रावधान है।

स्वयं सहायता समूह के कार्य –

1. समूह की सदस्य आमतौर पर अपनी छोटी बचत को नियमित रूप से जमा करके एक साझा कोष बनाते है।
2. समूह लोकतांत्रिक तरीके से काम करने की लचीली प्रणालियॉ विकसित करते है और साझा संसाधनो का प्रबंधन करते है।
3. ऋण मुख्य रूप से भरोसे के आधार पर न्यूनतम कागजी कार्यवाही के साथ और बिन किसी सुरक्षा के दिये जाते है।
4. ऋण राशि छोटी होती है, कम अवधि के लिये बार–बार दी जाती है और मुख्य रूप से पारंपरिक ऋणों के लिये होती है।

5. ब्याज दरे समूह और ऋण के उद्देश्यों के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है। यह साहूकारो की तुलना मे अधिक लेकिन कम होती है।
6. आवधिक बैठको के धन संग्रह के अलाव सामाजिक और आर्थिक मुद्दों पर भी चर्चा की जाती है।
7. उपभोक्ता ऋण और उत्पादन ऋण के बीच अंतर स्पष्ट करना।
8. लक्षित समूह की अर्थव्यवस्था, संस्कृति और सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करना।
9. ऋण तक आसान पहुंच प्रदान करना और प्रभावी नियंत्रण के लिये समूह संगठन को सुविधाजनक बनाना।
10. समूह की कार्यप्रणाली के माध्यम से पुनर्भुगतान और निरंतरता सुनिश्चित करना।

स्वयं सहायता समूहों के गठन के लाभ –

1. स्वयं सहायता समूहों के गठन ने ग्रामीण विकास और उन्नति में काफी हद तक योगदान दिया है।
2. ग्रामीण भारत का विकास : स्वयं सहायता समूहों के गठन ने हाशिए पर रहने वाले लोंगो को ऋण तक आसान पहुंच प्रदान करके उन्हें एक तरफ से सहारा दिया है।
3. सामाजिक सहायता प्रणाली–आधुनिक समाज मे जीवनशैली में बदलाव के कारण परिवार और लोग निरंतर जाते है। स्वयं सहायता समूह समान समस्याओं से जुझ रहे लोगों का एक नेटवर्क प्रदान करता है।
4. महिला सशक्तिकरण – स्वयं सहायता समूहो ने महिलाओ का बहुत सहयोग प्रदान किया है। उन्हे ऋण तक पहुच प्रदान करना, उन्हे शिक्षित करना, भावनात्मक समर्थन प्रदान करना, उनमें आत्मविश्वास पैदा करना और प्रबंधक एवं नेतृत्व कौशल प्रदान करना इससे महिलाओं में आत्मनिर्भरता बढती है और उनमें शक्ति का संचार होता है।
5. आत्म जागरूकता और व्यक्तिगत विकास को बढावा देता है। स्वयं सहायता समूहों के गठन से हाशिए पर रहने वाले लोगों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने में मदद मिली है। इससे उनमें जागरूकता फैलाई है और उन्हे जीवन कौशल सामाजिक और पारस्परिक कौशल सिखाएं है।

उपरोक्त उद्देश्यों और लाभों के अलावा, स्वयं सहायता समूह ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को निःशुल्क या बहुत कम शुल्क पर परामर्श प्रदान करते है। स्वयं सहायता समूहों ने आत्म सम्मान की भावना को बढाया है और भावनाओं को सांझा करने के लिये सुरक्षित मंच प्रदान किया है। यह कई लोगों को जीवन का अर्थ और पूर्णता का एहसास दिलाता है।

सशक्तिकरण की अवधारणा –

सशक्तिकरण की अवधारणा बौद्विक चर्चा का एक महत्वपूर्ण विषय रही है। सशक्तिकरण को उन प्रक्रियाओं के रूप मे परिभाषित किया जाता है। जिनके द्वारा महिलाएं अपने जीवन में नियंत्रण और स्वामित्व प्राप्त करती है और अपने विकल्पों का विस्तार करती है। इस प्रकार यह उन परिस्थितियों में रणनीतिक निर्णय लेने की क्षमता प्राप्त करने की प्रक्रिया है। जहां पहले इस क्षमता से वंचित रखा गया था। सशक्तिकरण के मूल तत्व है सक्रियता लैंगिक शक्ति संरचनाओ की जागरूकता, आत्म बोध और आत्मविश्वास।

सशक्तिकरण विभिन्न स्तरों पर ही हो सकता हैं। व्यक्तिगत घरेलु, सामुदायिक और इसे प्रोत्साहन देने वाले कारकों जैसे कि नई गतिविधियों से परिचय जो आत्मविश्वास का निर्माण कर सकते है और बाधक कारको जैसे संसाधनो और कौशल की कमी को दूर करके सुगम बनाया जा सकता है। सशक्तिकरण के लिये दो महत्वपूर्ण प्रक्रियाएं है। पहली है सामाजिक लामबंदी और सामूहिक सक्रियता क्योंकि गरीबों में अपने खिलाफ मौजुदा असमानताओं का मुकाबला करने और उन्हें चुनौती देने के लिये बुनियादी क्षमताओं और आत्मविश्वास की कमी होती है। अक्सर सामाजिक लामबंदी को सचेत रूप से उत्प्रेरित करने के लिये परिवर्तनकारी एजेंटो की आवश्यकता होती है। सामाजिक लामबंदी की प्रक्रिया आर्थिक सुरक्षा के साथ होनी चाहिए। यदि वंचित आर्थिक अभाव और आजीविका असुरक्षा से पीड़ित है तो वे लामबंद नहीं होगे।

घर के अंदर और बाहर महिलाओं के आर्थिक योगदान के प्रति जागरूकता और मान्यता। गरीबी में जी रहे 1.3 अरब लोगों में से 70 प्रतिशत महिलाएं है। बड़े पैमाने पर निरक्षरता विकास में एक बड़ी बाधा है और इसने महिलाओं की समानता और सशक्तिकरण के लिये संघर्ष की शुरूआत की है। समाज में सभी लोगों के लिये विकल्पों को बढाने की प्रक्रिया। इस प्रक्रिया में महिलाओं को सबसे अधिक नाम मिलता है। यदि महिलाओं को लगातार हाशिए पर रखा जाता है तो वे आर्थिक सामाजिक निर्णय लेने और विकास में अपनी भूमिका निभाने मे विफल रहती है।

इस संदर्भ को निम्नलिखित छह घटकों में देखा जा सकता है अर्थात् –

1. आर्थिक संसाधनों तक पहुंच और उनके उपयोग पर प्रभाव।
2. आर्थिक निर्णय लेने में भागीदारी।
3. स्व विकास के अवसर।
4. सामाजिक राजनीतिक निर्णय लेने में भागीदारी और स्थानीय जनमत निर्माण पर प्रभाव।
5. कौशल विकास की गुंजाईश।
6. परिवार और समुदाय के सामान्य कल्याण पर प्रभाव।
7. स्वयं सहायता समूह और आर्थिक विकास – सूक्ष्म ऋण द्वारा संचालित स्वयं सहायता समूहों के सकारात्मक प्रभाव देखे गये है, जिनमें से कुद प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते है। इन्होने संपत्ति सृजन आय और उपभोग को सुचारू बनाने, आपातकालीन सहायता प्रदान करने और महिलाओं को संपत्ति पर नियंत्रण और ज्ञान में वृद्वि देकर उन्हे सशक्त और प्रोत्साहित करने के माध्यम से गरीबी कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

कई देशों में किये गये अध्ययनों से पता चलता है कि ऋण का उपयोग कभी–कभी उपभोग के लिये किया जाता है। उत्पादन यह बताया गया है कि गरीबों की अल्पकालिक तरलता की जरूरतें आमतौर पर सुदखोर साहुकारों द्वारा पूरी की जाती है। यदि सूक्ष्म ऋण जैसे अन्य वित्तीय स्त्रोत उपलब्ध न हो। एशियाई आर्थिक संकट की दौरान स्वयं सहायता सूक्ष्म ऋण समूहों ने महत्वपूर्ण सुरक्षा जाल के रूप में काम किया। स्वयं सहायता सूक्ष्म ऋण समूहों ने महत्वपूर्ण सुरक्षा जाल के रूप में काम किया। स्वयं सहायता सूक्ष्म ऋण योजनाओं के लिये उपलब्ध कराये गये धन का एक बड़ा हिस्सा महिलाओं द्वारा प्रदान किया गया। जिससे वे उन कठिन

समय में अपने परिवारों की जीविका संबंधी जरूरतों को पूरा करने मे सक्षम हुई। कई स्वयं सहायता कार्यक्रमों में बचत के तत्व भी शामिल किये गये है। जिनका उपयोग स्वास्थ्य बीमा और आपातकालीन ऋण जैसे उद्देश्यो के लिये किया जा सकता है। इस प्रकार यह निजी सुरक्षा के रूप में कार्य करता है। सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण संकेतक घर के भीतर निर्णय लेने से अनुमति लेने के बजाय उन्हें सूचित करके आवागमन में वृद्वि की सूचना दी है। बढी हुई आत्मनिर्भरता विशेष रूप से तब देखी गई जब महिलाओं को महिला अधिकारों और मुद्दों पर प्रशिक्षण दिया गया था।

गरीब महिलाओं को भूमि अधिकारों से वंचित रखना उनकी गरीबी में योगदान देने वाले कारको में से एक के रूप में उजागर किया गया है। कुछ स्वयं सहायता समूहों ने कथित तौर पर भूमि खरीदने या पट्टे पर लेने मे सफलता प्राप्त की है। सामुदायिक वनों और मछली पालन तालाबों के उपयोगकर्ता अधिकारों को सामुहिक रूप से हस्तांतरित किया गया है। जिससे खाद्य सुरक्षा और कृषि उत्पादकता की नींव रखी गई है। चूंकि अधिकांश ग्रामीण सदस्य महिलाएं है, इसलिये कुछ महिलाओं को उनके पतियों से स्वामित्व विलेख हस्तांतरित किये गये है। इससे तलाक की दर में भी कमी आई है। क्योंकि महिलाएं अपने घरो की मालिक होने के नाते तलाकशुदा नहीं हो सकती। चूंकि महिलाएं समुदाय का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, इसलिये सामुदायिक परियोजनाओं के प्रबंधन में उनकी क्षमताओं को बढाना आवश्यक है। एक उपाय जो किया गया है वह है समुदाय में महिला समूहों को विशिष्ट जिम्मेदारी सौंपना। स्वयं सहायता समूह सामाजिक लेखा परीक्षा का कार्य करते है और एक मामले में भ्रष्टाचार को उजागर करते है और प्रतिस्थापन का आदेश देते हैं।

सशक्तिकरण की राह –

स्वयं सहायता समूह ने महिलाओं को एक साथ काम करने और अपनी क्षमता का उपयोग करने में सक्षम बनाकर सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महिलाओं के नेटवर्क आमतौर पर व्यावसायिक या राजनीतिक लाभ प्राप्त नहीं करते है। क्योंकि वे आर्थिक संसाधनो पर निर्भर होते है और अक्सर समय और श्रम के आदान प्रदान पर निर्भर रहते है। बचत और ऋण के साथ मिलकर स्वयं सहायता समूहों ने महिलाओं को आर्थिक रूप से लाभ प्रक्रिया में उन्हें परिवर्तन के वाहक बनने के लिये सशक्त बनाया है। इसके बजाय, सामाजिक लामबंदी की इस प्रक्रिया को अधिक व्यापक रूप से परिकल्पित किया जाना चाहिए। ताकि यह अधिक व्यापक भूमिकाएँ निभा सके। एक आशाजनक उदाहरण स्वयं सहायता समूहो का संघीकरण है, जिसमे एक गांव के समूह प्रत्येक समूह के चयनित प्रतिनिधियों से मिलकर एक सर्वोच्च निकाय बनाते है। संघीकृत निकायों में महिलाओं ने प्रतिष्ठा और मान्यता प्राप्त की है, जिसने उन्हें स्थानीय सरकार में उच्च पदो तक उम्मीद कर सकती है। इस संबंध में सकारात्मक कार्यवाही जिसके तहत महिलाओं को निर्णय लेने वाले निकायों में हिस्सेदारी दी जाती है, एक प्रभावी रणनीति हो सकती है।

महिलाओ के सशक्तिकरण मे स्वयं सहायता समूहो की भूमिका –

1. **आर्थिक संसाधनों तक पहुंच और उनके उपयोग पर प्रभाव** – शक्तियों को अनुचित केन्द्रीयकरण महिलाओं की कम प्रतिष्ठा और कमजोर सोदेबाजी की स्थिति के प्रमुख कारकों में से एक है।
2. **आर्थिक निर्णय लेने में भागीदारी** – आर्थिक भूमिकाएं जीवन में अधिक प्रभावशाली होती है। इस दिशा

में महिलाओं की क्षमताओं को समझने और महिला सशक्तिकरण तक पहुंचने की आवश्यकता है।

3. **स्व विकास के अवसर** – यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि ग्रामीण महिलाएं जब वे छोटी लड़कियां होती है, तो उन्हें स्कूल जाने के अवसरों से वंचित कर दिया जाता है।
4. सामाजिक–राजनीतिक निर्णय लेने में भागीदारी और स्थानीय जनमत निर्माण पर प्रभाव।
5. कौशल विकास की गुंजाइश (किसी महिला के कौशल, चाहे वह तकनीकी हो या प्रबंधकीय किसी विशेष चीज में अच्छे होते है।
6. **परिवार और समुदाय के सामान्य कल्याण पर प्रभाव** – आमतौर पर एक महिला को यह सम्मान मुख्य रूप से समाज मे अपनी विश्वसनीयता और सम्मान के माध्यम से प्राप्त होता है।

भारत में स्वयं सहायता समूहों का प्रभाव –

1. **बचत और वित्तीय निर्णय लेना :** नियमित रूप से बचत करने, बचत राशि तक पहुंच प्राप्त करने और उसके प्रबंधन में भाग लेने के अवसर मे भागीदारी का एक प्रमुख लाभ है।
2. **ऋण तक पहुंच** – स्वयं सहायता समूहों में भागीदारी का एक परिणाम महिलाओं की वित्तीय गतिशीलता तक पहुंच में सुधार है और स्वयं सहायता समूहों में भागीदारी के कारण कुछ सफल समूहों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार हुआ है।
3. **रोजगार** – स्वयं सहायता समूहों के कार्यान्वयन से रोजगार के विभिन्न अवसर उत्पन्न हुए है। इस कार्यक्रम ने कई प्रतिभागियों को अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने में मदद की है। राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास समिति (नाबार्ड) देश के आर्थिक रूप से कमजोर जिलों में महिला समूहों को सहायता प्रदान करने के लिये 15 अरब रूपये का कोष बनाएगी।
4. **परिवार के भीतर निर्णय लेने की प्रक्रिया** – स्वयं सहायता समूह (SHG) कार्यक्रम ने विभिन्न कार्यक्रमों और संगठनों के बारे में जागरूकता और भागीदारी को बढाया। परिवार के पुरूष सदस्यों को रवैया बदला और वे महिलाओं को बैठकों में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करने लगे।
5. **स्थानीय सरकार मे बढी भागीदार** – स्वयं सहायता समूहों के कारण, महिलाएं अब संस्थानों और ग्राम पंचायतों को जानती है और अपनी शिकायतों को दर्ज कराने का ज्ञान रखती है।
6. **सदस्यों का संचार स्तर** – सूक्ष्म वित्त आंदोलन अच्छी स्थिति में है। अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की उनकी क्षमता ने लोगों को अधिक आत्मविश्वास दिया है।
7. पारिवारिक हिंसा में परिवर्तन स्वयं सहायता समूहों के साथ जुड़ने से पारिवारिक हिंसा में कमी आई है और आर्थिक कठिनाईयों में भी कमी आई है।
8. महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण के साथ पोषण स्तर में सुधार हुआ है।

अनुशंसा और सुझाव –

ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में महिलाओं के लिये स्वयं सहायता समूहों (SHG) के गठन के लिये सरकारी एजेंसियो, गैर सरकारी संगठनों, शैक्षणिक संस्थानों और अन्य नागरिक समाजों द्वारा प्रयास किये जाने चाहिए। राज्य और केन्द्र सरकार दोनों को स्वार्थ, को ध्यान में रखते हुए स्वयं सहायता समूहों को मजबूत बनाने के लिये

मिलकर काम करना चाहिए। इसके लिये प्रभावी कार्यान्वयन तंत्र विकसित करने और अधिक अनुदान आबंटित करने में महिला सशक्तिकरण के लिये एक महत्वपूर्ण रणनीति को शामिल करना आवश्यक है।

स्वयं सहायता समूहों के विकास और संवर्धन में लगे गैर सरकारी संगठनों, शैक्षणिक संस्थानों और सामाजिक सेवा संगठनों को अनुदान प्रशंसा और पुरस्कार देकर सभी स्तरों पर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। प्रभावी कामकाज के लिये एजेंसियो, गैर सरकारी संगठनों, बैंको और अन्य सेवा संगठनो के स्थापित किया जाना चाहिए।

भारत के विकास और प्रगति के लिये बैंको और अन्य वित्तीय संस्थानों को खुले दिमाग से काम करना चाहिए और महिलाओं के बीच स्वयं सहायता समूहों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

स्वयं सहायता समूहो को आय सृजन गतिविधियों को करने के लिये दृढतापूर्वक प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

स्वयं सहायता समूहो को अन्य देशों में बाजार पर पकड़ बनाने के लिये इलेक्ट्रानिक और विद्युत उत्पादों, वस्त्रों और हस्तशिल्प जैसे उत्पादों के निर्माण में संलग्न होना चाहिए।

महिला सशक्तिकरण के लिये स्वयं सहायता समूहों को प्रोत्साहित करने हेतु जनसंचार माध्यम समाचारों के माध्यम से जनता और स्वयं सहायता समूहों के बीच जागरूकता पैदा करने के लिये महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसके लिये स्वयं सहायता समूहों की सफलता की कहानियां, केस स्टडी, सरकारी प्रयासों की उपलब्धिया आदि प्रकाशित की जा सकती है। SHG को सहकारी समितियां और ग्राम उद्योग स्थापित करने के लिये प्रोत्साहित किया जा सकता है जिनके लिये कच्चा माल और संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

निष्कर्ष –

स्वयं सहायता समूहों और सूक्ष्म उद्यमों का सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वयं सहायता समूहों की उद्यमशीलता और अन्य गतिविधियों में भागीदारी से आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता में वृद्वि हुई है। साथ ही उन्हें उपलब्ध अवसरों का लाभ भी मिला है। हालांकि सुधार की गुंजाइश अभी भी है। स्वयं सहायता समूहों ने महिला आबादी की आर्थिक स्थिति को नई ऊंचाईयों पर पहुंचाने का मार्ग प्रशस्त किया है। इसलिये यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्वयं सहायता समूह आर्थिक विकास में योगदान देते है। भारतीय विकास नियोजन का उद्देश्य असमानताओं को दूर करना है। ताकि विकास के फल सभी वर्गो को समान रूप से प्राप्त हो। यह बात तेजी से स्पष्ट हो रही है कि महिलाएं विकास मे काफी पिछड़ रही हैं और कई सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक और राजनीतिक बाधाओं के कारण विकास प्रक्रिया में उनकी भागीदारी कम हो रही है। आर्थिक सशक्तिकरण के लिये रोजगार और रोजगार के क्षेत्र में कार्यवाही की आवश्यकता है। साथ ही आत्मनिर्भरता के लिये सभी नीतियों को प्रोत्साहित करना। प्रवाही श्रमिकों की गरिमा की रक्षा करना और उनके विकास के लिये सरकारी और गैर सरकारी संगठनों के आर्थिक तंत्र और कार्यक्रमों को बढावा देना आवश्यक है।

संदर्भ –

1. भारत सरकार जनगणना रिपोर्ट 1991 और 2001 अंतिम सारणीयां, नई दिल्ली।
2. हॉल सी.एम. महिलाएं और सशक्किरण।
3. ललिता अय्यर महिला उद्यमियों की चुनौतियां और रणनीतियां फ्रेडरिक एबर्ट स्टिफरंग, नई दिल्ली 1991
4. सौरभ सिन्हा, माइक्रो क्रेडिट : प्रभाव, प्रशिक्षण और सतत विकास अध्ययन संस्थान, ससेक्स विश्वविद्यालय, यू.के. 1998।
5. सुषमा सहाय, महिलाएं और सशक्तिकरण–दृष्टिकोण और रणनीतियां, दिल्ली 1998।
6. कुमार 2009– 'शक्ति ने बनाया महिलाओं को आत्मनिर्भर, समाजवादी दृष्टि 28–29 अक्टूबर।
7. डॉ. सुखपाल श्रीवास्तव (2009) सदस्यों को एकजुट करते स्वयं सहायता समूह, अक्टूबर 2009 पत्रिका–कुरूक्षेत्र, पृष्ठ क्रमांक 15 देखे।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 86-94

An Analytical Study of India- Bangladesh Relations : Recent Challenges and Possibilities

Prof. Bina Rai
Principal, Avadh Girls' Degree College, University of Lucknow.
Nikhil Kumar Rai
Ph.D Research Scholar, Department of Political Science, University of Lucknow

Abstract :

This article presents a comprehensive overview of current trends in India-Bangladesh relations, emphasizing the opportunities and challenges that constitute this important bilateral relationship. And it investigates the historical backdrop of these interactions and charts the growth of commercial, diplomatic, and cultural ties, evaluating the elements that influence these dynamics by reviewing the current status of cooperation in security, connectivity, commerce, and regional diplomacy.

The primary focus of this study is on the various issues that India and Bangladesh face in bilateral relations. Their trade discrepancies, border disputes, and water-sharing conflicts are just a few of the factors that continue to cause tensions, and the relationship is complicated by security concerns such as cross-border insurgency and illegal migration. Unfortunately, India has faced new strategic problems as a result of China's growing influence in Bangladesh, which has also transformed the global political environment. Ineffective handling of these issues can hinder efforts to develop bilateral ties.

The findings of this study can help policymakers, scholars, and practitioners promote bilateral ties. The findings underscore the importance of improving India-Bangladesh relations through constant diplomatic efforts, regional collaboration, and thoughtful economic planning.

Introduction :

India and Bangladesh relations, historically, can be split into three major periods- the early years (1971-1990), the Post Cold War period (1990-2010), and the recent time. And each of these

time periods represents a separate stage of the bilateral partnership, with its own set of developments, challenges, and milestones.

The relations of India and Bangladesh were heavily influenced during the early years (1971-1990), as Bangladesh was successfully emancipated from Pakistan in 1971, thanks to India's overwhelming military and diplomatic support and India's important role in the Liberation War resulted in the formation of an independent Bangladesh. Because of their shared history of liberty and struggle, the two countries have developed a strong bond. Because the Indo-Bangladesh Treaty of Friendship, Cooperation, and Peace was signed shortly after Bangladesh gained independence in 1972.

This agreement aims to codify and strengthen the two countries' relationship by emphasizing mutual respect, non-interference in one another's domestic affairs, and collaboration in a variety of sectors, and the pact set the platform for collaborative projects aimed at regional stability, cultural exchange, and economic development. However, the years that followed were not without their hardships. The Political upheaval in Bangladesh, as well as government transitions, periodically strained the relationship of these to nations. Despite these challenges, the friendship and teamwork that developed during this period remained an important component of Indo-Bangladesh relations.

The post-Cold War era (1990–2010) saw substantial changes in the global political and economic landscape, which influenced Indo-Bangladesh ties. After the conclusion of the Cold War, both countries began to implement market-oriented reforms and economic liberalization. This move toward economic liberalization has resulted in increasing commerce and investment between the two countries. And several trade agreements were signed during this time in order to strengthen economic cooperation and bilateral trade. The 2006 South Asian Free Trade Area (SAFTA) agreement encouraged trade by lowering trade barriers and tariffs.

Security cooperation was another important aspect of the engagement, particularly in the battle against cross-border terrorism and insurgency. To maintain regional stability, coordinated efforts were made to strengthen border security, intelligence sharing, and counterterrorism measures. Another notable turning point during this time period was the signing of the Ganges Water Treaty in 1996, which ended the two countries' long-standing quarrel over water allocation. The post-Cold War era witnessed significant progress in economic and security cooperation, but sporadic political and diplomatic hurdles continued.

The current time (2010-present) has been marked by growing economic ties, strategic cooperation, and increasing problems. Economic relations between India and Bangladesh have reached heights that were never before with both countries emerging as major trading partners. India, as one of Bangladesh's top import markets and a prominent export destination, contributes to the two nations'

notable increase in bilateral commerce. Infrastructure development and connectivity projects have also advanced, with initiatives like as the BBIN (Bangladesh, Bhutan, India, and Nepal) Motor Vehicles Agreement and the construction of cross-border rail and road networks to improve connectivity in the region.

The two nation's strategic cooperation has grown as a result of India's critical role in assisting Bangladesh's development aspirations through a variety of projects and initiatives. Energy cooperation has been a key focus, with agreements for electricity exchange and cooperative ventures in power generating. India has also supplied funds for Bangladeshi infrastructure projects such as roads, bridges, and ports. However, there have been some recent issues of river water sharing, border management, and illegal migration are all disputable subjects.

The bilateral relationship has also taken on new dimensions as both countries collaborate to handle the security and humanitarian consequences of the Rohingya refugee crisis and the attempts have been made diplomatically to tackle these issues through dialogue and cooperation.

The historical framework of Indo-Bangladesh relations depicts a dynamic and growing bilateral relationship influenced by shared history, economic partnership, and strategic cooperation. From the early years of Bangladesh's independence and the Indo-Bangladesh Treaty of Friendship, Cooperation, and Peace to the post-Cold War period of economic liberalization and security cooperation, to the most recent stage of growing economic ties and strategic initiatives, the relationship underwent significant changes and development. Still we see there are hurdles to overcome, the bilateral relationship is still guided by the values of friendship and cooperation. This ensures that both countries will cooperate to promote mutual prosperity and regional stability.

Ongoing Challenges :

Considering their common history, culture, and economy, India and Bangladesh continue to face problems that affect their relationship. And the murders of Bangladeshi citizens by India's Border Security Force (BSF) are among the two nation's most serious border issues. One of the longest borders of 4,096-kilometer between Bangladesh and India is among the most porous in the world, resulting in regular conflicts, unlawful crossings, and smuggling that these both countries have accepted the importance of peaceful border control, and still stories of BSF shooting at Bangladeshi citizens continue to generate diplomatic tensions. India tries to maintain that such efforts are necessary to curb these criminal activities including people trafficking and animal smuggling.

Whereas Bangladesh calls for more moderation and a more humanitarian approach, describing these executions as cruel and unacceptable which both the parties believe that non-lethal techniques are critical, and multiple bilateral discussions have attempted to resolve these issues. Nevertheless,

cross-border tensions and poor practical execution persist, occasionally fuelling anti-India sentiment in Bangladesh that requires a long-term solution of improved border force coordination, community involvement, and comprehensive economic alternatives for persons who rely on illicit traffic.

Water sharing is another major issue in India-Bangladesh relations, specifically with regard to the Teesta River. It irrigates huge agricultural areas, provides a lifeline to millions of people in northern Bangladesh and Bangladesh, on the other hand, believes it does not receive its fair share of water, particularly during the dry season, and is annoyed by disagreements over water allocation. after India and Bangladesh signed the Ganges Water Treaty in 1996, the Indian state of West Bengal has opposed the Teesta because it is concerned that its own farmers may run out of water.

Given the ongoing political issues in India, successive Bangladeshi governments have repeatedly asked for a fair solution, but negotiations have come to an end and India is concerned about Bangladesh's response, which has been to explore alternate options, such as expanded collaboration with China on water management projects. In absence of a formal agreement, Bangladesh is vulnerable to water shortages that might harm agriculture and livelihoods, while India risks losing trust in a key neighbour. and in order to settle the Teesta conflict, India's federal and state governments must demonstrate political will and commit to fair and sensible water-sharing agreements that include the requirements of both countries.

On the commercial front, the links between Bangladesh and India have grown dramatically over time, but Dhaka remains seriously concerned about the widening trade gap. Since Bangladesh imports significantly more than it exports, India benefits greatly from the trade deficit, despite being one of Bangladesh's top trading partners. This disparity is compounded by Bangladesh's economy, which is mostly centred on garment sales, whereas India exports a wide range of items, including agricultural products, machinery, and raw materials. Although India grants duty-free access to Bangladeshi exports under the South Asian Free Trade Agreement (SAFTA), non-tariff barriers, bureaucratic red tape, and infrastructure constraints continue to impede Bangladesh's export potential.

Various Bangladeshi enterprises struggle to penetrate into the Indian market due to the complicated regulatory regulations and quality standards that frequently act as trade barriers and the additional distortion of official trade data caused by cross border informal trade poses issues for policymakers which both countries must address this by eliminating non-tariff trade obstacles, strengthening border trade infrastructure, and encouraging more investment in Bangladeshi enterprises to boost export competitiveness. Moreover, strengthening regional connectivity measures, such as road, rail, and port connections, can help to balance trade dynamics and produce more fair economic advantages for both countries.

And on the security front, challenges including terrorism, extremism, and illegal migration continue to have a significant impact on India-Bangladesh relations, as India has long been concerned that extremist groups operating in Bangladesh are opposed to it. While Bangladesh's Prime Minister Sheikh Hasina has taken severe actions against these groups, although cross-border militant events continue to strain relations, and India is concerned that extremist groups would enter Bangladeshi refugee camps, complicating the Rohingya refugee crisis even further and illegal migration is another sensitive issue which India claims has brought a substantial number of undocumented Bangladeshis into Indian states such as Assam and West Bengal.

On the political front, arguments in India have heated up since the National Register of Citizens (NRC) was adopted in Assam, that increased fears about the deportation of Bangladeshi citizens, which Bangladesh, on the other hand, rejects substantial illegal migration and believes such assertions are politically motivated. However, the security cooperation between the two countries has recently strengthened due to intelligence sharing and coordinated counterterrorism actions in order to control unlawful migration and solve common security concerns, constant teamwork and a comprehensive approach that takes both security and humanitarian considerations into account are required.

Another strategic issue for India is China's expanding influence in Bangladesh. China is now Bangladesh's largest commercial partner and a major infrastructural investor, having dramatically strengthened its military and economic ties with the country over the last decade. And Chinese businesses have participated in major projects such as the Padma Bridge, deep-sea port developments, and power plants, moreover, the provision of military weaponry to the Bangladeshi military has strengthened Beijing's defence ties with Dhaka.

China's expanding influence in South Asia is alarming for New Delhi, is seen as a strategic threat. New Delhi is suspicious of China's long-term geopolitical aspirations, particularly the Belt and Road Initiative (BRI), in spite of Bangladesh's claim that its relationship with China is built on economic cooperation rather than at India's expense. India has responded by bolstering its own economic initiatives and linkages with Bangladesh, such as energy cooperation, railway connections, and cross-border trade facilitation. And China, on the other hand, is a serious competitor of India because of its excellent financing arrangements and quick project completion. And India may adopt a more proactive strategy to mitigate China's influence by establishing competitive economic partnerships, strengthening defence cooperation, and improving cultural and interpersonal interactions with Bangladesh.

Having faced these hurdles, India and Bangladesh still maintain a mainly cooperative relationship, driven by shared geopolitical and economic goals and the two countries have made

major strides in sectors including energy cooperation, cultural exchanges, and cross-border connectivity while both acknowledging the need of a stable and constructive alliance, addressing these ongoing issues will require continued political will, diplomatic efforts, and imaginative solutions. Considering the challenges, India-Bangladesh relations can be restored if a long-term strategy is enacted that promotes equitable resource sharing, reciprocal growth, and stability in the region.

Possibilities :

Nations, when work together economically, both parties have numerous potential for financial gain. Their trade, investment, and connectivity are at the heart of this type of collaboration which strengthens economic relations. and then trade agreements offer a framework for countries to cut tariffs, improve market access, and streamline regulatory procedures which ultimately benefits major corporations, but it also strengthens small and medium-sized enterprises (SMEs) by supplying them with exposure to a more varied consumer base.

Foreign direct investment (FDI) is essential for economic cooperation since it strengthens industries, provides jobs, and advances technology. And infrastructure developments like as roads, train systems, and internet connectivity help to boost economic cooperation by facilitating the flow of products and services, infrastructure advancement acts as a vehicle. In today's time, E-commerce and digital trade have become critical components in bridging the gap between conventional economies and technological breakthroughs. This economic cooperation, when properly structured, has the potential to improve entire areas and generate long-term stability and prosperity.

Another major cooperation is the area of Energy that provides numerous opportunities for global partnership. The rising energy demand in the world requires coordinated efforts in oil, gas, and renewable energy sources. Working together in the production, delivery, and research of traditional energy sources such as gas and oil, which are still heavily used in many countries, can considerably improve energy security. Projects like Pipelines, LNG terminals, and cross-border energy projects, all contribute to a more diverse and consistent energy supply by minimizing reliance on a single source. Fortunately, the usage of renewable energy is increasing with the collective efforts of the world towards more sustainability. And the solar, wind, and hydroelectric projects can be designed to maximize the utilization of natural resources.

Advancements in battery storage and smart grid technology make it easier to integrate renewable energy sources into national systems. And several nations can meet their energy needs, lower their carbon footprints, and improve their sustainability by promoting energy cooperation. And the meaningful partnership in R&D promotes energy innovation, resulting in more affordable and efficient solutions.

One of the important aspect of regional cooperation is in the area of Water management, in the locations where countries share rivers and other bodies of water, where flooding, irrigation, and water scarcity can all be reduced by effective water management. To tackle the issue, countries with shared river basins must collaborate to establish comprehensive water sharing agreements that assure equitable distribution and long-term use. And flood management measures such as reservoir construction, embankment construction, and early warning systems can all help to mitigate the effects of natural disasters, because coordinated water distribution ensures food security, irrigation cooperation is also vital to agricultural output.

The development of innovative water-saving technologies such as desalination and drip irrigation can be possible with collaborative research projects and cooperation on transboundary waterways also builds diplomatic partnerships that lessen tensions and promote peace. And collectively, when nations freely debate water resources and work together to make decisions, they better build a climate of trust and mutual responsibility which ensures long-term sustainability.

People-to-people diplomacy through programs of cultural exchange are critical for building bilateral and regional ties. This cultural exchange allows people to learn about different languages, cultures, and practices, promoting mutual tolerance and understanding. The student exchange programs, educational collaborations, and scholarships allow young minds to learn from a variety of perspectives. The sector of Travel and Tourism, which encourages both cross-cultural exchanges and economic growth, is another important part of cultural exchange.

To foster international relationships, literary gatherings, art exhibits, film screenings and festivals are all means to promote cultural heritage. And the growing importance of digital media in cultural exchange has enabled the real time participation of people from diverse backgrounds. The participation of civil society, academic alliances, and business delegations are some examples of people-to-people diplomacy, which helps to develop informal networks to support formal diplomatic initiatives that can help nations deepen their relationships by encouraging cultural exchange, eliminating preconceptions and myths, and fostering peace and cooperation.

A key technique for resolving common issues is the regional collaboration and using its collective capabilities. There are organizations like the Bay of Bengal Initiative for Multi-Sectoral Technical and Economic Cooperation (BIMSTEC) and the South Asian Association for Regional Cooperation (SAARC) play a vital role in encouraging cross-sectoral collaboration. One of these, BIMSTEC, which connects South and Southeast Asia, prioritizes energy, trade, technology, transportation, and security. It promotes economic growth and regional connectivity by investing in infrastructure, simplifying trade laws, and facilitating investment.

On the other hand, SAARC seeks to foster stability, peace, and development throughout South Asia and, despite having problems like as political disagreements and conflicting policies, SAARC continues to provide a forum for interaction and cooperation. Through regional actions in climate change, disaster management, and public health strengthen collective resilience, and nations may address global concerns more effectively and ensure sustainable development for future generations by establishing regional cooperation organizations.

There are a few of the interwoven domains that make up international collaboration like-regional, cultural, water, energy, and economic cooperation. Collectively, nations can provide the groundwork for long-term growth and stability by actively participating in these fields. While economic cooperation fosters technological innovation and connection, resulting in increased commerce and investment. And energy collaborations provide dependable and sustainable power sources that propel industrial growth. Similarly, water management boosts agricultural output and environmental sustainability while lowering tensions over shared resources. In the same manner, the exchange of culture promotes mutual respect and understanding, hence bridging socioeconomic gaps. Furthermore, regional groups provide forums for discussing common challenges and implementing shared views.

Conclusion :

Bangladesh and India's long-standing historical, cultural, and economic ties have been shaken. These bilateral ties between the two countries have strengthened as a result of infrastructure collaborations, economic affiliations, and strategic security and counterterrorism cooperation, however, this cooperation faces numerous problems, including illegal migration, border disputes, water-sharing issues, and China's expanding regional influence. and one of the major difficulties that has yet to be overcome is the Teesta River water-sharing deal, which has been hampered by internal political constraints in India. And few tensions have also been heightened by concerns about the Citizenship Amendment Act (CAA) and the National Register of Citizens (NRC), both of which have an impact on Bangladeshi attitudes about immigration. And the issue with border security and illicit commerce continue to be key concerns requiring coordination in order to combat human trafficking and smuggling.

India-Bangladesh relations have a bright future, despite these obstacles. Since, Bangladesh has emerged as India's largest trading partner in South Asia, strengthening the economic ties and connectivity initiatives such as road networks, waterways, and railroad linkages have helped to strengthen regional integration. Moreover, both the countries have also worked together on energy sharing and renewable energy initiatives, with India supplying electricity to Bangladesh.

Both countries acknowledge the strategic necessity of keeping the Bay of Bengal peaceful

and their commitment to regional stability is seen in the strengthening of defence ties, joint military exercises, and intelligence sharing. While their interpersonal and cultural interactions continue to improve the two nations ties. Their deeper collaboration in the future will necessitate greater economic integration, continuous political engagement, and the resolution of outstanding issues. Assuming both countries can properly manage their shared issues, their alliance could serve as a model for future regional cooperation and South Asian stability.

References :

1. Bhasin, A. S. (2018). India-Bangladesh relations: A historical analysis. Pentagon Press.
2. Ganguly, S. (2017). India-Bangladesh relations: A critical analysis. Routledge.
3. Rahman, M. (2019). Bangladesh-India relations: A critical perspective. University Press Limited.
4. Ministry of External Affairs, Government of India. (2020). India-Bangladesh relations.
5. Ahmed, I. (2020). India-Bangladesh relations: Challenges and opportunities. Journal of International Relations, 20(1), 1-15.
6. Bhattacharya, R. (2019). India-Bangladesh economic relations: Trends and prospects. Journal of South Asian Studies, 42(2), 257-272.
7. Hossain, M. (2020). China's growing influence in Bangladesh: Implications for India-Bangladesh relations. Journal of Contemporary Asia, 50(2), 267-284.
8. Ministry of External Affairs, Government of India. (2020). India-Bangladesh relations.
9. Kumar, A. (2020). India-Bangladesh relations in the 21st century. Sage Publications.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 95–106

Digital Governance and the Transformation of the Welfare State :A Case Study of the Parivar Pehchan Patra (PPP) in Haryana

Kamal
Research Scholar, Department of Political Science
University of Delhi, New Delhi.

Abstract :

The rapid expansion of digital governance in India has significantly transformed the delivery of welfare services, reshaping the relationship between the state and its citizens. This paper examines the Parivar Pehchan Patra (PPP) initiative of Haryana as a case study to analyze how technology-driven governance reforms are redefining the welfare state. PPP introduces a family-based digital identification system that integrates multiple welfare schemes into a centralized database, enabling proactive service delivery, improved targeting, and enhanced administrative efficiency. By leveraging data analytics and algorithmic verification, the system aims to reduce duplication, curb leakages, and support evidence-based policymaking. The study highlights the shift from application-driven welfare to automated and data-informed governance mechanisms. However, it also critically assesses challenges such as digital exclusion, data inaccuracies, privacy risks, and accountability in algorithm-based decision-making. The paper argues that while PPP demonstrates the potential of digital governance to strengthen welfare outcomes, its long-term success depends on robust grievance redressal mechanisms, transparency, digital literacy, and strong legal safeguards for data protection. The findings offer important lessons for other Indian states adopting similar digital welfare models.

Keywords :

Digital Governance, Welfare State, Parivar Pehchan Patra (PPP), Digital Welfare Delivery, Data-Driven Governance, Family-Based Identification, Algorithmic Governance, Social Protection, Public Administration.

1. Introduction :

Digital governance has become a defining feature of public administration in India, transforming the way governments design, manage, and deliver welfare services. The widespread adoption of information and communication technologies (ICTs), digital identification systems, and data-driven governance has enabled public institutions to improve efficiency, transparency, and accountability. National initiatives such as Digital India, Aadhaar, and various e-governance platforms demonstrate the government's commitment to modernizing public service delivery through technology (Government of India, 2019; Mehta, 2020). These reforms have been particularly significant in the welfare sector, where traditional systems have often been affected by delays, duplication, corruption, and exclusion.

Conventional welfare delivery in India relied on fragmented administrative structures, paper-based records, and manual verification processes. Such mechanisms frequently resulted in inaccurate beneficiary identification, administrative inefficiencies, and delays in delivering public services (Dreze & Khera, 2017; Saxena, 2017). Digital governance seeks to overcome these limitations by integrating government databases, automating eligibility verification, and enabling data-driven decision-making. The use of digital technologies has improved targeting, reduced transaction costs, and strengthened evidence-based policymaking, allowing governments to deliver welfare benefits more efficiently (Mukherjee, 2020; World Bank, 2016). At the same time, the increasing use of data analytics and Artificial Intelligence (AI) has introduced new possibilities for proactive governance while also raising concerns regarding privacy, digital exclusion, and algorithmic accountability (Masiero & Bailur, 2021; Zuboff, 2019).

Within this context, the Parivar Pehchan Patra (PPP) initiative of Haryana represents an important innovation in digital welfare governance. Introduced by the Government of Haryana, PPP is a family-based digital identification system that assigns every household a unique Family ID and integrates demographic, socio-economic, and welfare-related information into a centralized database (Government of Haryana, 2021). Unlike individual-based identification systems, PPP adopts a household approach, enabling the government to identify eligible beneficiaries, coordinate multiple welfare schemes, and improve the accuracy of benefit distribution (State of Haryana, 2022). This integrated framework supports a transition from application-based welfare to proactive service delivery, where benefits are provided based on verified household data rather than repeated citizen applications.

Despite its advantages, PPP also highlights important policy and ethical challenges. The extensive use of centralized data raises concerns regarding privacy, data security, and consent, while

dependence on digital systems may exclude citizens with limited digital literacy or internet access. Furthermore, automated decision-making requires transparent and accountable governance to prevent errors and bias in welfare allocation (Chaudhuri, 2022; Supreme Court of India, 2018).

Against this background, this study examines the role of the Parivar Pehchan Patra in transforming welfare delivery in Haryana through digital governance. It analyses the initiative's contribution to improving administrative efficiency, beneficiary targeting, and service delivery while critically evaluating challenges related to digital inclusion, data protection, and algorithmic governance. The findings contribute to broader debates on the future of digital welfare systems in India and offer insights for policymakers seeking to balance technological innovation with transparency, accountability, and social inclusion.

2. Understanding Digital Governance :

Digital governance, also known as e-governance, refers to the use of information and communication technologies (ICTs) to improve public administration, enhance service delivery, and promote citizen participation. It involves not only digitizing government processes but also redesigning governance systems to make them more transparent, efficient, accountable, and responsive (Bannister & Connolly, 2014; Heeks, 2018). Through digital platforms, centralized databases, and data-driven decision-making, governments can improve policy implementation while reducing administrative delays and corruption (Bhatnagar, 2014).

A key feature of digital governance is the integration of digital platforms, centralized information systems, and automated processes for service delivery. These technologies simplify administrative procedures, improve transparency, and ensure that welfare benefits reach eligible beneficiaries efficiently (Masiero & Bailur, 2021; Mukherjee, 2020). Real-time data analytics further strengthens governance by enabling governments to monitor welfare programs, identify service gaps, and make evidence-based policy decisions. This supports a shift from reactive governance, where citizens apply for benefits, to proactive governance, where eligible individuals are identified and served automatically (World Bank, 2020).

Data and Artificial Intelligence (AI) have become increasingly important in digital governance. Governments use AI to automate eligibility verification, detect fraud, optimize resource allocation, and improve the accuracy of welfare delivery (Masiero & Bailur, 2021; Chaudhuri, 2022). However, AI also presents significant challenges. Algorithmic decision-making may reinforce existing biases in historical data, leading to the exclusion of vulnerable populations (Eubanks, 2018). Additionally, extensive use of personal data raises concerns about privacy, transparency, and accountability. Therefore, the adoption of AI should be supported by ethical guidelines, legal safeguards, and effective

grievance redressal mechanisms to ensure fairness and public trust (Zuboff, 2019).

Digital governance is particularly significant in developing democracies such as India, where large-scale welfare systems often face problems of inefficiency, duplication, and corruption (Dreze & Khera, 2017). Digital technologies help streamline service delivery, reduce leakages, and improve monitoring of government schemes (Government of India, 2019; NITI Aayog, 2018). However, challenges such as limited internet access, low digital literacy, socio-economic inequalities, and concerns over data privacy continue to affect the effectiveness of digital initiatives (Yadav & Palshikar, 2019; Supreme Court of India, 2018). Addressing these issues is essential to ensure inclusive and equitable governance.

Overall, digital governance has transformed welfare administration by enabling governments to deliver services more efficiently, transparently, and proactively. Integrated digital platforms improve beneficiary identification, reduce duplication, and support evidence-based policymaking. Initiatives such as India's Digital India programme and Haryana's Parivar Pehchan Patra (PPP) demonstrate the potential of digital governance to create a more citizen-centric welfare system (Government of Haryana, 2021). At the same time, ensuring digital inclusion, protecting privacy, and minimizing algorithmic bias remain critical for achieving equitable and sustainable governance outcomes.

3. Evolution of Welfare Delivery in Haryana :

The welfare delivery system in Haryana has evolved from traditional, manual administrative processes to digitally enabled governance aimed at improving efficiency and transparency. Earlier, welfare services such as subsidized food, pensions, scholarships, and healthcare were delivered through separate government departments using paper-based records, physical applications, and manual verification (Saxena, 2017; Dreze & Khera, 2017). Although these systems expanded access to social protection, they were often slow, fragmented, and prone to administrative inefficiencies.

3.1 Traditional Welfare Mechanisms :

Traditional welfare delivery in Haryana relied on multiple departments, each maintaining separate beneficiary databases and eligibility criteria. Citizens seeking benefits under schemes such as the Public Distribution System (PDS), social pensions, or educational assistance had to submit separate applications and supporting documents to different offices (Khera, 2019). This fragmented approach increased bureaucratic complexity, delayed service delivery, and placed additional financial and time burdens on beneficiaries. Manual record-keeping and paper-based verification also made the system vulnerable to errors, inefficiency, and lack of transparency (Bhatnagar, 2014).

3.2 Challenges in Welfare Delivery :

The traditional welfare system faced several structural challenges, including leakages,

duplication, and administrative delays. Weak coordination among departments often resulted in overlapping beneficiary lists, allowing some individuals to receive multiple benefits while eligible households were excluded (Bhattacharya & Roy, 2021). Corruption, fraudulent claims, and diversion of resources further reduced the effectiveness of welfare programmes (Dreze & Khera, 2017). In addition, manual processing and limited monitoring slowed the delivery of services, particularly affecting rural and marginalized populations (Singh & Bansal, 2021). The absence of centralized data also restricted evidence-based policymaking and effective programme evaluation (Mukherjee, 2020).

3.3 Need for Digital Reforms :

These challenges highlighted the need for digital reforms to improve the efficiency, transparency, and accountability of welfare delivery. Digital governance enables centralized databases, automated eligibility verification, and real-time monitoring, reducing duplication and administrative delays (Masiero & Bailur, 2021; Government of India, 2019). It also supports a shift from application-based welfare to proactive service delivery, where eligible beneficiaries are identified automatically using integrated family data (World Bank, 2020).

The introduction of digital identity systems such as Aadhaar created the foundation for Haryana's Parivar Pehchan Patra (PPP), a family-based identification system that links multiple welfare schemes through a single database. By improving interdepartmental coordination and enabling data-driven decision-making, PPP addresses many limitations of traditional welfare mechanisms while promoting more accurate, transparent, and citizen-centric service delivery (Government of Haryana, 2021; State of Haryana, 2022).

4. Parivar Pehchan Patra (PPP): An Overview :

The Parivar Pehchan Patra (PPP) is a digital governance initiative launched by the Government of Haryana in 2018 to improve welfare delivery through a centralized family-based identification system. Unlike individual identification systems, PPP assigns each household a unique identification number and integrates demographic, socio-economic, and welfare-related information into a single database. The initiative aims to improve administrative efficiency, reduce leakages, and ensure that welfare benefits reach eligible families more accurately (Government of Haryana, 2021).

4.1 Objectives and Design :

The primary objective of PPP is to create a comprehensive database of all families in Haryana and use it to streamline welfare administration. By treating the household as the basic unit of governance, the system captures family-level information such as income, dependents, and eligibility for government schemes. Data from multiple government departments are integrated into a centralized database, enabling accurate verification and reducing duplication of records (State of Haryana, 2022;

Government of India, 2019). This integrated design simplifies access to welfare benefits while improving coordination across departments.

4.2 Family-Based Identification and Welfare Integration :

A key feature of PPP is its family-based identification approach, which enables the government to assess welfare needs at the household level rather than focusing only on individuals. This ensures that all family members, including children, women, and the elderly, are considered during welfare planning (Khera, 2019). The centralized platform links various welfare schemes such as pensions, scholarships, health insurance, and social assistance, allowing real-time eligibility verification and automated benefit delivery. It also reduces duplication, improves transparency, and strengthens inter-departmental coordination (Bhattacharya & Roy, 2021; Mukherjee, 2020).

4.3 Role of Data Analytics and AI :

Data analytics and Artificial Intelligence (AI) enhance the effectiveness of PPP by automating eligibility verification, identifying duplicate records, and detecting inconsistencies across databases (Chaudhuri, 2022). Predictive analytics also help identify vulnerable households and support evidence-based policymaking, enabling a shift from reactive to proactive welfare delivery (Masiero & Bailur, 2021; World Bank, 2020). However, the increasing use of data and AI also raises concerns regarding privacy, data security, and algorithmic transparency. Addressing these issues through legal safeguards and effective grievance redressal is essential for ensuring public trust and equitable welfare delivery (Supreme Court of India, 2018; Zuboff, 2019).

5. PPP and Welfare State Transformation :

The Parivar Pehchan Patra (PPP) has transformed welfare delivery in Haryana by shifting governance from a fragmented, application-based system to a proactive and data-driven model. Through centralized family-level data, PPP improves service delivery, strengthens monitoring, and reshapes the relationship between citizens and the state.

5.1 Shift to Proactive Service Delivery :

Traditionally, citizens had to apply separately for different welfare schemes, resulting in delays, administrative complexity, and exclusion of vulnerable groups (Dreze & Khera, 2017). PPP replaces this approach with proactive service delivery by using integrated household data to identify eligible beneficiaries and facilitate automatic access to welfare schemes (Government of Haryana, 2021). This reduces bureaucratic procedures, improves efficiency, and ensures timely delivery of benefits, particularly for economically weaker and marginalized households (Masiero & Bailur, 2021).

5.2 Improved Targeting and Data Management :

PPP strengthens welfare administration through centralized family-level data, enabling accurate

identification of beneficiaries and reducing duplication of benefits (Khera, 2019). The integrated database also supports real-time monitoring, allowing policymakers to track programme implementation, identify service gaps, and make evidence-based decisions (Mukherjee, 2020; Bhattacharya & Roy, 2021). Centralization improves coordination among government departments and enhances transparency in welfare delivery.

5.3 Changing Citizen–State Relationship :

PPP has reshaped the interaction between citizens and the state by making welfare services more accessible and citizen-centric. Automated verification and reduced paperwork simplify access to government schemes, increasing administrative responsiveness and public trust (Masiero & Bailur, 2021). At the same time, the growing use of data analytics and algorithmic decision-making raises concerns about privacy, transparency, and accountability. Addressing these issues through strong legal safeguards and effective grievance mechanisms is essential to ensure that digital governance remains inclusive and protects citizens' rights (Chaudhuri, 2022; Zuboff, 2019).

6. Benefits of Parivar Pehchan Patra (PPP) :

The Parivar Pehchan Patra (PPP) has significantly improved welfare delivery in Haryana by introducing a centralized, family-based digital governance system. By integrating multiple welfare schemes, automating eligibility verification, and using data-driven decision-making, PPP has reduced inefficiencies while making welfare delivery faster, more transparent, and citizen-centric.

A major benefit of PPP is the reduction of duplication and leakages in welfare programmes. Earlier, different government departments maintained separate beneficiary records, resulting in overlapping benefits, fraudulent claims, and inefficient use of public resources (Dreze & Khera, 2017). PPP addresses these issues by assigning each family a unique identification number and linking all welfare schemes through a centralized database (Government of Haryana, 2021). Real-time verification and cross-checking of records help identify duplicate entries and ensure that benefits reach eligible households. This integrated approach improves transparency and minimizes resource wastage (Bhattacharya & Roy, 2021; World Bank, 2020).

PPP has also accelerated service delivery by replacing manual verification and paper-based procedures with automated digital processes. Under the earlier system, beneficiaries often experienced long delays due to repeated documentation and administrative approvals (Saxena, 2017). Through digital records and automated eligibility checks, PPP enables quicker processing of welfare benefits, reducing administrative burden on government officials while ensuring timely assistance for vulnerable households (Masiero & Bailur, 2021).

Another important contribution of PPP is its support for evidence-based policymaking. The

centralized household database provides policymakers with reliable information on demographic and socio-economic conditions, allowing better identification of eligible beneficiaries and underserved populations (Mukherjee, 2020). Data analytics also helps monitor programme performance, evaluate policy outcomes, and guide resource allocation based on actual needs rather than estimates (Chaudhuri, 2022). This enables the government to design more targeted and effective welfare interventions.

PPP further enhances administrative efficiency by integrating multiple departments onto a single digital platform, reducing repetitive record-keeping and improving coordination across government agencies (Government of India, 2019). Automated monitoring, centralized reporting, and AI-assisted verification strengthen transparency and accountability while lowering administrative costs (Masiero & Bailur, 2021; World Bank, 2020). Overall, PPP represents an important step towards a more efficient, data-driven, and citizen-centric welfare system, demonstrating how digital governance can improve both the quality and effectiveness of public service delivery.

7. Challenges, Policy Implications, and Recommendations :

Although the Parivar Pehchan Patra (PPP) has significantly improved welfare delivery through digital governance, its implementation also presents important challenges related to digital inclusion, data accuracy, privacy, and algorithmic accountability. Addressing these concerns is essential to ensure that the system remains equitable, transparent, and citizen-centric.

One of the major challenges is digital exclusion. Many rural residents, elderly individuals, and economically disadvantaged households have limited access to the internet, digital devices, or the skills needed to interact with digital platforms (Singh & Bansal, 2021). Although PPP automates welfare delivery, citizens often need to update records, verify information, or submit grievances online. Limited digital literacy, particularly among women and marginalized communities, may reduce access to these services and widen existing inequalities (Masiero & Bailur, 2021; World Bank, 2020).

Another concern relates to data accuracy and privacy. Since PPP integrates information from multiple government databases, errors such as incorrect family details or outdated records can lead to exclusion from welfare benefits (Bhattacharya & Roy, 2021). Efficient grievance redressal and timely data correction are therefore essential. At the same time, the centralized storage of personal and household information raises concerns regarding data security, unauthorized access, and misuse of sensitive information. Strong legal safeguards, secure digital infrastructure, and clear policies on consent and data sharing are necessary to protect citizens' privacy (Supreme Court of India, 2018; Zuboff, 2019).

The increasing use of Artificial Intelligence (AI) and automated decision-making in PPP also creates challenges related to transparency and accountability. Algorithms used for eligibility

verification or fraud detection may unintentionally reflect biases in existing data, leading to unfair outcomes for vulnerable groups (Chaudhuri, 2022). To maintain public trust, automated decisions should be transparent, explainable, and supported by accessible appeal mechanisms (Masiero & Bailur, 2021).

To strengthen PPP, several policy measures are required. A robust grievance redressal system should provide multiple channels, including online portals, mobile applications, and local service centres, enabling citizens to report errors and resolve disputes efficiently (Singh & Bansal, 2021). Governments should also promote digital literacy through community training programmes and awareness campaigns so that all sections of society can effectively access digital services. In addition, independent oversight of algorithmic decision-making, regular system audits, and stronger implementation of data protection laws will improve accountability and safeguard citizens' rights (Supreme Court of India, 2018).

Overall, while PPP demonstrates the transformative potential of digital governance in welfare delivery, its long-term success depends on balancing technological efficiency with inclusion, transparency, privacy, and effective legal safeguards. Strengthening these areas will ensure that digital welfare systems remain both efficient and socially equitable.

9. Conclusion :

The Parivar Pehchan Patra (PPP) initiative represents a major step in the digital transformation of welfare delivery in Haryana and demonstrates the growing role of digital governance in strengthening public service delivery. This study examined PPP as a family-based digital identification system, highlighting its contribution to improving welfare administration through centralized data, automation, and evidence-based decision-making. The findings show that PPP has shifted welfare delivery from a traditional application-based model to a proactive system in which eligible households can be identified and served more efficiently (Government of Haryana, 2021; Masiero & Bailur, 2021).

The analysis indicates that PPP has improved the targeting of welfare schemes by reducing duplication, minimizing leakages, and enhancing coordination among government departments. Centralized household data and automated verification have accelerated service delivery while supporting better monitoring and policy planning (Bhattacharya & Roy, 2021; Mukherjee, 2020). These developments illustrate how digital governance can improve transparency, accountability, and administrative efficiency, making welfare programmes more responsive to citizens' needs (World Bank, 2020).

Despite these achievements, several challenges remain. Digital exclusion continues to affect rural communities, elderly citizens, and economically disadvantaged groups with limited access to

technology or digital literacy (Singh & Bansal, 2021). Concerns related to data accuracy, privacy, cybersecurity, and algorithmic decision-making also require careful attention. Ensuring transparent grievance redressal, protecting personal data, and maintaining accountability in automated systems are essential for building public trust and ensuring equitable access to welfare benefits (Chaudhuri, 2022; Zuboff, 2019).

The experience of PPP offers important lessons for India's broader welfare system. It demonstrates that digital governance can significantly improve the efficiency and effectiveness of welfare delivery when supported by reliable data, strong institutional coordination, and citizen-centric policies. At the same time, successful implementation requires complementary measures such as digital literacy programmes, robust legal safeguards for data protection, transparent algorithmic governance, and regular monitoring of programme outcomes (Supreme Court of India, 2018).

In conclusion, PPP provides a valuable model for other Indian states seeking to modernize welfare administration. While technology has the potential to transform public service delivery, its long-term success depends on balancing innovation with inclusiveness, transparency, and accountability. Strengthening these foundations will enable digital welfare initiatives to enhance social protection, improve governance, and contribute to a more efficient and equitable welfare state in India.

References :

- Bannister, F., & Connolly, R. (2014). ICT, public values and transformative government. *Government Information Quarterly, 31*(1), 119–128.
- Bhattacharya, A., & Roy, S. (2021). Digital governance and welfare delivery in India: Opportunities and challenges. *Indian Journal of Public Administration, 67*(3), 421–438.
- Bhatnagar, S. (2014). *Public service delivery: Role of information and communication technology in improving governance*. World Bank.
- Centre for Internet and Society. (2020). *Digital identity and social welfare in India*. CIS.
- Chaturvedi, M. (2018, April). A step forward to take Haryana on digital track: Digital Haryana. In *Proceedings of the 3rd International Conference on Internet of Things and Connected Technologies (ICIoTCT)* (pp. 26–27).
- Chaudhuri, A. (2022). Algorithmic governance and accountability in India. *Economic and Political Weekly, 57*(12), 45–52.
- Chen, Y. C. (2017). *Managing digital governance: Issues, challenges, and solutions*. Routledge.
- Dreze, J., & Khera, R. (2017). Recent social security initiatives in India. *World Development,*

98, 555–572. https://doi.org/10.1016/j.worlddev.2017.05.035

- Eubanks, V. (2018). *Automating inequality: How high-tech tools profile, police, and punish the poor*. St. Martin's Press.
- Government of Haryana. (2021). *Parivar Pehchan Patra: Citizen charter and implementation framework*. Department of Citizen Resources and Information.
- Government of India. (2019). *National e-Governance Plan: Towards smart governance*. Ministry of Electronics and Information Technology.
- Government of India. (2020). *India digital ecosystem: Welfare delivery reforms*. NITI Aayog.
- Haka, S. (2021). Parivar Pehchan Patra (PPP): A portable initiative by the Government of Haryana for welfare schemes. *International Journal of Social Science & Interdisciplinary Research, 10*(7), 59–67.
- Hanisch, M., Goldsby, C. M., Fabian, N. E., & Oehmichen, J. (2023). Digital governance: A conceptual framework and research agenda. *Journal of Business Research, 162*, 113777.
- Heeks, R. (2018). Information and communication technology for development (ICT4D). In *Routledge handbook of development studies* (pp. 525–537). Routledge.
- Khera, R. (2019). Aadhaar and social protection in India. *Economic and Political Weekly, 54*(6), 61–70.
- Krishna, A. (2018). Bureaucratic reforms and welfare outcomes in Indian states. *Governance, 31*(4), 739–756.
- Manoharan, A. P., Melitski, J., & Holzer, M. (2023). Digital governance: An assessment of performance and best practices. *Public Organization Review, 23*(1), 265–283.
- Masiero, S., & Bailur, S. (2021). Digital welfare states: The role of technology in social protection. *Information Technology for Development, 27*(1), 1–8. https://doi.org/10.1080/02681102.2020.1847172
- Mehta, P. B. (2020). The Indian state and digital governance. *India Review, 19*(3), 287–303.
- Ministry of Electronics and Information Technology. (2022). *Digital India programme: Annual report 2021–22*. Government of India.
- Mukherjee, A. (2020). Data-driven governance and public service delivery in India. *Public Administration and Development, 40*(4), 230–242.
- NITI Aayog. (2018). *National strategy for artificial intelligence: #AIforAll*. Government of India.
- Ramanathan, U. (2014). A unique identity? Aadhaar, welfare, and exclusion. *Indian Journal of Human Development, 8*(1), 1–12.

- Saxena, N. C. (2017). Reforms in public service delivery systems in India. *Indian Journal of Public Administration, 63*(2), 243–259.
- Sharma, A., & Jha, R. (2021). Digital platforms and welfare targeting in India. *Journal of Asian Public Policy, 14*(3), 370–386.
- Singh, S., & Bansal, S. (2021). Digital exclusion and welfare access in rural India. *Social Change, 51*(4), 610–627.
- State of Haryana. (2022). *PPP-based welfare scheme integration report*. Government Press.
- Supreme Court of India. (2018). *Justice K.S. Puttaswamy (Retd.) v. Union of India* (Privacy Judgment).
- United Nations Development Programme. (2019). *Digital governance and inclusive development*. UNDP.
- World Bank. (2020). *Identification systems for development: Principles and practices*. World Bank.
- Yadav, Y., & Palshikar, S. (2019). State capacity and welfare delivery in India. *Studies in Indian Politics, 7*(2), 251–266.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 107–116

रीवा जिले में महिला उद्यमिता एवं स्वरोजगारमूलक योजनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. मनीष शुक्ला
प्राध्यापक (वाणिज्य), शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म0प्र0)
शालिनी श्रीवास्तव,
शोधार्थी (वाणिज्य), शासकीय टी.आर.एस. महाविद्यालय, रीवा (म0प्र0)

सारांश –

किसी भी राष्ट्र के विकास के लिये उद्यमिता अति आवश्यक तत्व है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि कोई भी देश उपलब्ध मानव संसाधनों का पूर्ण उपयोग करके ही आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। चूंकि मानव का आधा भाग महिलाएं होती है। इसलिये कोई राष्ट्र महिलाओं की सहभागिता के बिना आर्थिक विकास का सपना पूरा नहीं कर सकता है। इसलिये प्रत्येक राष्ट्र में आर्थिक विकास की गति को प्रोत्साहित करने में महिलाओं की भूमिका बढ़ती जा रही है। जहां तक भारत का प्रश्न है यहां पर आदिकाल से महिलाएं उपेक्षित रही है उनका कार्यक्रम का दायरा घर परिवार तक ही सीमित रहा है। सत्यता यह है कि महिलाओं के अपने घर परिवार तक सीमित रहने के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। आज उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाएं प्रबंध, संचालन व सहभागिता के क्षेत्र में तीव्र गति से सफलता प्राप्त कर रही है।

भारत की सामाजिक मान्यताओं के अनुसार महिला का स्थान एवं कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी तक ही सीमित है, किन्तु आदिकाल से ही वह पुरुषों से आवश्यकता पड़ने पर पीछे नहीं रही। विकसित देशों में महिलाओं पुरुषों के साथ बिना भेदभाव के कार्य करती रहती है, जबकि भारत जैसे विकासशील देश में प्रयासरत है। शिक्षा प्रशिक्षण एवं आवश्यक दिशा–निर्देश जैसे–जैसे महिलाओं में विकसित हो रहा है। क्रमशः कृषि, पशुपालन के अतिरिक्त औद्योगिक एवं तृतीयक क्षेत्रों में भी महिला श्रमिकों की भागीदारी बढ़ी है।

मुख्य शब्द :– महिला उद्यमिता, स्वरोजगारमूलक योजना, भारतीय अर्थव्यवस्था।

प्रस्तावना –

भारतीय अर्थव्यवस्था पूरी तरह से गांव और खेती पर टिकी है। हर जगह महिला ही सबसे ज्यादा कार्य में लगी रहती है फिर भी किसी को पता नही कि अर्थव्यवस्था में महिलाओं का क्या योगदान है? पढ़–लिखकर विकास की दौड़ में आ खड़ी हुई महिलाएँ अब घर की चारदिवारी से कामकाज की दुनिया में शामिल हो रही हैं। बदली हुई सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों में महिलाओं को शिक्षा और रोजगाार के अवसर आसानी से

मिलने लगे है। जिसके कारण उनके लिये विकास के दरवाजे खुले है। राष्ट्र निर्माण व आर्थिक विकास में महिलाओं का योगदान काफी महत्व रखता है। महिलाओं में समानता की भावना विकसित करने एवं चेतना जागृत करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा वर्ष 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष की घोषणा की गई। आज समाज के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी देखी जा सकती है। फिर भी भारत जैसे पुरुष प्रधान देश में महिलाओं की आकांक्षाओं को सामाजिक बंधन के कारण साकार रूप नहीं मिल सका है। आर्थिक तंगी के कारण महिलाओं को मानसिक श्रम के अलावा शारीरिक श्रम भी करने को बाध्य होना पड़ता है, जिसके लिये उनकी अशिक्षा, प्रशिक्षण और दिशा–निर्देश का अभाव है।

भारत में सबसे अधिक महिलाएँ कृषि और खनन जैसे प्राथमिक क्षेत्रों में काम करती है। कृषि के साथ अन्य आर्थिक क्षेत्रों में भी महिलाओं की सहभागिता बढ़ रही है। महिला श्रम मानवीय समाज का महत्वपूर्ण अंग है। जिसके माध्यम से समाज के सांस्कृतिक मूल्यों का निर्वहन होता है और आर्थिक संरचना की निर्माण प्रक्रिया प्रस्फुटित होती है। ऐतिहासिक विकास के साथ–साथ महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति और जीवन शैली में आंशिक सुधार हुआ है। भारतीय समाज में महिलाओं के आर्थिक परिस्थितियों का निरूपण करने के लिये आवश्यक है कि संपूर्ण उत्पादन संरचना में महिला श्रम और उसकी सहभागिता को विवेचन किया जाए। गोरे का कथन महत्वपूर्ण है, जिसमें उन्होने लिखा हे कि परिवार में स्त्री के छोटे दर्जे का संबंध आर्थिक कार्यो से उसके अलग रखे जाने से है।

भारत सरकार ने महिला उद्यमिता को परिभाषित करते हुए स्पष्ट किया है कि महिला के अधिपत्य एवं नियंत्रण वाली कोई भी संस्था जिसका कम से कम पूंजी का 51 प्रतिशत लाभ महिला को प्राप्त हो तथा संस्था द्वारा उपलब्ध रोजगार का 51 प्रतिशत महिलाओं को प्राप्त हो तो इस संस्था को महिला उद्यमिता से संबंधित माना जा सकता है।

महिलाएं परिवार की धुरी होती है, उन्हे आर्थिक स्वावलंबन प्रदान करने और विकास में हिस्सेदारी बनाये रखने के लिये उद्यमिता के क्षेत्र में प्रवेश करना अंत्यत आवश्यक है। उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता निश्चित रूप में भारत के औद्योगिक व आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध होगी। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 1,210,854,977 है इसमें महिलाओं की जनसंख्या करीब 58.65 करोड़ है। म.प्र. की कुल जनसंख्या 72,626,809 है जिसमें महिलाएं 35,014,503 है। महिलाओं की इस विशाल जनसंख्या को अनदेखा कर देश एवं प्रदेश के आर्थिक समृद्धि की कल्पना नहीं की जा सकती है। मानवीय संसाधन के इस बड़े भाग को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक हर दृष्टि से समर्थ करके ही विकास के लक्ष्यों को पाया जा सकता है। 2011 की जनगणना के अनुसार 59.24 प्रतिशत महिलाएं साक्षर है। यह आंकडा 1971 में 22 प्रतिशत तथा 1991 में 39 प्रतिशत था। 31 महिलाएं 2008 में भारतीय प्रशासनिक सेवा के लिये चुनी गई जबकि 2007 में यह आंकड़ा 18 प्रतिशत तक सीमित था। 2014 में हुये आम चुनाव में 12.15 प्रतिशत महिलाएं बतौर सांसद चुनी गई। अब तक चुनी गई महिला सांसदो में 66 महिला सांसद की यह सबसे बड़ी संख्या है। आज महिलायें प्रत्येक क्षेत्र में अपने को साबित कर रही है। आज महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिये एवं देश के आर्थिक विकास के लिये महिलाओं की भागीदारी बहुत आवश्यक हो गई है सरकार महिलाओं के प्रोत्साहन के लिये समय–समय पर विशेष योजनायें भी बनाती है।

''महिलाओं की सृजनात्मक ऊर्जा विभिन्न सहायता व प्रेरणात्मक योजनाओं से आर्थिक विकास की नई दिशा का दिग्दर्शन कराती है।'' महिलाओं के लिये विशिष्ट प्रेरणायें व योजना महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं को देखते हुये तथा महिलाओं की उद्योग/स्वरोजगार के क्षेत्र में अधिकाधिक भागीदारी बढ़ाने के उद्देश्य से विभिन्न बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा केवल महिलाओं हेतु कुछ विशिष्ट योजनायें प्रतिपादित की जाती है। प्रेरणात्मक मार्गदर्शन सहायता तथा अनुदान कार्यक्रमों से बदलाव भी आया है।

उद्देश्य :-

स्वाधीनता के 70 वर्ष बीत जाने पर भी महिला उद्यमिता का विकास वांछित तीव्रता से नहीं हुआ है इस कमी का कारण क्या है? अतीत में हुई कमियों को पूर्ण करने के लिये क्या किया जाना चाहिए? इस शोध में इन्ही सब बातों पर चर्चा की गई है। राष्ट्रीय राज्य एवं ग्राम स्तर पर महिला उद्यमिता के उन्नयन तथा सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं संस्थापक अवरोधों को पर करने के लिये इस क्षेत्र में निरंतर शोध की आवश्यकता है।

- महिला स्वरोजगार मूलक योजनाओं से लाभान्वित हितग्राहियों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- महिला स्वरोजगार मूलक योजनाओं के संचालन में आने वाली समस्याओं का विश्लेषण करना।
- महिला स्वरोजगार मूलक योजनाओं में समस्या के सुधार हेतु उचित सुझाव देना।
- रीवा जिले की कुल आबादी में निम्न आय वर्ग का विस्तृत विश्लेषण करना।
- महिला स्वरोजगार मूलक योजनाओं हेतु सरकार द्वारा प्रदान किए गए अनुदानों की व्याख्या करना।
- महिला स्वरोजगार मूलक योजनाओं से सम्बन्धित वैधानिक पहलुओं को सामने लाना।
- महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक स्थिति और समाज में उनकी हैसियत को उठाने के लिये आर्थिक आत्मनिर्भरता के साधन के रूप में विकसित करना।
- महिलाओं को उद्यमीय जीवन अपनाने की दशा में उनके सामने आने वाली परेशानियों का पूर्वाभास कराना।
- महिला उद्यमियों की क्षमता, दक्षता तथा गुणों का विकास करने, उनकी व्यवसायिक श्रृंखला को मजबूत करने हेतु सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थानों द्वारा बनाई गई योजनाओं का अध्ययन करना।

शोध क्षेत्र :-

किसी भी शोध अध्ययन के व्यवस्थित अध्ययन के लिये उसके क्षेत्र का निवर्हन भी करना चाहिए। क्षेत्र का निर्धारण आवश्यकता और उपयुक्तता के आधार पर किया जाता है। यदि शोध का क्षेत्र छोटा होगा तो हो सकता है कि वह शोध अध्ययन के निष्कर्षो से काफी दूर हो जाय। अर्थात निष्कर्ष विश्वसनीय नहीं रह जाते और यदि शोध क्षेत्र व्यापक हो तो इसे समय औंर श्रम की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है तथा आर्थिक साधन भी बहुत अधिक खर्च करने पड़ते है। शोधार्थीं का कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण रीवा जिला है, जो प्रशासकीय दृष्टि से 10 तहसीलों में बांटां है जिले में 400 ग्राम पंचायते एवं 1025 ग्राम हैं। शोध प्रबंध में चुने गये गांवों तथा ग्रामीण विकास के विभिन्न पक्षकारों से प्रश्नावली के माध्यम से समस्या के समाधान का प्रयास किया जायेगा। चूँकि शोधार्थी का अध्ययन क्षेत्र रीवा जिले को लिया गया है। रीवा जिले में उत्खनन के कारण घनत्व है। 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 2,228,935 है, जिसमें पुरूषों की संख्या 1,157,495 तथा महिलाओं की संख्या 1,071,440 है। रीवा जिले में जनसंख्या का घनत्व 297 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। जिले की

साक्षरता प्रतिशत 72.26 प्रतिशत व्यक्ति शिक्षित है जिसमें पुरूष का साक्षरता प्रतिशत 81.37 एवं महिलाओं का साक्षरता प्रतिशत 62.45 है।

शोध प्रविधि :–

शोध या अन्वेषण किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए किया जाता है। ज्ञान की किसी भी शाखा में ध्यानपूर्वक नये तथ्यों की खोज के लिए किये गये अन्वेषण या परिक्षण को अध्ययन कहते है। ज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य अपरिहार्य है।

शोध कार्य में महिला उद्यमिता एवं स्वरोजगारमूलक योजनाओं से सम्बन्धित वास्तविक एवं विश्वसनीय आकड़ो को प्राप्त करने के लिये प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आकड़ों को एकत्र कर पूर्ण किया गया है। प्राथमिक आकड़े स्वयं कार्य स्थल पर जाकर मूल स्त्रोतो से एकत्र किये गये हैं। जबकि द्वितीयक आंकड़े महिला उद्यमिता एवं स्वरोजगारमूलक योजनाओं की समस्या से संबंधित विभिन्न प्रकाशित– अप्रकाशित पुस्तकों, शोध पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, शासकीय प्रतिवेदनों आदि से एकत्र कर प्रयोग किये गये हैं। इसके अतिरिक्त लाइब्रेरी, एवं इंटरनेट आदि का भी आकड़ें एवं विषय वस्तु से संबंधित स्टडी मटेरियल एकत्र करने में प्रयोग किया गया है।

उपकल्पना :–

इस शोध पत्र में निम्न उपकल्पनाएं ली गयीं है –

- महिलाओं की शिक्षा का विस्तार होने से उद्यमिता के प्रति जागरूकता आयी है।
- महिलायें अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग हुई है और समाज में उद्यमिता के जरियें विशिष्ट स्थान बनाने की ललक उनमें पैदा हुई है।
- महिला उद्यमी पुरूषों की तुलना में उच्च कोटि की प्रबंधकीय क्षमता वालीं होती है।
- गृह कार्य के प्रति समर्पण का उन भाव उद्योग के क्षेत्र में भी वैसा ही बना रहता है।
- जिले में महिला उद्यमी मनोवृत्ति का अभाव है।
- महिला उद्यमियों को ऋण एवं अन्य सुविधाओं की प्राप्ति हेतु कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

महिला उद्यमी के बढ़ते कदम (भारतीय परिवेश में) जिस व्यवसाय में महिलाओं का स्वामित्व, प्रबंध और नियन्त्रण होता है उसे महिला उद्यमी कहते हैं कि यदि देश की समृद्धि, संस्कृति, आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना है तो पहले उस देश की महिलाओं का अध्ययन करना चाहिए यदि महिलायें सुखी–सम्पन्न व समृद्ध हैं तो देश भी उतना ही सुखी–सम्पन्न व समृद्ध होगा। बड़ी–बड़ी कम्पनीज के मैनेजिंग डायरेक्टर के पद से लेकर संस्थाओं के प्रबंध, संचालन को महिला उद्यमी व खूबी निभा रही है, कुछ ऐसे ही महिला उद्यमी के बारे में विशेष जानकारी निम्न है– (विशेष रूप से भारतीय परिवेश में)

विनीता वाली – ब्रिटानिया इण्डस्ट्रीज की मैनेजिंग डायरेक्टर और सीईओ कारोबार की दुनिया में शीर्ष पर है। इकोनोमिक्स टाइम्स की तरफ से 2009 में उन्हें विजनेश वीमन ऑफ द ईराक के खिताब से भी नवाजा गया है।

चन्द्रा कोचर – जन्म 17 नवम्बर 1961 एम.बी.ए., एम.ए. (मैनेजमेंट स्टडी) मुम्बई, एम.डी., सी.ई.ओ. आई.

सी.आई.सी.आई. बैंक, भारत। चन्द्रा कोचर को फोर्ब्स पत्रिका ने दुनिया की सौ सर्वाधिक शक्तिशाली महिलाओं में से माना है।

किरण एम शॉं– जन्म 23 मार्च 1953 (बेंगलोर) देश की एक मात्र बॉयोटेक क्वीन। विश्व मानचित्र पर बायोटेक्नोलॉजी के क्षेत्र की एकमात्र महिला है। किरण एम शॉ का मानना है कि क्षमता व विजन हो तो महिला व पुरूष के भेद समाप्त हो जाते हैं।

शिखा वर्मा – एम.डी. सी.ई.ओ., एक्सिस बैंक, बैंक को ऊँचाईयों पर पहुँचाने में शिखा वर्मा की कड़ी मेहनत व लगन साफ दिखती है।

इसके साथ ही साथ हम अन्य आँकड़े देखते हैं कि शिक्षा, व्यवसाय, बैंक, विनिर्माण, चिकित्सा, पर्यावरणविद्, आदि क्षेत्र में भी महिलाएँ उभरकर सामने आ रही हैं। राजस्थान में ही सालाना 3 से 30 लाख रूपये तक महिला सी.ए. अपना बेहतर वेतन पा रही है। धीरे–धीरे महिलाएँ आत्मनिर्भर हो रही है एवं राष्ट्र के विकास में सहयोगी बन रही है।

पूर्व शोध की समीक्षा :–

गणेशन एस. (2003) तमिलनाडु राज्य के 10 जिलों में पंजीकृत 124 महिला उद्यमियों के स्तर का अध्ययन किया। अध्ययन में यह पाया गया कि न्यादर्श महिला उद्यमियों में 94.4 प्रतिशत एकल स्वामित्व, 70. 2 प्रतिशत 26 से 45 वर्ष आयु समूह, 71.8 प्रतिशत एकल परिवार, 87.1 प्रतिशत विवाहित एवं 83 से 90 प्रतिशत स्कूल स्तर तक शिक्षा प्राप्त थी। अध्ययन के उपरान्त यह सुझाव दिया कि जिला उद्योग केन्द्र द्वारा जिले में कुशल व बेरोजगार महिलाओं को उद्यम स्थापना के लिये प्रेरित किया जाये।

लाल व सहाय (2008) ने महिला उद्यमिता एवं घरेलू व्यवसाय के संदर्भ में बहुआयामी घटकों एवं चुनौतियों का तुलनात्मक विश्लेषण किया। अध्ययन हेतु लखनऊ शहर में कार्यरत महिला उद्यमियों का चयन स्तरीय निदर्शन पद्धति द्वारा किया। अध्ययन में पाया किये महिलाएं आत्मविश्वास से पूर्ण, उद्यमीय प्रकृति से युक्त थीं तथा सुझाव दिया कि यद्यपि घरेलू व्यवसाय में महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है, किन्तु फिर भी अभी इनकी स्थिति निम्न है तथा इन्हें पुरूषों की तुलना में अधिक चुनौतियों एवं समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

एंटोनी, एस. वर्गिस (2011) ने अपने अध्ययन में पाया कि उद्यमिता विकास में पति, पिता या पारिवारिक सदस्यों की प्रेरणा काफी सहायक हो सकती है तथा पति एवं पिता उद्यमिता हेतु प्रमुख प्रेरक घटक रहे है। उन्हें महिला उद्यमियों की क्षमता पर विश्वास होने पर उनके दृष्टिकोण एवं व्यवहार में परिवर्तन हो सकता है।

उषा किरण वी. (2012) ने हैदराबाद की 60 महिला उद्यमियों के प्रेरक घटकों, समस्याओं व चुनौतियों का अध्ययन किया तथा अध्ययन में यह पाया कि सर्वाधिक 50 प्रतिशत महिलाएं स्वप्रेरित होकर उद्यमिता के क्षेत्र में प्रवेश करती हैं। 93 प्रतिशत महिलाओं को परिवार एवं कार्यक्षेत्र के मध्य गतिरोध की समस्या थी। मुख्य चुनौतियों के रूप में 39 प्रतिशत महिलाओं को बाजार एवं 7 प्रतिशत महिलाओं को पर्याप्त जानकारी का अभाव एवं उत्पादन लागत वृद्धि का सामना करना पड़ा। अध्ययन के अंत में यह सुझाव दिया कि सरकार एवं वित्तीय संस्थाओं द्वारा एकल खिड़की योजना के माध्यम से अधिक से अधिक सुविधा दी जानी चाहिए।

तथ्यों का सारणीयन विश्लेषण एवं व्याख्या –

शोधार्थी द्वारा किया गया कोई भी शोध कार्य सही अर्थो में तभी प्रभावी होते है, जब शोधार्थी द्वारा उस

समस्या की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन किया जाये। इसके लिये यह आवश्यक है कि शोधार्थी द्वारा शोध अध्ययन में उपयोग किये गये समस्त शोध उपकरण द्वारा प्राप्त जानकारियों को व्यवस्थित क्रम में सारणीबद्ध किया जाये।

शोध क्षेत्र में रीवा जिले के महिला उद्यमिता एवं स्वरोजगारमूलक योजनाओं एवं आर्थिक विकास हेतु शोधार्थी ने कुछ शोध उपकरणों की सहायता ली है, जिसके द्वारा एकत्रित तथ्यो का सारणीयन, विश्लेषण एवं व्याख्या द्वारा वस्तु स्थिति की जानकारी प्रस्तुत की गयी है। जो इस प्रकार है–

तालिका क्रमांक–1

परिवार का स्वरूप

क्र.	परिवार का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
1.	संयुक्त	20	40
2.	एकल	30	60
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि कुल 40 प्रतिशत परिवार संयुक्त परिवार है, शेष 60 प्रतिशत महिला उद्यमियों के परिवार एकाकी है। ग्रामीण क्षेत्र में शहरों में आकर कार्य करती हैं जिसके कारण एकाकी परिवार ज्यादा पाये गये।

तालिका क्रमांक–2

परिवार में महिला उद्यमियों का स्थान

क्र.	परिवार में स्थान	संख्या	प्रतिशत
1.	उच्च स्थान	15	30
2.	मध्यम	10	20
3.	निम्न	25	50
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 30 प्रतिशत महिला उद्यमियों का परिवार में उच्च स्थान है। 20 प्रतिशत महिला उद्यमियों का मध्यम तथा 50 प्रतिशत महिला उद्यमियों का स्थान परिवार में निम्न है।

तालिका क्रमांक–3

महिला उद्यमियों की वैवाहिक स्थिति

क्र.	वैवाहिक स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	विवाहित	20	40
2.	अविवाहित	15	30
3.	विधवा	10	20
4.	परिव्यक्ता	05	10
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 40 प्रतिशत महिला उद्यमी विवाहित है तथा 30 प्रतिशत अविवाहित है

और विधवा महिला उद्यमियों का प्रतिशत 20 है तथा परिव्यक्ता महिला उद्यमियों का प्रतिशत 10 है। अतः स्पष्ट है कि महिला उद्यमियों में विवाहित महिला उद्यमियों का प्रतिशत अधिक है।

तालिका क्रमांक-4

परिवार की आर्थिक स्थिति

क्र.	आर्थिक स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	अच्छी	15	30
2.	खराब	25	50
3.	सामान्य	10	20
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि परिवारों की आर्थिक स्थिति में 30 प्रतिशत अच्छी, 50 प्रतिशत खराब तथा 20 प्रतिशत सामान्य आर्थिक स्थिति में अपना जीवनयापन कर रहे हैं। अतः स्पष्ट है कि 50 प्रतिशत महिलायें आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण उद्यमी बन गये।

तालिका क्रमांक-5

महिलाओं का समाज में पुरूषों के बराबरी के अधिकार के पक्ष में विचार

क्र.	विचार	संख्या	प्रतिशत
1.	सहमत	25	50
2.	असहमत	15	30
3.	कोई वक्तव्य नहीं	10	20
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि महिला उद्यमी पुरुषों के बराबरी में अपने आपको खड़ा करना चाहती है, अध्ययन में 50 प्रतिशत महिलाओं ने अपनी सहमति जताई शेष 50 प्रतिशत में 30 प्रतिशत असहमति जताई और शेष 20 प्रतिशत महिलाओं ने कोई मत व्यक्त नहीं किया है।

तालिका क्रमांक-6

उद्यमी महिलाओं में शैक्षणिक स्थिति

क्र.	शैक्षणिक स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	शिक्षित	05	10
2.	अशिक्षित	45	90
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि केवल 10 प्रतिशत महिला उद्यमी ही शिक्षित हैं और 90 प्रतिशत महिला उद्यमी अशिक्षित पाई गई इससे स्पष्ट है कि महिला उद्यमियों में शिक्षा की स्तर निम्न है।

रीवा जिले में प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम की स्थिति :-

प्रदेश के अन्य जिलों की भांति रीवा जिले में भी प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम 1 अप्रैल 2008 से संचालित है। यह वास्तव में 31.03.2008 तक दो योजनाओं प्रधानमंत्री रोजगार योजना और ग्रामीण रोजगार

सृजन कार्यक्रम का मिश्रित स्वरूप है।

सारणी क्र. 7

प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम की लक्ष्य एवं पूर्ति

(राशि लाख रूपये में)

वर्ष	लक्ष्य		पूर्ति	
	भौतिक	वित्तीय	भौतिक	वित्तीय
1	2	3	4	5
2019-20	40	148.20	30	135.91
2020-21	42	158.80	39	162.10
2021-22	35	149.00	30	169.59
2022-23	39	193.10	34	188.19
2023-24	72	191.85	80	143.42
योग	22	840.95	213	799.21

स्त्रोत – जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र रीवा (म.प्र.)

जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र रीवा से प्राप्त जानकारी के अनुसार अभी विगत पांच वर्षो के दौरान 226 में 213 हितग्राहियों द्वारा स्वरोजगार सम्बन्धी लघु एवं मध्यम स्तर के उद्योगों की स्थापना जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र रीवा के माध्यम से स्थापित कर चुके है। जिनमें से 799.21 लाख रूपये की आर्थिक मदद बैंकों के माध्यम से प्रदाय की जा चुकी है। विगत पांच वर्षो की लक्ष्य प्राप्ति को यदि देखा जाये तो अभी तक निर्धारित भौतिक लक्ष्यों में से 65.92 प्रतिशत औसत लक्ष्य प्राप्त किया जा चुका है। इसी प्रकार वित्तीय प्रतिपूर्ति की लक्ष्य 95.03 रहा है।

दीन दयाल रोजगार योजना :-

योजना का उद्देश्य :- उद्योग सेवा एवं व्यवसाय के क्षेत्र में केवल नवीन इकाइयों/गतिविधियों के माध्यम से स्वरोजगार स्थापना को प्रोत्साहन देने हेतु बैंकों/वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से लक्ष्य निश्चित कर ऋण उपलब्ध कराना एवं मार्जिन मनी की सहायता अनुदान के रूप में देना।

सारणी क्र. 8

क्र.	वर्ष	लक्ष्य		उपलब्धि	
		भौतिक	वित्तीय (रू. लाख में)	भौतिक	वित्तीय (रू. लाख में)
1.	2.	3.	4.	5.	6.
1.	2019-20	181	28.72	52	28.72
2.	2020-21	160	6.89	70	6.89
3.	2021-22	84	7.80	84	7.80
4.	2022-23	84	4.97	80	4.97
5.	2023-24	70	2.43	31	2.43
	योग	579	50.81	1317	50.81

प्राप्त पाँच वर्षो के आकड़ो से स्पष्ट है कि शासन द्वारा जिले में रखे गयें 579 भौतिक लक्ष्य में से मात्र 1317 भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति हो पाई है, जबकि वित्तीय लक्ष्य एवं पूर्ति पूरे 50.81 लाख रूपये ही है।

महिला उद्यमिता की समस्यायें –

- देश का सामाजिक ढाँचा परम्परागत एवं महिला उद्यमियों के प्रति कठोर, संवेदनहीन है।
- सामान्यतः महिलाओं में अपने आप निर्णय लेने की क्षमता का अभाव होता है।
- भारतीय महिला उद्यमियों की प्रमुख समस्या भारतीय पुरूषों की दोहरी मानसिंकता है।
- पुरूष श्रमिकों एवं कर्मचारियों के साथ काम न कर पाना।
- महिला उद्यमी कभी–कभी नवीनतम तकनीक से पूर्णतः जानकारी नहीं ले पाती है जिससे उत्पादन लागत में वृद्धि हो जाती है।
- भारत में महिलाओं की साक्षरता का प्रतिशत पुरूष की तुलना में कम है। शिक्षा के अभाव में वह तकनीकी ज्ञान एवं विपणन के सम्बन्ध में सजग नहीं रह पाती जिसका विपरीत प्रभाव उनके व्यवसाय के विकास पर पड़ता है।
- महिला उद्यमियों को सामान्यतः ऋण की प्राप्ति में अनेक कठिनाओं का सामना करना पड़ता है।

सुझाव :–

किसी भी योजना के सफल क्रियान्वयन एवं संचालन हेतु बेहतर प्रबंध का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रबंधकीय नियंत्रण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग मानव संसाधन होता है अपने शोध के दौरान मैने पाया कि शासन की योजनाओं को यथार्थ रूप में परिणित करने का दायित्व जिला पंचायत के सचिव की है जबकि सचिव के पास जिला पंचायत का अत्यधिक कार्य होता है। अतः शासन को यह पहल करना चाहिये कि महिला उद्यमिता ज्यादा से ज्यादा सशक्त हो, क्योकि महिला उद्यमिता के सशक्त होने से अपने आप ही कई समस्याये कम हो जायेगी।

- महिला उद्यमियों की समस्याओं के समाधान के लिये महिला सशक्तिकरण के विकास को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- महिला उद्यमिता को प्रोत्साहित करने के लिये औद्योगिक परिवेश को बदलना होगा। साथ ही महिला उद्यमियों को विभिन्न प्रकार की रियायतें देनी चाहिए तथा कुछ विशिष्ट उद्योगो को महिला उद्यमियों के लिये आरक्षित कर देना चाहिए।
- महिला उद्यमियों को कम ब्याज दर शाखा सुविधा उपलब्ध करायी जानी चाहिए।
- महिला उद्यमियों को श्रेष्ठ प्रबन्धक बनाने के लिये प्रबन्धकीय शिक्षा आवश्यक है। अतः महिलाओं के लिये प्रबंधकीय एवं व्यवसायिक शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष –

आज देश के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती बेरोजगारी की है। प्रत्येक पढ़ा लिखा युवक/युवतियों का उद्देश्य शिक्षा पश्चात रोजगार प्राप्त करना होता है। देश के प्रत्येक शिक्षित वर्ग को शासकीय नौकरी नहीं दी जा सकती है। इसका प्रमुख कारण है, शासकीय पदों का सीमित होना। ऐसी स्थिति में देश में स्वरोजगार के अवसर विकसित किये जा रहे है, जिससे देश के प्रत्येक नागरिक कों रोजगार प्राप्त हो सके तथा आत्मसम्मान

की जिन्दगी जी सके।

भारत का वास्तविक आर्थिक विकास ग्रामीण विकास पर आधारित है, स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय ग्रामों के सर्वागींण विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से अनेक विकास कार्यक्रम अपनाये गये है।

शासन द्वारा संचालित विभिन्न रोजगार योजनाओं में से राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम, मध्यप्रदेश व स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के अतिरिक्त स्वरोजगार प्रदाय करने वाली प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम, दीनदयाल रोजगार योजना, रानी दुर्गावती स्वरोजगार योजना, व मुख्य मंत्री पिछड़ा वर्ग स्वरोजगार योजना को शोध प्रबंध का विषय बनाया गया, और शोध प्रबंध को उक्त योजनान्तर्गत वित्तीय प्रबंध व रोजगार दो भागों में विभक्त कर परिणाम प्राप्त किया गया है।

हमारे देश की चार राज्यों की मुख्यमंत्री भी महिला हैं। व्यापार, व्यावसाय, बैंक आदि बड़ी–बड़ी संस्थाओं में महिलाओं की संख्या बढ़ती जा रही है। महिला उद्यमी बनकर आत्मनिर्भर एवं देश के विकास में पुरूषों के बराबर सहभागी बन रही है। महिला उद्यमियों के लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दृष्टिकोण से बड़े बदलाव की सोच रखनी चाहिए। उनको समानता का अधिकार केवल संविधान में न होकर व्यवहारिक भी होनी चाहिए तभी महिला उद्यमि स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकती है और अपने परिवार व देश के विकास में भागीदारी निभा सकती है।

(7) संदर्भ ग्रन्थ सूची –

- एस.के. मिश्रा बी.के. पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिसंग हाउस 2007
- सिंह बी. राजेन्द्र, ग्रामों का आर्थिक पुनरूधर, साहित्य सम्मेलन, प्रयोग 1930
- सिंह व निगम, भारतीय ग्राम्य अर्थशास्त्र, नवयुग साहित्य सदन, आगरा 1971–72
- दन्त सुन्दरय, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द्र एवं क्र., न्यू दिल्ली 2009
- शर्मा वीरेन्द्र प्रकाश, रिसर्च मेथडोलांजी, पंचशील प्रकाशन, जयपुर 2004
- आर.ए. दुबे, आर्थिक विकास एवं नियोजन, नेशनल पब्लिशर्स हाउस, नई दिल्ली।
- जैन, डॉ. एम.के., शोध विधियाँ, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2006
- डॉ. चतुर्भुज मामोरिया भारत का आर्थिक समस्याएँ, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूट्स 2007–08
- डॉ. अग्रवाल के.बी. – उद्यमिता विकास।
- प्रसाद भगवान – एन्टरप्राइजेज फार वूमेन सोशल वेलफेयर।
- डॉ0 तिवारी अंशुजा, डॉ. तिवारी संजय– महिला उद्यमिता, ओमेगा पब्लिकेन्स, दिल्ली।
- उद्यमिता समाचार पत्र।
- मध्यप्रदेश संदेश।
- जिला उद्योग केन्द्र द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट, रीवा (म.प्र.)
- दैनिक समाचार, दैनिक भास्कर, राज एक्सप्रेस, पत्रिका।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 117–122

1857 की क्रांति से 1947 तक : स्वतंत्रता संग्राम में मुसलमानों का योगदान

खालिक हुसैन
यूजीसी–नेट, इतिहास, शोध अध्येता,
इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।

सारांश :

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम एक साझा राष्ट्रीय संघर्ष था, जिसमें सभी धर्मों, जातियों और क्षेत्रों के लोगों ने भाग लिया। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति तक मुसलमानों ने राजनीतिक, सैन्य, वैचारिक, सामाजिक और क्रांतिकारी स्तर पर महत्वपूर्ण योगदान दिया। बहादुर शाह जफर, बेगम हजरत महल, मौलाना अबुल कलाम आजाद, खान अब्दुल गफ्फार खान, हकीम अजमल खां, डॉ० मुख्तार अहमद अंसारी, अशफाक उल्ला खां और अनेक नेताओं ने भारत की आजादी के लिए अपना जीवन समर्पित किया। यद्यपि इस काल में सांप्रदायिक राजनीति और विभाजन की घटनाएं भी हुई, फिर भी बड़ी संख्या में मुस्लिम नेताओं और स्वतंत्रता सेनानियों ने संयुक्त भारत और राष्ट्रीय एकता का समर्थन किया। इसलिए भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास मुसलमानों के योगदान के बिना अधूरा है। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में खिलाफत आंदोलन और असहयोग आंदोलन ने मुसलमानों की राजनीतिक भागीदारी को नई दिशा दी। मौलाना मोहम्मद अली जौहर और मौलाना शौकत अली ने खिलाफत आंदोलन का नेतृत्व किया तथा महात्मा गांधी के साथ मिलकर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध व्यापक जन आंदोलन खड़ा किया। इस आंदोलन ने हिंदू–मुस्लिम एकता को मजबूत किया और राष्ट्रीय आंदोलन को जनाधार प्रदान किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में मौलाना अबुल कलाम आजाद का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने राष्ट्रीय एकता, धर्मनिरपेक्षता और स्वतंत्रता के आदर्शों का समर्थन किया। वे संयुक्त भारत के पक्षधर थे और विभाजन का विरोध करते रहे। उनके विचारों और नेतृत्व ने स्वतंत्रता आंदोलन को वैचारिक मजबूती प्रदान की। क्रांतिकारी आंदोलन में भी मुसलमानों का योगदान महत्वपूर्ण था। अशफाक उल्ला खां ने काकोरी षड्यंत्र में भाग लेकर अंग्रेजी शासन को चुनौती दी। उन्होंने अपने साथी क्रांतिकारियों के साथ मिलकर देश की स्वतंत्रता के लिए प्राणों का बलिदान दिया। उनका बलिदान भारतीय युवाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत बना।

मुख्य शब्द : भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, राष्ट्रीय संघर्ष, मुस्लिम नेता, काकोरी षड्यंत्र, राष्ट्रीय एकता।

परिचर्चा :

1599 में अपनी स्थापना के कुछ वर्ष बाद ईस्ट इंडिया कंपनी 1608 में भारत आई, जब चौथे मुगल सम्राट नूरुद्दीन जहांगीर (1605–1627) देश में राज कर रहे थे। तब इस कंपनी का मूल उद्देश्य पूर्वी देशों के साथ व्यापारिक सम्बंध बनाना था। किंतु जल्दी ही उसके एक प्रारंभिक महत्वाकांक्षी प्रमुख, रॉबर्ट क्लाइव ने यह भांप लिया कि भारत से न केवल ढेरों ढेर धन कमाया जा सकता है बल्कि इसके पूरे परिक्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित करना भी संभव है। संसाधनों को हड़पने की यह लड़ाई ("War of acquisition") 1757 में प्लासी के युद्ध तक रुक रुक कर चलती रही जिसके बाद ब्रिटिश का पलड़ा निर्णायक रूप से भारी पड़ गया। किंतु प्लासी के युद्ध के बाद भी न तो इंग्लैंड में बैठे निर्देशकों ने और न भारत में उनके प्रतिनिधियों ने यह सपना सजोया कि उन्होंने एक महान साम्राज्य की नींव डाली दी है। इस युद्ध से उन्हें विभिन्न प्रकार की छूट के रूप में बहुत लाभ हुआ, जिनमें बाद में बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी भी शामिल हो गयी जो कि क्लाइव ने शाह आलम से 1765 में हड़प ली थी। ब्रिटिश को शीघ्र–शीध्र प्राप्त होने वाली यह विजयें उनके उस कूटनीतिक कौशल का एक प्रमाण हैं जिसके बल पर उन्होंने अपनी चालें चलीं। यह घटनाएं स्थानीय शासको के बीच एकता के अभाव को भी दर्शाती है जो उस समय एक विदेशी चुनौती का सामना करने के लिए बहुत आवश्यक थी। अंततः भारत के देसी राज्यों के सुनियोजित संयोजन से, विशेष रूप से डलहौजी के अंतर्गत, भारत का अधिकांश भाग ब्रिटिश उपनिवेश बन गया।

1857 का विद्रोह ब्रिटिश राज के विरुद्ध भारतीयों का एक प्रकोप था। तेजी से बढ़ती हुई ब्रिटिश उपनिवेशवादी सत्ता परंपरागत कुलीन वर्ग, विशेषकर मुसलमानों के लिए एक बड़ा खतरा थी। मुगल शासन ने निश्चित रूप से इसे सुरक्षा एवं स्थायित्व प्रदान किया था। अब यह संरक्षा जाती रही थी। आर्थिक एवं राजनीतिक क्षति बहुत व्यापक थी। ब्रिटिश शासन ने मुसलमानों को अधीनस्थ पदों पर रखा जबकि उच्च प्रशासनिक एवं राजनीतिक पद यूरोपवासियों के लिए आरक्षित थे। राजस्व एवं न्यायिक प्रशासन के नए ढंग अपनाकर इस व्यवस्था को स्थापित किया गया था। धनी हिंदू व्यापारियों ने मुसलमानों से भू–संपत्तियां खरीद ली थीं। बंगाल तथा बिहार में मुस्लिम जमींदारों की संख्या औरंगजेब के शासन काल में ही घट गई थी, 1793 के बाद उनकी संख्या और घटी। केवल अवध में ही 21,000 तालुकदार अपनी जगीरो के साथ से हाथ धो बैठे, उनमें से अधिकतर मुसलमान ही थे। ब्रिटिश शासन ने कृषक वर्ग को गरीबी एवं भूख तक पहुंचा दिया। 1857 से पहले, ब्रिटिश शासन की एक सदी की अवधि में ही बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा में किसानों की 40 बड़ी बगावतें हुईं। बलात् राजस्व वसूली के मुद्दे पर सिपाहियों की बगावत तथा किसानों की बेचौनी के बीच एक सीधा सम्बंध था। उदाहरणस्वरूप, दिल्ली के समीप रुहेलखंड में 1848–1856 की अवधि में 2,37,388 राजस्व वसूलयाबियां थीं। अवध में ब्रिटिश फौज के अंदर 75,000 सिपाही थे जिनमें से 14000 सिपाहियों ने अवध के सम्मिलन के बाद राजस्व वसूली की कठोर व्यवस्था की शिकायत की थी।

ब्रिटिश शासन में जमींदार उच्चवर्ग तथा नगरों में रहने वाले अभिजात वर्ग के लोग बुरी तरह प्रभावित हुए। परिणामस्वरुप, यह स्थिति कामगारों, कारीगरों तथा हस्तशिल्पियों की बदहाली का कारण बनी। व्यावसायिक कारीगर अपने संरक्षकों से वंचित हो गए। इंग्लैंड के मशीनी कपड़ा उद्योग से प्रतिस्पर्धा के चलते हथकरघा कपड़ा उद्योग से जुड़े बुनकरों में बेरोजगारी फैल गयी। यह पीड़ित बुनकर अधिकतर मुसलमान ही थे। ब्रिटिश

शासन ने समाज के हर वर्ग को हतोत्साहित किया। 1835 में शिक्षा के सरकारी फंड केवल अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा के लिए ही उपलब्ध थे। 1837 में फारसी भाषा को सरकारी भाषा के रूप में समाप्त कर दिया गया। इसका नतीजा यह हुआ कि पढ़े लिखे लोगों की एक बड़ी संख्या बेरोजगार हो गयी। इसके अतिरिक्त 1830 के दशक तक आते–आते ब्रिटिश मिशनरियां अधिकारियों की सहायता व समर्थन से बहुत अधिक सक्रिय तथा आक्रामक हो गई थीं। इन सबके चलते बड़े स्तर पर असंतोष व्याप्त हो गया और 1857 के प्रारंभ में यह असंतोष फूट पड़ा। ब्रिटिश शासन द्वारा अपनाई गई नीतियों से यह बिल्कुल स्पष्ट था कि स्थानीय जनता में असंतोष बढ़ेगा तथा इन उनमें नकारात्मक एवं विरोधपूर्ण प्रतिक्रिया होगी। अतः एक समय वह आया कि हिंदू तथा मुसलमान ब्रिटिश उपनिवेशवाद के बढ़ते हुए जुनून के विरुद्ध खड़े होने का अवसर देखने लगे। दिल्ली के लोगों ने या अफवाह फैला दी कि ईरान से हमला होने वाला है। बहुत से धार्मिक लोगों ने प्लासी के युद्ध के बाद एक सदी के अंदर अंदर ब्रिटिश शासन की समाप्ति की भविष्यवाणी कीं। दिल्ली में ऐसे बहुत से पोस्टर लगाए गए जिनमें मुसलमानों से अपना खोया हुआ शासन तथा मुगलों का गौरव पुनः प्राप्त करने के लिए ईरानी सेना की सहायता करने का आवाहन किया गया। यह सब कुछ ब्रिटिश सरकार तथा उसकी सेना को हतोत्साहित करने के लिए किया जा रहा था।

आखिरकार, 10 में 1857 को मेरठ में थर्ड कावलरी रेजीमेंट ने जिसमें बंगाल में भर्ती की गयी अन्य 23 रेजिमेंट्स की तरह सिपाहियों की बड़ी संख्या मुसलमान थी, विद्रोह का बिगुल बजा दिया। सिपाहियों ने कारतूस के कवच को मुंह से खोलने से मना कर दिया जो की कथित रूप से गाय तथा सूअर की चर्बी से बने हुए थे, जिसके कारण मुसलमानों तथा हिंदुओं का धर्म समान रूप से भ्रष्ट होता था। अतः उन्होंने ब्रिटिश की सत्ता के विरुद्ध बगावत कर दी। उनमें से 300 लोग बहादुरशाह की जय का नारा लगाते हुए दिल्ली की ओर चल दिए इस आशा में की शाही सेवा में उन्हें भर्ती कर लिया जाएगा। इसी के साथ उनमें यह भावना भी थी कि प्लासी की पराजय का बदला लेने के लिए इस तरह वह भारत में ब्रिटिश शासन की पकड़ को भी कुछ ढीला कर सकेंगे। दिल्ली सदियों से भारत की राजधानी चली आ रही थी। इसका महत्व किसी भी तरह कम नहीं हुआ था। यहां स्वयं मुगलों का शासन केंद्र (लाल किला) ही अपने 12000 निवासियों के साथ दिल्ली के अंदर एक शाही उपनगरी थी। फिर यह कि बगावत अथवा विद्रोह कहीं पर भी हो उसे एक केंद्र तथा नेतृत्व नहीं मिल सकता था। ब्रिटिश सरकार लाल किले की लाल किले को बीमारी के गढ़, विषैले कीड़ों के घर तथा एक ऐसे विशाल ठिकाने के रूप में देखती थी जहां मानव स्वभाव को खराब करने वाली हर पाश्विक भावना विकसित हुई। तथा, जैसा की फिचिट्ट का कहना है, असंतोष ने हर बुरी शक्ति को भड़काया। ऐसे बारूदी वातावरण में किसी की भी चिंगारी से धमाका होना ही था। साथ ही मेरठ से आने वाले विद्रोही गुटों द्वारा इसके फाटकों पर किए जाने वाले कोलाहल ने अनिवार्य अग्निकण प्रदान किया।

विद्रोहियों के गुट यमुना नदी पर नावों के पुल पार कर गए तथा लाल किले में प्रवेश करने के लिए उसकी दीवार के नीचे जमा हो गए। उनकी सारी बात–चीत लाल किले की गौरवशाली परंपरा तथा रीति–रिवाजों के बारे में थी और इस बात को लेकर थी कि उसे कैसे बहाल किया जाए। वे अंदाजे लगा रहे थे कि Grand Chamberlain कौन सी होगी, राजपूताना का कौन सा सरदार किन विभिन्न द्वारों की रक्षा करेगा, तथा उन 52 राजाओं में कौन–कौन होगा जो मिलकर मुगल सम्राट को सिंहासन पर बिठाएंगे। मेरठ में बगावत फूट पड़ने की

जानकारी दिल्ली में किसी को नहीं थी, यह सूचना एक आश्चर्जनक बात की तरह सम्राट बहादुर शाह जफर तथा ब्रिटिश अधिकारियों के पास आई। विद्रोही सिपाहियों को दिल्ली में प्रवेश का रास्ता दरियागंज में राजघाट पर मिला। राजमहल के सुरक्षा गार्डों ने कोई अवरोध उत्पन्न नहीं किया, तथा कमिश्नर फ्रेजर, मजिस्ट्रेट हटचिंसन एवं सम्राट के बॉडीगार्ड्स का इंचार्ज डगलस, जो किले पर मिले मार दिए गए। किंतु ज्वॉइंट मजिस्ट्रेट थ्योफिलस मिटकॉफ बच निकला। गलियां तथा रास्ते सब विद्रोहियों से भर गए। वे अंतिम मुगल महाराजा बहादुर शाह जफर के पास जा पहुंचे जो दीवान–ए–खास में मौजूद थे। यह 11 मई 1857, अर्थात 16 रमजान, सोमवार का दिन था। इन लोगों ने उनसे स्वतंत्रता के लिए संघर्ष की अगुवाई करने का अनुरोध किया। उन्होंने बादशाह से कहा कि "हम अंग्रेजों को मार कर मेरठ से भाग कर आए हैं क्योंकि वे हमसे उन कारतूसों के कवच दांतों से खोलने के लिए कहते थे जो गाय तथा सूअर की चर्बी से बने हैं हुए हैं। इस चीज ने मुसलमान तथा हिंदू दोनों का धर्म भ्रष्ट कर दिया है" जवाब में बादशाह ने उनसे साफ तौर पर कह दिया कि उनके पास सेना नहीं है, राजकोष खाली है, अतः उन लोगों को उनका वेतन नहीं मिलेगा।

उन सब ने एक साथ कहा कि "हम पूरे देश में अंग्रेजी सरकार के खजाने लूट लेंगे और आपके चरणों में लाकर डाल देंगे"। बहादुरशाह विद्रोहियों को कटिबद्धता के प्रति आश्वस्त हो गए तथा उनके नेतृत्व करना स्वीकार कर लिया। भारतीय देश प्रेमियों ने बहादुरशाह को शहंशाह–ए–हिंदुस्तान घोषित करते हुए एक प्रेरणा चिन्ह के रूप में उनका झंडा एक बार फिर लाल किले पर लहरा दिया। विद्रोहियों का नेतृत्व करने के लिए बहादुर शाह की स्वीकृति ने विद्रोह को पूरी प्रकृति को ही बदल डाला। ब्रिटिश इंडिया में इससे पहले कई बगावतें हो चुकी थीं, सबसे अधिक नाटकीय ढंग का एक उपद्रव 1806 में वैलोर में हुआ था, ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार को रोकने वाली और भी कई प्रतिक्रियात्मक घटनाएं हो चुकी थीं, किंतु विभिन्न बलो का इतना शक्तिशाली गठजोड़ ब्रिटिश साम्राज्य के प्रभुत्व को चुनौती देने के लिए इससे पहले कभी सामने नहीं आया था। विलियम डॉलरिम्पल आगे कहते हैं कि 1857 की सिपाहियों की बगावत किसी भी यूरोपीय साम्राज्य में अथवा दुनिया भर में कहीं पर भी होने वाले विद्रोह में सबसे बड़ा सशस्त्र विद्रोह था। इस दृष्टि से 1857 भारत तथा ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में एक बहुत रुचिपूर्ण, जटिल तथा केंद्रीय क्षण था। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की सैनिक शक्ति (सिपाही) टूट चुकी थी, लगभग 1,67,000 सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया था तथा वे राष्ट्रीय बलों में सम्मिलित हो गए थे। इनमें से कम से कम 1,00,000 सिपाही दिल्ली चले आए थे जो कि मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर के झंडे तले चल रहे राष्ट्रीय संघर्ष का मुख्यालय था। सारे देश में लोग प्रेरणा तथा मार्गदर्शन के लिए दिल्ली की ओर देखते थे। विद्रोही सिपाहियों के अतिरिक्त बलिदान की भावना से भरे स्वयंसेवी नागरिक भी पटना, ग्वालियर, टोंक तथा अन्य नगरों से दिल्ली के लिए निकल खड़े हुए थे। इन स्वयंसेवियों की बड़ी संख्या मदरसा रहीमिया, चांदनी चौक में ठहरी। स्वतंत्रता के लिए उनकी अभिलाषा इतनी प्रबल थी कि वे ब्रिटिश शासन के अधीन जीने की अपेक्षा युद्ध के मैदान में मर जाने को तैयार थे। मेरठ के सिपाहियों की बगावत ने जल्दी ही राष्ट्रीय उपद्रव का रूप ले लिया। अमरीका के समाचार पत्रों ने भी यह रिपोर्ट दी। न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून (अब न्यूयॉर्क हैरॉल्ड ट्रिब्यून) की भारतीय रिपोर्टों में यह रिपोर्ट दी गयी कि भारत का विद्रोह केवल सिपाहियों का विद्रोह नहीं था बल्कि इसमें भारतीय समाज का एक बड़ा वर्ग शामिल था। इस उपद्रव ने धर्मों तथा संप्रदायों को अपने पारस्परिक विद्वेष को छोड़कर अपने एक ही आकाओं के विरुद्ध एक दूसरे से मिला दिया है।

क्रांति के दौरान अनेक मुस्लिम सैनिकों, उलेमाओं, जमींदारों और आम नागरिकों ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष किया तथा अपने प्राणों का बलिदान दिया। इस आंदोलन की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसमें हिंदू और मुसलमान दोनों ने मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष किया, जिससे राष्ट्रीय एकता और साझा राष्ट्रवाद की भावना को बल मिला। यद्यपि 1857 की क्रांति अपने तात्कालिक उद्देश्य में सफल नहीं हो सकी, फिर भी इसने भारतीय जनता में स्वतंत्रता की चेतना को जागृत किया और भविष्य के राष्ट्रीय आंदोलन की नींव रखी।

1905 से 1947 का काल भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का निर्णायक चरण था। इस अवधि में भारतीय मुसलमानों ने विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक और क्रांतिकारी आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी निभाई। यद्यपि इस काल में सांप्रदायिक राजनीति और पृथक राष्ट्रवाद की प्रवृत्तियां भी उभरी, फिर भी बड़ी संख्या में मुस्लिम नेताओं, बुद्धिजीवियों, क्रांतिकारियों और आम जनता ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1905 में बंगाल विभाजन के विरोध में चले स्वदेशी आंदोलन में अनेक राष्ट्रवादी मुसलमान ने भाग लिया। उन्होंने अंग्रेजों की "फूट डालो और शासन करो" नीति का विरोध किया। इस दौर में राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ और हिंदू–मुस्लिम सहयोग को बल मिला। 1919 से 1924 के बीच खिलाफत आंदोलन भारतीय राजनीति का महत्वपूर्ण अध्याय बना। मौलाना मोहम्मद अली जौहर तथा मौलाना शौकत अली ने आंदोलन का नेतृत्व किया। महात्मा गांधी ने खिलाफत आंदोलन को असहयोग आंदोलन से जोड़कर राष्ट्रीय संघर्ष का रूप दिया। इससे लाखों मुसलमान बड़ी पहली बार बड़े पैमाने पर स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े और हिंदू–मुस्लिम एकता को नई शक्ति मिली। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में मौलाना अबुल कलाम आजाद की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। वे कांग्रेस के प्रमुख नेताओं में से थे और उन्होंने स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता तथा राष्ट्रीय एकता का समर्थन किया उन्होंने भारत के विभाजन का विरोध किया और संयुक्त भारतीय राष्ट्रवाद का पक्ष लिया। क्रांतिकारी आंदोलन में अशफाकउल्ला खान का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। काकोरी षड्यंत्र (1925) में उनकी भूमिका ने स्वतंत्रता आंदोलन की नई प्रेरणा दी। उन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया और हिंदू–मुस्लिम एकता को आदर्श प्रस्तुत किया। उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत में खान अब्दुल गफ्फार खान ने "खुदाई खिदमतगार" आंदोलन का नेतृत्व किया। वे अहिंसा के समर्थक थे और महात्मा गांधी के निकट सहयोगी रहे। उनके नेतृत्व में हजारों पठानों ने अंग्रेजी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष किया। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में भी अनेक मुसलमानों ने भाग लिया और जेल यात्राएं कीं। इसके अतिरिक्त शाह नवाज खान सहित अनेक मुस्लिम अधिकारियों और सैनिकों ने सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिंद फौज में शामिल होकर स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। हालांकि 1940 के बाद मुस्लिम लीग और मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में पाकिस्तान की मांग तेज हुई, फिर भी अनेक मुसलमान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और संयुक्त राष्ट्रवाद के साथ जुड़े रहे। मौलाना आजाद, खान अब्दुल गफ्फार खां और अन्य राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओं ने अखंड भारत की वकालत की।

निष्कर्ष :

1857 से 1947 तक के भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में मुसलमान का योगदान महत्वपूर्ण, व्यापक और बहुआयामी रहा। स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न चरणों में मुस्लिम नेताओं, क्रांतिकारियों, धार्मिक विद्वानों, किसानों, छात्रों और आम जनता ने सक्रिय भागीदारी निभाई। 1857 की क्रांति में बहादुर शाह जफर, बेगम हजरत महल,

मौलवी अहमदुल्लाह शाह तथा बखत खां जैसे नेताओं ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्व किया। इसके बाद खिलाफत आंदोलन, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन तथा क्रांतिकारी गतिविधियों में भी मुसलमान की उल्लेखनीय भागीदारी रही। मौलाना अबुल कलाम आजाद ने राष्ट्रीय एकता, धर्म निरपेक्षता और स्वतंत्रता के आदर्शों को मजबूत किया, जबकि अशफाकउल्ला खां ने अपने बलिदान से क्रांतिकारी आंदोलन को नई प्रेरणा दी। खान अब्दुल गफ्फार खां ने अहिंसा और राष्ट्रीय एकता के आधार पर स्वतंत्रता संघर्ष को जन–आंदोलन का रूप दिया। इसी प्रकार अनेक मुसलमानों ने सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिंद फौज में शामिल होकर देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। यद्यपि स्वतंत्रता आंदोलन के अंतिम चरण में सांप्रदायिक राजनीति और विभाजन की प्रवृत्तियां उभरी, फिर भी बड़ी संख्या में राष्ट्रवादी मुसलमान ने संयुक्त भारतीय राष्ट्रवाद का समर्थन किया। अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम केवल किसी एक समुदाय का संघर्ष नहीं था, बल्कि सभी भारतीयों का साझा राष्ट्रीय आंदोलन था। मुसलमानो के त्याग, बलिदान, नेतृत्व और संघर्ष ने भारत की स्वतंत्रता की नींव को सुदृढ़ किया। इसलिए भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में उनका योगदान सदैव सम्मान और गौरव के साथ स्मरण किया जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ :

1. सरकार, सुमित, बंगाल में स्वदेशी आंदोलन, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 1997.
2. शुक्ल, रामलखन, आधुनिक भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1987.
3. अहीर, राजीव, आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 1999.
4. कुमार, डॉ. विजय, बिहार विभूति, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना, 2012.
5. नारायण, प्रो. बलदेव, अगस्त क्रांति, बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना, 2007.
6. कुमार, अमित, स्वतंत्रता आंदोलन के विस्मृत सेनानी, शिवांक प्रकाशन, दिल्ली, 2023.
7. ग्रोवर, बी एल, आधुनिक भारत का इतिहास, एस चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 1982.
8. ताराचंद, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, 1965.
9. अहमद, इमत्याज, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष और बिहार, नेशनल पब्लिकेशन, पटना, 2023.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 123–126

अतिपिछड़ा वर्ग, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक राजनीति : लालू प्रसाद यादव युग का मूल्यांकन

आरती कुमारी साह
शोध निर्देशित, विश्वविद्यालय अर्थशास्त्र विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।
नवल कुमार
शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।

सारांश :

बिहार की राजनीति में 1990 का दशक सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन का युग माना जाता है। 1990 में लालू प्रसाद यादव के मुख्यमंत्री बनने के साथ सामाजिक न्याय की राजनीति को नई दिशा मिली। मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद पिछड़े, अति पिछड़े, दलित और अल्पसंख्यक वर्गों की राजनीतिक चेतना में वृद्धि हुई। लालू प्रसाद यादव ने स्वयं को वंचित वर्गों की आवाज के रूप में प्रस्तुत किया और सत्ता संरचना में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने का प्रयास किया। उनके नेतृत्व में सामाजिक न्याय, प्रतिनिधित्व और राजनीतिक सम्मान जैसे मुद्दे बिहार की राजनीति के केंद्र में आए। हालांकि, उनके शासनकाल का मूल्यांकन मिश्रित रहा है। समर्थकों के अनुसार लालू यादव ने लोकतंत्र का सामाजिक आधार विस्तृत किया और सत्ता पर पारंपरिक उच्च जातीय प्रभुत्व को चुनौती दी। दूसरी ओर आलोचकों का मत है कि विकास, प्रशासनिक दक्षता और कानून–व्यवस्था के क्षेत्र में अपेक्षित उपलब्धियां प्राप्त नहीं हो सकीं। इसलिए लालू युग को सामाजिक न्याय और प्रशासनिक चुनौतियों के द्वंद्व के रूप में देखा जाता है।

मुख्य शब्द : अति पिछड़ा वर्ग, सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक राजनीति, मंडल आयोग, लालू प्रसाद यादव, बिहार राजनीति।

परिचर्चा :

बिहार के राजनीति की धूरी बने लालू प्रसाद का जन्म गोपालगंज के फुलवरिया गांव में 11 जून 1948 को हुआ था। उनके पिता कुंदन राय एक मेहनती किसान थे और इनकी माता का नाम मरछिया देवी था। यह अपनी माता–पिता की छठवीं संतान थे। माता–पिता ने इनका लालन–पालन काफी कष्ट झेलते हुए बड़े स्नेह से किया था। गांव के स्कूल में पढ़ने के बाद पटना स्थित शेखपुरा के स्कूल में उनके शिक्षा दीक्षा हुई। गांव में खड़िया–पट्टी से शिक्षा शुरू करने वाले लालू प्रसाद पटना शहर स्थित शेखपुरा के स्कूल में कलम–दवात से पढ़ने लगे। लालू प्रसाद ने 1965 ई० में मैट्रिक की परीक्षा पास की। 1969 में पटना विश्वविद्यालय में स्नातक परीक्षा

पास की। लालू प्रसाद का विवाह 1973 ई० में राबड़ी देवी से हुआ और 1976 ई० में उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से विधि स्नातक की डिग्री ली। लालू प्रसाद की राजनीतिक सक्रियता साठ के दशक में शुरू हो चुकी थी। वह 1967 से 1969 तक पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ के महासचिव रहे। 1973 ई० में वे पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ के अध्यक्ष बने और 1974 ई० में जयप्रकाश नारायण के आंदोलन में कूद पड़े। इस बीच 1970–72 के दौरान उन्होंने पटना के पशु चिकित्सा विद्यालय में सहायक की नौकरी भी की लेकिन मन नहीं लगा और राजनीतिक में फिर सक्रिय हुए। 1977 में वे छपरा से लोकसभा के लिए चुने गये और 18 जनवरी 1989 में कर्पूरी ठाकुर के असामायिक निधन के बाद बिहार विधानसभा के विपक्ष नेता बने। 10 मार्च 1990 को वे बिहार के मुख्यमंत्री बने।

लालू प्रसाद यादव का व्यक्तित्व बचपन से ही अलग तरह का था। लोक कला और लोकगीतों के प्रति शुरू से ही रूचि था। इसलिए तो वह मुख्यमंत्रित्व काल में अपने सरकारी निवास 1 अणे मार्ग में चौता आदि लोकगीतों का अक्षसर आनंद लिया करते थे। जो लालू बचपन में अपने गांव की अगड़ी जातियों के बड़े लोगों के व्यंग्य का शिकार होते रहे थे, उन्हीं लालू ने मुख्यमंत्री बनने के बाद समूचे बिहार के अगड़ों को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया। लालू प्रसाद ने अपने अंदर बिहारी किस्म के गुणों को जमकर विकसित किया और इस मामले में किसी भी बिहार नेता से आगे निकल गये। लालू प्रसाद के चलने–फिरने, उठने–बैठने की शैली में जो दर्प है वह उनके खास बिहारीपन से ही निकला है। खासकर सामाजिक व्यवहार, बातचीत के लहजे जैसे इनकी बिहारी शैली का महानगरों में मजाक उड़ाया गया उसे लालू प्रसाद ने पूरी दबंगई से अपना कर जताया कि इसमें उन्हें कोई शर्म नहीं महसूस होती है। उन्होंने अंग्रेजी भी उसी लहजे में बोली और उसमें भोजपुरी के भी शब्दों का प्रयोग किया। इसी शैली ने लालू प्रसाद को बिहार वालों से जोड़ा। लालू प्रसाद को छात्र जीवन में पहली महत्वपूर्ण भूमिका जयप्रकाश नारायण आंदोलन में मिली। जयप्रकाश नारायण के साथ जिन नौजवान नेताओं ने दस्ता अग्रणी भूमिका में था उन में लालू प्रसाद भी शामिल थे।

जयप्रकाश नारायण के आंदोलन के एक प्रमुख युवा नेता अनिल प्रकाश के मुताबिक बिहार की जातीय राजनीति में फॉरवार्ड–बैकवर्ड की खेमेबंदी उस समय भी हावी थी और जेपी पर इसको लेकर छींटाकशी की कोशिश भी हुई थी जिसकी वजह से लालू प्रसाद समेत पिछड़े वर्ग के कई युवा नेताओं को आगे किया गया था। हालांकि उस समय भी लालू प्रसाद का कुछ विरोध था जिसकी वजह से आंदोलन को संचालित करने वाली सर्वोच्च समिति के वे संयोजक नहीं बनाये जा सके और उन्हें सिर्फ सदस्य बनकर संतोष करना पड़ा। उस समय के प्रमुख नौजवान नेताओं में लालू प्रसाद यादव, नीतीश कुमार, शिवानंद तिवारी, विक्रम कुंवर, वशिष्ठ नारायण सिंह, नरेंद्र सिंह, गोपाल शरण सिंह, जाबिर हुसैन, रामचंद्र राय, विजय कृष्ण आदि शामिल थे।

1977 ई० में लालू प्रसाद लोकसभा में पहली बार पहुंचे। तब उनकी राष्ट्रीय स्तर पर कोई पहचान नहीं थी। हालांकि कुलदीप नैयर ने बिहार के नौजवान सांसदों पर लिखी श्रृंखला में कहा था, "लाल यादव के उदय से पाखंडियों और सामंतों की हवेलियों में दरार आने लगी है। जनसंस्कृति की सोई हुई चेतना वापस हो रही है"। लेकिन लालू प्रसाद को बड़ी जमीन फरवरी 1988 के बाद कर्पूरी ठाकुर के निधन के बाद मिली जब बिहार में समाजवादी आंदोलन अपने को अनाथ महसूस करने लगा। साठ के दशक के बाद बिहार में दलित, पिछली जातियों और मुसलमानों को व्यापक स्तर पर एकजुट कर एकसूत्र में बांधने का श्रेय कर्पूरी ठाकुर को जाता है।

उनके निधन के बाद समाजवादी आंदोलन को बिखरने से रोकने के लिए पिछड़ी जाति वालों को नेतृत्व देने की बात उठी। उदयन शर्मा के मुताबिक, "कर्पूरी जी के अंतिम संस्कार के बाद जगदानंद सिंह के घर जगदानंद, नीतीश कुमार, रामचंद्र राय और मोहन प्रकाश मिले। नीतीश का मशविरा था कि इस आंदोलन को एक रखने के लिए बिहार लोकदल का लीडर किसी यादव को बनाना चाहिए"। इसी के बाद लालू प्रसाद के नाम पर विचार हुआ और वे बिहार विधानसभा में विपक्ष के नेता बने। फिर मार्च 1990 में उन्हें मुख्यमंत्री बनने का मौका मिला।

मुख्यमंत्री बनने के बाद लालू ने एक नये अंदाज में नया राजनीतिक जीवन शुरू किया। लालू यादव के पास सत्ता थी और तेवर था खलिस छात्र नेताओं वाला। खुद लालू प्रसाद के शब्दों में, "मुझे ऐसा लग रहा मानो अब भी मैं एक छात्र नेता की तरह भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ लड़ रहा हूं"। और लड़ा भी। लालू प्रसाद ने शुरुआती दौर में बतौर मुख्यमंत्री बेहतर ढंग से काम किया और विश्वनाथ प्रताप सिंह ने मंडल आयोग की सिफारिशों लागू कर लालू प्रसाद को जनाधार बनाने का सुनहरा मौका दिया। लालू यादव के राजनीतिक जीवन में यह एक निर्णायक मोड़ था जिसका उन्होंने भरपूर फायदा उठाया। अगड़ी जातियों के मंडल के प्रति बढ़ते विरोध को उन्होंने पिछड़ी जातियों को एकजुट कर आक्रामक तेवर से लैस कर दिया। इसमें मीडिया की कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण भूमिका रही जिसने मंडल विरोध की तीव्रता को और तीव्र किया और लालू प्रसाद ने इस समूचे विरोध को सामंती और सवर्ण जातियों की साजिश बताते हुए गांव–गांव तक अपनी विशेष शैली में एकजुट होने का संदेश दिया। बिहार में वैसे भी राजपूत, भूमिहार, कायस्थ और ब्राह्मण एक तरफ रहे हैं और बाकी पिछड़ी जातियों एक तरफ। यह सभी बड़ी जातियां कांग्रेस और भाजपा की तरफ गोलबंद हुई और प्रतिक्रिया में लालू प्रसाद के पक्ष में पिछड़ी जातियों का जोरदार ध्रुवीकरण हुआ। पिछड़ी जातियों में लालू का जनाधार जहां मंडल से बना, वहीं सांप्रदायिकता ताकतों से निपटने की लालू प्रसाद की दृढ़ इच्छा शक्ति और आक्रामक तेवर ने मुसलमानों को लालू प्रसाद के पक्ष में खड़ा कर दिया। समस्तीपुर में आडवाणी की रथयात्रा को रोककर और उन्हें गिरफ्तार कर लालू प्रसाद ने अपने धर्मनिरपेक्ष छवि को मजबूत किया। रथयात्रा रोकने से लालू प्रसाद को जबरदस्त समर्थन मिला। इन दोनों घटनाओं से लालू प्रसाद को एक नया व्यक्तित्व बना जिसे उन्होंने अपनी चुटीली व मुहावरेदार भाषा और बयानों से और उभारा। भाजपा के पूरे राजनैतिक चरित्र को उन्होंने एक मुहावरे "मुंह में राम, बगल में छुरी" कहकर परिभाषित किया। इस पूरे दौर में लालू प्रसाद ने भाषा के मामले में लोहिया को आदर्श बनाया और जनभाषा मिश्रित हिंदी का इस्तेमाल अपनी विशेष शैली में किया। उनकी भाषा शैली पर 'अमेरिकी टाइम्स' की संपादकीय टिप्पणी थी, कि 'उन्होंने भाषा को आम आदमी के भीतर से निकाला है'।

इस तरह छपरा लोकसभा से महज 29 साल की आयु में 1977 ई० में पहली बार संसद पहुंचे लालू यादव ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। 1980 से 89, 95 से 98 तथा 90 से 95 तक क्रमशः बिहार विधानसभा और बिहार विधान परिषद के सदस्य रहे। वहीं 1990 से 1997 तक लगातार बिहार के चर्चित मुख्यमंत्री रहे। 1996 और 1998 में दूसरी और तीसरी बार व 2004 में चौथी बार मधेपुरा और छपरा संसदीय क्षेत्र से संसद पहुंचे। 2009 ई० में ये पुनः छपरा, संसदीय क्षेत्र से लोकसभा पहुंचे। इस दरम्यान 2004 में केंद्रीय केंद्रीय रेलवे मंत्री बनने के बाद रेलवे को रिकॉर्ड मुनाफा 70 हजार करोड़ दिलाने के बाद 'मैनेजमेंट गुरु' का नया नाम मिला। रेलवे में 'गरीब रथ' गाड़ी का इजाद कर और रेलवे के इतिहास में गरीब हितैषी रेलमंत्री बन बैठे। अपने कार्यकाल में उन्होंने भारत में 15 गरीब रथ का परिचालन करवाया है। इस तरह लालू का सितारा अभी भी बुलंद है।

पिछड़ों, दलितों और अल्पसंख्यकों के हमदर्द बने लालू प्रसाद आज भी सिर्फ बिहार ही नहीं पूरे राष्ट्रीय राजनीति के धुरी बन बैठे हैं।

अति पिछड़ा वर्ग (EBC) के संदर्भ में लालू युग का महत्व इस बात में निहित है कि इस दौर ने सामाजिक न्याय की बहस को जन–राजनीति का केंद्रीय विषय बनाया। हालांकि आलोचकों का मत है कि सामाजिक सशक्तिकरण के साथ–साथ प्रशासनिक दक्षता, आर्थिक विकास, आधारभूत संरचना तथा कानून–व्यवस्था के क्षेत्र में अपेक्षित प्रगति नहीं हो सकी। इसलिए लालू युग का मूल्यांकन सामाजिक परिवर्तन और विकासात्मक चुनौतियों – दोनों दृष्टियों से किया जाता है।

निष्कर्ष :

लालू प्रसाद यादव का दौर बिहार में सामाजिक न्याय की राजनीति का निर्णायक चरण माना जाता है। इस युग ने अति पिछड़े वर्गों को राजनीतिक पहचान, प्रतिनिधित्व और सम्मान प्रदान किया, जिससे लोकतंत्र अधिक सहभागी बना। वहीं विकास और प्रशासनिक प्रदर्शन को लेकर आलोचनाएं भी बनी रहीं। इसलिए इतिहासकार और राजनीतिक विश्लेषक इसे "सामाजिक क्रांति तथा विकासात्मक चुनौतियों के मिश्रित दौर" के रूप में देखते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. Thakur, Sankarshan. Subaltern Sahib : Bihar and the Making of Laloo Yadav. New Delhi: Harper Collins Publishers India 2007.
2. Thakur, Sankarshan. The Making of Laloo Yadav : The Unmaking of Bihar, New Delhi: Harper Collins India, 2000.
3. Neelkamal, Neelam. Laloo Prasad Yadav : A Charismatic Leader. New Delhi: Har-Anand Publication, 1996.
4. Kumar, Ambarish.लालू प्रसाद यादव. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1997.
5. Jha, Neena. Lalu Prasad: India's Miracle. Bismillah Foundation, 1998.
6. Yadav, Lalu Prasad. Gopalganj to Raisina : My Political Journey. New Delhi : Rupa Publications, 2019.
7. कुमार, डॉ. सन्तोष, समाजवाद के विकास में बिहारी नायकों की भूमिका, जानकी प्रकाशन, पटना, 2019.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 127–131

आधुनिक नारीवाद और ताराबाई शिन्दे का वैचारिक दर्शन : एक अवलोकन

डॉ. अरूण कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान)
राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी।

शोध सारांश :–

प्रस्तुत शोध पत्र नारीवादी अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में ताराबाई शिन्दे के राजनीतिक विचारों का विश्लेषण करता है। प्रारम्भिक भारतीय नारीवादियों में से एक ताराबाई शिन्दे ने 19वीं सदी के भारतीय समाज में गहरी जड़े जमा चुकी पितृसत्तात्मक मान्यताओं और सामाजिक अन्याय को चुनौती दी। शिन्दे का चिन्तन अपने समकालीन पुरूष समाज सुधारकों के उदारवादी एवं उपयोगितावादी सुधारों तक ही सीमित नही था बल्कि उन्होंने लैंगिक भूमिकाओं, जातिगत उत्पीड़न तथा ब्राह्मणवादी पितृसत्ता पर सीधा और संरचनात्मक प्रहार किया। उन्होंने अपने वैचारिक चिन्तन के माध्यम से न केवल पुरूष वर्चस्व को चुनौती दी अपितु लैंगिक भेदभाव कायम रखने में धार्मिक रूढ़िवादिता और जातिगत पदानुक्रम की मिलीभगत पर भी सीधा आक्षेप किया। इसके साथ ही शिन्दे ने महिला शिक्षा को सशक्तिकरण के एक परिवर्तनकारी साधन के रूप में विश्लेषित किया जो इस बात पर बल देता है कि बौद्धिक विकास और जागरूकता सामाजिक प्रगति और समानता के लिए आवश्यक थे। शिन्दे के विचार भारत में बाद के नारीवादी विशेषकर दलित नारीवादी सिद्धान्तो को समझने तथा सामाजिक सुधार आन्दोलनों की नींव रखने के लिए एक अनिवार्य वैचारिक उपकरण है।

मुख्य शब्द :– नारीवादी विचार, औपनिवेशिक भारत, लैंगिक समानता, शैक्षिक सुधार, महिला अधिकार।

प्रस्तावना :–

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति दीर्घावधि तक पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था से प्रभावित रही है। यघपि भारतीय संस्कृति में महिलाओं को शक्ति, लक्ष्मी और सरस्वती के रूप में सम्मानित किया गया, परन्तु व्यवहारिक जीवन में उसे शिक्षा, सम्पत्ति, निर्णय प्रक्रिया तथा सार्वजनिक जीवन में समान अधिकारों से वंचित रखा गया। सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं ने महिलाओं के जीवन को अनेक प्रकार के बंधनो में बांध दिया जिसके फलस्वरूप महिलाओं की स्वतन्त्र पहचान और राजनीतिक भागीदारी सीमित रही।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में सामाजिक सुधार आन्दोलनों की शुरूआत हुयी। एक ओर जहाँ इस दौर में मध्यकालीन जड़ता को चुनौती दी जा रही थी वहीं दूसरी ओर आधुनिकता के नये स्वर उभर रहे थे। लेकिन

इस समय की एक विडम्बना यह थी कि स्त्रियों की शिक्षा, विधवा–विवाह, बाल–विवाह उन्मूलन तथा जातिगता भेदभाव जैसे प्रश्नों पर जितने भी विमर्श हो रहे थे, उनके केन्द्र में पुरूष सुधारक थे। चाहे राजा राममोहन राय द्वारा सती प्रथा का विरोध हो, ईश्वरचन्द विद्यासागर द्वारा विधवा–विवाह का समर्थन हो या फिर ज्योतिराव फुले द्वारा स्त्री शिक्षा की पहल – ये सभी प्रयास अत्यन्त महत्वपूर्ण थे, किन्तु इनमें स्त्री एक विषय थी, जिसके लिए सुधार किये जा रहे थे। इस परिदृश्य में ताराबाई शिन्दे का उदय एक ऐसी क्रान्तिकारी घटना थी जिसने स्त्री को विषय से हटाकर कर्ता के रूप में स्थापित किया। उन्होंने पहली बार यह सिद्ध किया कि महिला स्वयं अपनी वकील हो सकती है तथा अपनी पीड़ा को अपनी भाषा में व्यक्त कर सकती है।

ताराबाई शिन्दे का वैचारिक दर्शन केवल सुधारवाद तक सीमित नही था, वह आधुनिक नारीवाद की उस उग्र और स्पष्टवादी धारा का प्रतिनिधित्व करता है जिसे पश्चिमी जगत में बहुत बाद में 'रैडिकल फेमिनिज्म' के नाम से जाना गया। एक ओर जहाँ तत्कालीन समाज सुधारक 'सहूलियत' और 'मर्यादा' के अन्दर रहकर परिवर्तन की बात कर रहे थे, वही ताराबाई ने सीधे तौर पर पितृसत्ता की जड़ो पर प्रहार किया। वह किसी भी प्रकार के समझौते की पक्षधर नही थी। उन्होंने स्पष्ट रूप से पितृसत्तात्मक पाखण्ड, धार्मिक कट्टरता और पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे मानदण्डों को अपने वैचारिक दर्शन का आधार बनाया। ताराबाई का जन्म ऐसे दशक में हुआ, जब औपनिवेशिक भारत अपनी पहचान और परम्पराओं के मध्य संघर्ष कर रहा था। एक ओर ब्रिटिश कानून और आधुनिक शिक्षा व्यवस्था थी, तो दूसरी ओर सनातनी हिन्दू धर्म की कठोर वर्णाश्रम व्यवस्था। ताराबाई ने सत्यशोधक समाज के मूल्यों को आत्मसात किया था, जिसने उन्हें जाति और लिंग के बीच के गहरे सम्बन्ध को समझने की दृष्टि दी। उन्होंने बताया कि स्त्री का दमन केवल जैविक नहीं बल्कि एक निर्मित सामाजिक एवं धार्मिक संरचना है।

आधुनिक नारीवाद के सन्दर्भ में ताराबाई शिन्दे के विचारों को समझना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इन्होंने निजी ही राजनीतिक है के सिद्धान्त को अनजाने में ही सही लेकिन बहुत पहले विश्लेषित कर दिया था। जब वे विधवाओं की समस्याओं, उनके साथ होने वाले यौन शोषण और समाज की क्रूर प्रतिक्रिया पर विचार व्यक्त करती है तो वह केवल एक सामाजिक बुराई का वर्णन नही कर रही होती है बल्कि वे उस 'शक्ति संरचना' का विश्लेषण कर रही होती है जो पुरूष की 'शासक' और महिला को 'शासित' बनाती है। ताराबाई शिन्दे ने स्त्री–पुरूष के मध्य नैतिकता के मापदण्डो की तुलना की। उन्होंने समाज से यह पूछा कि यदि स्त्री का सतीत्व भंग होना पाप है तो पुरूष का अनैतिक होना वीरता का लक्षण क्यों माना जाता है। उन्होंने देवताओं और पौराणिक चरित्रों के उदाहरणों के माध्यम से यह बताया कि साहित्य और धर्म ने पुरूषों के व्याभिचार को कैसे महिमा–मण्डित किया और महिलाओं को तुच्छ साबित करने के लिए कैसे कथाओं का ताना–बाना बुना। उनका यह दृष्टिकोण उन्हें आधुनिक नारीवाद की ऐसी अग्रदूत बनाता है जो केवल सहानुभूति की मांग नही करती बल्कि बराबरी और न्याय का दावा ठोकती है।

आज जब हम 'बहुआयामी नारीवाद' की बात करते है तो ताराबाई शिन्दे के विचार अधिक प्रमाणिक प्रतीत होते है क्योंकि उन्होंने न केवल लिंग आधारित भेदभाव को पहचाना बल्कि यह भी बताया कि कैसे जाति व्यवस्था और ब्राह्मणवादी पितृसत्ता मिलकर महिलाओं के जीवन को नियन्त्रित करती है। उनकी आलोचना के केन्द्र में सिर्फ बाह्मण समाज ही नहीं अपितु समस्त हिन्दू सामाजिक व्यवस्था थी। उन्होंने घर के अन्दर होने वाली हिंसा

और बाहर समाज में होने वाले अपमान को एक ही सिक्के के दो पहलू बताया। ताराबाई शिन्दे का वैचारिक दर्शन एक 'जीवन्त प्रतिरोध' है। उनके विचार हमें सिखाते है कि नारीवाद केवल अधिकारों की लड़ाई नहीं अपितु यह उस सोच और व्यक्तित्व को बदलने की लड़ाई है जो स्त्री को एक मनुष्य के रूप में स्वीकार करने से कतराती है। ताराबाई शिन्दे ने महिलाओं के प्रति समाज की दोहरी नैतिकता को चुनौती दी और विद्यमान समाजिक संरचना की आलोचना करते हुये समानता और न्याय का वैचारिक आधार प्रस्तुत किया।

आधुनिक नारीवाद एक ऐसी विचारधारा है, जो महिलाओं को समान अधिकार, समान अवसर तथा स्वतन्त्र जीवन का अधिकार प्रदान करने की वकालत करती है। इसका उद्देश्य महिलाओं को सिर्फ पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त कराना नही अपितु समाज की उन संरचनाओं को परिवर्ति करना भी है जो महिलाओं के शोषण का कारण बनती है। आधुनिक नारीवाद, लैगिक समानता की स्थापना, शिक्षा एवं रोजगार में समान अवसर, राजनीतिक प्रतिनिधित्व में वृद्धि महिलाओं की शारीरिक एवं मानसिक स्वतन्त्रता प्रदान करने, अर्थिक स्वावलम्बन तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं की सहभागिता सुनिश्चित करने वाले उद्देश्यों को लेकर चलता है। ताराबाई का सम्पूर्ण वैचारिक दर्शन सामाजिक न्याय, समानता और तार्किकता पर आधारित है और वह उन समस्त उद्देश्यों को पूर्ण करता है जो आधुनिक नारीवाद के आयाम है।

ताराबाई शिन्दे ने समाज में व्याप्त उन सम्पूर्ण कारकों की आलोचना की जिनसे महिलाओं की स्वतन्त्रता बाधित होती है। उसने पितृसत्तात्मक व्यवस्था की आलोचना करते हऐ कहा कि समाज के अधिकांश नियम पुरूषों द्वारा बनाये गये है और उनका उदेश्य पुरूषों के प्रभुत्व को बनाये रखना है। समाज ने महिलाओ के लिए कठोर नियमों का प्रतिपादन किया जबकि पुरूषों को प्रत्येक प्रकार की स्वतन्त्रता प्रदान की। उन्होंने कहा कि समाज महिलाओं के छोटे से छोटे दोष पर कठोर दण्ड देता है जबकि पुरूषों के बड़े अपराधों को भी आसानी से क्षमा कर देता है। उनके अनुसार यह दोहरा नैतिक दृष्टिकोण अन्यायपूर्ण है। उन्होंने कहा कि पितृसत्तात्मक समाज महिलाओं की स्वतन्त्रता व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार नहीं करता है।

ताराबाई ने उन धार्मिक व्याख्याओं का विरोध किया जो महिलाओं को पुरूषों से निम्न सिद्ध करती है। उनका विचार था कि धर्म का उपयोग महिलाओं के शोषण के लिए नहीं होना चाहिए। उन्होंने माना कि धर्म का वास्तविक उद्देश्य न्याय, समानता और मानव कल्याण है न कि महिलाओं पर नियन्त्रण स्थापित करना। उन्होंने यह प्रश्न उठाया कि यदि स्त्री और पुरूष दोनों ईश्वर की सन्तान है तो धार्मिक नियम एवं सामाजिक आचरण में दोनों के लिए अलग–अलग मानदण्ड क्यों बनाये गये है। ताराबाई ने तर्क, विवेक और न्याय के आधार पर धार्मिक मान्यताओं की पुर्नव्याख्या की आवश्यकता पर बल दिया तथा ऐसी सामाजिक व्यवस्था का समर्थन किया जिसमें महिलाओं को भी समान, अधिकार और गरिमा प्राप्त हो।

ताराबाई शिन्दे का मानना था कि स्त्री और पुरूष दोनों समान रूप से मानव है, अतः दोनों को समान अधिकार, सम्मान और अवसर मिलने चाहिए। अपनी प्रसिद्ध रचना 'स्त्री–पुरूष तुलना' में उन्होंने समाज द्वारा महिलाओं के साथ किये जाने वाले भेदभाव का विरोध किया तथा शिक्षा, स्वतन्त्रता, न्याय और सामाजिक सम्मान पर पुरूषों के सापेक्ष महिलाओं के अधिकार की वकालत की। वे ऐसी सामाजिक व्यवस्था की पक्षधर थी जिसमें लैंगिक भेदभाव को महत्व न देकर समानता और न्याय को सर्वोच्च मूल्य स्वीकार करे।

ताराबाई शिन्दे के अनुसार शिक्षा महिलाओं के सामजिक, बौद्धिक और नैतिक विकास का महत्वपूर्ण

प्रभावी साधन है। उनका मानना था कि अशिक्षा के कारण महिलायें अपने अधिकारों, कर्तव्यों और सामाजिक शोषण के स्वरूप को समझ नहीं पाती है। शिक्षा महिलाओं में आत्मविश्वास, विवेक और स्वतन्त्र निर्णय लेने की क्षमता विकसित करती है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि यदि महिलाओं को पुरूषों के समान शिक्षा के अवसर दिये जाये तो वे परिवार, समाज व राष्ट्र के विकास में समान रूप से योगदान दे सकती है। इस प्रकार ताराबाई ने शिक्षा को महिला सशक्तिकरण, सामाजिक समानता और पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति का सबसे सशक्त माध्यम स्वीकार किया।

इसी तरह उन्होंने नैतिकता की समान कसौटी वाली व्यवस्था को विकसित करने के मन्तत्य पर बल दिया। उनका मानना था कि नैतिकता के नियम महिला और पुरूष दोनों पर समान रूप से लागू होने चाहिए। उन्होंने उस अनैतिक दोहरी नैतिक व्यवस्था की आलोचना की जिसमें महिलाओं को छोटे से दोष पर कठोर दण्ड का प्रावधान होता था जबकि पुरूषों के गम्भीर अपराधों को समाज अनदेखा कर देता था। उनका मानना था कि यह भेदभाव न्याय और मानवता के विरूद्ध है। उन्होनें तर्क दिया कि यदि समाज आचारण, समान उत्तरदायित्व और समान दण्ड के सिद्धान्त को स्त्री और पुरूष दोनों पर समान रूप से लागू करना आवश्यक है तभी वास्तविक सामाजिक न्याय और लैंगिक समानता स्थापित होगी।

ताराबाई शिन्दे के वैचारिक दर्शन और आधुनिक नारीवाद में महत्वपूर्ण समानतायें है। दोनों ही वैचारिक संकल्पनाओं का उद्देश्य महिलाओं को समान अधिकार, सम्मान और स्वतन्त्रता दिलाना है। दोनों ही विचारधाराये इस तथ्य पर बलदेती है कि स्त्री और पुरूष दोनों ही समाज के महत्वपूर्ण अंग है और दोनों के बीच किसी भी प्रकार का लैंगिक भेदभाव न्याय संगत नहीं है। दोनों ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था, लैंगिक भेदभाव तथा महिलाओं के प्रति अपनाये जाने वाले दोहरे नैतिक मानदण्डों का विरोध करते है। दोनों महिला शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता, समान अवसर स्वतन्त्र निर्णय लेने के अधिकार और सामाजिक सम्मान को महिला सशक्तिकरण का आधार स्वीकार करते है। ताराबाई शिन्दे ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'स्त्री–पुरूष तुलना' में जिन विचारों को प्रस्तुत किया वे आधुनिक नारीवाद के मूल सिद्धान्तों से मेंल खाते है। दोनों ही विचारधारायें महिलाओं की गरिमा, आत्मसम्मान तथा निर्णय निर्माण की प्रक्रियाओं में उनकी सक्रिय भागीदारी का समर्थन करते हुये, एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना पर बल देती है जिसमें स्त्री और पुरूष समान अधिकारों और अवसरों के साथ सम्मानपूर्ण जीवन निर्वाह कर सकें। इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिक नारीवाद और परिस्थितियों का अन्तर होने के बावजूद समानता, स्वतन्त्रता, न्याय और मानव गरिमा जैसे मूलभूत सिद्धान्त समान हैं। इसी कारण ताराबाई शिन्दे को भारतीय नारीवादी चिन्तन की अग्रदूत माना जाता है और उनका वैचारिक दर्शन नारीवादी चिन्तन की महत्वपूर्ण आधारशिला है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि आधुनिक नारीवाद और ताराबाई शिन्दे का वैचारिक दर्शन समानता, न्याय, स्वतन्त्रता तथा मानव गरिमा के संयुक्त सिद्धान्तों पर आधारित है। ताराबाई शिन्दे ने भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था, लैंगिक भेदभाव, धार्मिक रूढ़ियों की निर्भीक आलोचना की। उन्होंने बताया कि स्त्री–पुरूष दोनों समान रूप से मानव है और दोनों को समान अधिकार, शिक्षा, सम्मान तथा अवसर प्राप्त होने चाहिए। आधुनिक नारीवाद भी इन्ही मूल्यों को अग्रतर करते हुये महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक

और सांस्कृतिक भागीदारी को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करता है। यद्यपि आधुनिक नारीवाद का क्षेत्र अधिक व्यापक है और सन्दर्भ भी सम्मिलित है, फिर भी इसके मूल सिद्धान्त ताराबाई शिन्दे के विचारो से गहराई से जुड़े हुये दिखाई देते है। अतः कहा जा सकता है कि ताराबाई शिन्दे का वैचारिक दर्शन आज भी समकालीन समाज में लैंगिक न्याय, महिला सुरक्षा तथा लोकतान्त्रिक मूल्यों की स्थापना के लिए अत्यन्त प्रासंगिक और प्रेरणादायक है। उनके विचार न केवल भारतीय समाज के लिए अपितु समतामूलक और न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के लिए भी महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. शिन्दे, ताराबाई (2002) – 'स्त्री–पुरूष तुलना' संवाद प्रकाशन, नागपुर।
2. मालती, डॉ॰ के॰ एम॰ (2016) – 'स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य' नालन्दा प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. जोशी, पी॰ (2019) – ताराबाई शिन्दे और पितृसत्ता की आलोचना आर्थिक और राजनीतिक सप्ताहिक पत्रिका, अंक 54 भाग–12
4. जोशी, गोपा (2018) – 'भारत में स्त्री असमानता' हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली।
5. प्रसाद, एस॰ (2017) – 'ताराबाई शिन्दे : जाति और पितृसत्ता की बाधाओं से मुक्ति अन्तर्राष्ट्रीय महिला अध्ययन पत्रिका अंक 18 भाग – 1
6. कुमार, राधा (2014) – 'स्त्री संघर्ष का इतिहास' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. सिंह, वी॰ एन॰ (2018) – 'नारीवाद' रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
8. शैली॰पी॰ (2022) – 'ताराबाई शिन्दे की स्त्री–पुरूष तुलना और 19वीं सदी के भारत में लैंगिक राजनीति आर्थिक' एवं राजनीतिक सप्ताहिक पत्रिका अंक 68 भाग–10
9. आहूजा, राम (2021) – 'सामाजिक समस्याये' रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
10. लहरी, विमल कुमार (2022) – 'भारतीय विधवायें : प्रस्थिति एवं भूमिका' : भारती प्रकाशन, वाराणसी।
11. यूनेस्को (2024) – वैश्विक शिक्षा निगरानी रिपोर्ट : समावेशन और शिक्षा।
12. बोउवार–सिमोन द (2004) – 'द सेकेण्ड सेक्स' विण्टेज बुक्स न्यूयार्क।
13. भसीन, कमला (2014) – 'व्हाट इज पैट्रियार्की काली फॉर विमेन' अजन्ता पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
14. सांगरी, कुमकुम (2014) – 'रीकास्टिंग वुमैन' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस नई दिल्ली।
15. वर्ल्ड इकोनोमिक फोरम (2021), ग्लोबल जेण्डर गैप रिपोर्ट, जेनेवा।
16. www.theresearchdialogue.com
17. www.thecriterion.com

Email - arunkumarprajapati9@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 132–136

नक्सलवाद : समस्या एवं निराकरण हेतु सुझाव



डॉ. जय शंकर पाण्डेय
विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र विभाग)
अवधूत भगवान राम पी.जी. कॉलेज, अनपरा, सोनभद्र।

नक्सलवाद का उदय एवं पृष्ठभूमि :–

पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिलें के सिलीगुड़ी के निकट एक गाँव "नक्सलबाड़ी" में चारु मजूमदार और कानू सन्याल ने सत्ता के खिलाफ एक सशस्त्र आंदोलन की शुरुआत की। नक्सलबाड़ी गाँव से आंदोलन की शुरुआत होने के कारण ही इस संघर्ष को नक्सलवाद कहा जाने लगा। आज नक्सलवाद भारत के तिरुपति से लेकर नेपाल के पशुपति तक के क्षेत्र को प्रभावित कर रहा है। दरअसल नक्सली हिंसा जल, जंगल और जमीन को लेकर की जा रही है। नक्सलबाड़ी पश्चिम बंगाल राज्य के उत्तरी जिले दार्जिलिंग में सिलीगुड़ी के अंतर्गत आने वाला तकरीबन 60 गाँवों का अत्यंत सुंदर, भ्रमण योग्य, हिमालय की तलहटी में बसा पहाड़ी इलाका है, जो भारत, नेपाल और तब के पूर्वी पाकिस्तान की सीमा पर स्थित है। अपने चाय–बागानों के लिए इसकी दूर–दूर तक प्रसिद्धि है। यहाँ पर अधिकांशतः संथाल, औरांव, मुंडा तथा जावंशी जन जातियाँ हैं जो अपनी आजीविका के लिए मुख्य रूप से खेती पर ही निर्भर हैं। इस पूरे इलाके में आदिवासी जब जमीनों की जुताई–सफाई करके जंगल–झाड़ियों को काटकर खेती योग्य बना लेते थे, तब कानून की तमाम पेचीदगियों से नावाकिफ होने के कारण उनकी जमीन को वन विभाग के अधिकारी और कुछ स्वार्थी जमींदार हथिया लेते थे। इस प्रकार वे लगातार नई जमीन तैयार करते हैं और फिर बेदखल कर दिये जाते थे। 1967 ई0 में यहाँ आदिवासियों ने भू–स्वामियों के खिलाफ हथियार उठा लिए थे, जिनका नेतृत्व चारु मजूमदार व कानू सन्याल ने किया। इसके बाद यह आंदोलन जंगल की आग की तरह देश के अन्य भागों में फैल गया। देश के कुछ भागों के सर्वश्रेष्ट और बड़े बुद्धिमान लोग घर और कालेज छोड़कर इस आंदोलन से जुड़ गए और उन्होने एक नई सामाजिक व्यवस्था के सपने देखें।

नक्सलवादी भारतीय संविधान को नहीं मानते। वे भारत की पूरी राजनीतिक व न्याय व्यवस्था को साम्राज्यवाद और सामंतवाद की कठपुतली और भारत के लोकतन्त्र को छद्म लोकतन्त्र कहते हैं। जो भी हो, वे नेपाल से बिहार, उड़ीसा, झारखंड, छत्तीसगढ़ होते हुए आन्ध्रप्रदेश तक देश में एक "रेडकारीडोर" एक सघन लाल गलियारा बनाने की फिराक में है। इनका इरादा "पशुपति से तिरुपति" तक ऐसा लाल गलियारा बनाने का है, जिसे बाद में तमिलनाडु और श्रीलंका तक फैला देने की योजना है। परंतु वर्तमान परिवेश को देखें तो श्रीलंका में लिट्टे की समाप्ती ने कारीडोर के श्रीलंका तक विस्तृत होने के नक्सलवादियों के मंसूबों पर पानी फेर दिया

है। नक्सलबाड़ी गाँव में 02 मार्च, 1967 को एक स्थानीय जमींदार के सशस्त्र गुंडों ने "बिगुल" नामक किसान को बेरहमी से पीटा। उसके दूसरे ही दिन किसान आंदोलनकारियों ने जमीन के एक बड़े भूखंड को लाल झंडों से घेर कर खुदाई शुरू कर दी। पुलिस ने दमानात्मक कार्यवाही शुरू की। 23 मई, 1967 को किसानों ने एक पुलिस इंस्पेक्टर की हत्या कर दी। बदले में पुलिस ने 09 महिलाओं व एक बच्चे को मार गिराया। प्रतिक्रिया में जमींदारों की गर्दनें काटकर पेड़ों पर लटकाने की खबरें आने लगी। विद्रोहियों ने सरकारी दफ्तरों में रखे जमीन के कागजात जला दिये। जमींदारों द्वारा सताए गए भूमिहीन एवं जाति प्रथा के शिकार लोग आंदोलन में कूद पड़े और आंदोलन भड़क उठा। इस प्रकार खूनी संघर्ष का प्रारम्भ हो गया, जो आज भी जारी है।

नक्सलवाद की समस्या मार्क्स के "सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद" के सिद्धान्त पर कार्य करता है। चारु मजूमदार, कानू सन्याल और मुजीबुर्रहमान के नेतृत्व में शुरू हुए इस आंदोलन में भू–अपहरण, फसलों को काट लेना, हिंसा, आतंक, आगजनी, लूटमार, गोली मारने की घटनाओं के कारण कानून एवं व्यवस्था पूर्णतः समाप्त हो गई। पुलिस प्रशासन कार्य करने में असमर्थ हो गया। अव्यवस्था और भ्रम की स्थिति ने स्थानीय विद्रोही किसानों को प्रोत्साहित किया और वे समांतर सरकार स्थापित करने की स्थिति में पहुँच गए। इसका परिणाम हुआ कि चार माह की अवधि के भीतर किसान सभाओं की सदस्य संख्या 04 लाख 50 हजार तक पहुँच गई। यद्यपि कुछ समय पश्चात पश्चिम बंगाल की संयुक्त मोर्चा सरकार उन्हें दबाने में सफल रही।

नक्सल आंदोलन की शुरुआत सामाजिक, आर्थिक कारणों से हुई, क्योंकि उस समय जो पीढ़ी थी उसे लगा था कि हमें आजाद हुए इतने वर्ष हो गए, परंतु अभी भी आर्थिक शोषण व सामर्थ्य कुछ ताकतवर हाथों में ही संकेंद्रित है। नक्सलवाद प्रमुखतः आदिवासी इलाकों में ही फैल रहा है। ये क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों से भी भरपूर है। आदिवासी मूलतः किसान हैं। जल, जमीन और जंगल के बिना आदिवासी की पहचान ही नहीं होती। आदिवासी का मतलब होता है उनका जंगल, जमीन, उनकी बोली–भाषा और उनकी संस्कृति, अपनी जीवन शैली, उनका अपना शारीरिक गठन और नाक–नक्श। आदिवासी बसाहट वाले क्षेत्र खनिज, कुदरती संसाधनों से भरे समृद्ध क्षेत्र होते हैं। बाहरी लोगों की घुसपैठ बढ़ने के साथ आदिवासियों की बेरोजगारी, भुखमरी और गरीबी बढ़ी, जिससे उनमें असंतोष पनपा। आदिवासी को पुलिस, जमींदार, सूदखोर और ठेकेदार लूटते रहे हैं। उनके पास कोई विकल्प नहीं बचता। सरकार ऊंची विकास दर की बात करती है, नई योजनाओं की बात करती है, जीवन–स्तर सुधारने की बात करती है। लेकिन ये योजनाएँ व इनका क्रियान्वयन सुचारु रूप से नहीं हो पाता और देश की जनता का एक बड़ा भाग गरीबी, बदहाली व जलालत की जिंदगी जीने पर मजबूर होता है। तो फिर संविधान के आदर्शों व सरकार की नेकनीयत पर कौन भरोसा करेगा? राजनीतिक दल जो वंचितों की समस्याओं को उठाते तो हैं, पर उनका निराकरण नहीं करते। दलालों की खासकर राजनीतिक दलालों की संख्या झारखंड और दूसरे आदिवासी बहुल क्षेत्रों में इतनी बढ़ गयी है कि आदिवासी समझ नहीं पाता कि वह किस ओर जाए, क्या करें, क्या न करें और जब उसे कोई रास्ता नहीं सूझता तो सशस्त्र क्रान्ति की ओर नक्सलवाद की शरण में चला जाता है। नक्सलवाद के रास्ते से हम भले ही सहमत न हों पर आदिवासी क्या करें? उधर वह न भी जाये तो इधर भी कहाँ है समाधान? इधर नक्सलवाद में मौत है, तो उधर व्यवस्था में भी मौत ही है, जो हर क्षण उनके स्वाभिमान को भी मारती है। नतीजन वह मार कर मरने कर का रास्ता चुनता है, वह शोषण से मुक्ति और सम्मान से जीना चाहता है। नक्सलवाद प्रताड़ित और शोषित ग्रामीणों, खासकर आदिवासी युवाओं

में पनप रही हताशा और खालीपन को भरता है।

नक्सलवाद का उद्देश्य :

नक्सलवाद मूल रूप से 'मार्क्सवाद के वर्ग–संघर्ष के सिद्धान्त' पर आधारित है। इसके तहत शोषित, उपेक्षित एवं दलित वर्ग अपनी संघर्ष शक्ति से पूँजीपतियों, जमींदारों, साहूकारों एवं शासकों को शिकार बनाते हैं और शासक वर्ग की राजसत्ता को लूटना अपना अधिकार मानते हैं। नक्सलवादियों के इस अधिकार प्राप्त करने में जो बाधा पहुँचाता है, उसे समाप्त कर देना चाहिए, तभी सर्वहारा शासन तंत्र की स्थापना हो सकेगी, ऐसी उनकी धारणा है। यद्यपि इसका वास्तविक उद्देश्य सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक समानता स्थापित करना है, किन्तु अकारण हिंसा, अपराध एवं उग्रवाद अपनाने के कारण यह हमारे समाज के लिए एक बड़ी चुनौती एवं सुरक्षा की दृष्टि से एक सामयिक समस्या एवं संकट के रूप में उभरा है। वास्तव में नक्सलवाद एक विचारात्मक, राजनीतिक व आर्थिक संघर्ष है, जो वर्तमान शासक वर्ग की राजसत्ता को उखाड़ फेकना चाहता है। ऐसे शासक वर्ग की राजसत्ता को, जिसके मालिक देशी विदेशी पूँजीपति, भू–स्वामी, ठेकेदार, दलाल, नौकरशाह हैं और जो बहुसंख्यक श्रमजीवी वर्ग पर शासन करते हैं।

उल्लेखनीय है कि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों ने भारतीय सामाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के लिए चीन में सम्पन्न हुई कम्युनिस्ट क्रान्ति से सीख लेते हुए लेनिनवाद और माओत्से तुंग विचारधारा को अपना प्रस्थान बिन्दु माना। सामन्तवाद को समाप्त करने के लिए ही इसका साथ भूमिहीन किसान एवं उपेक्षित सामाजिक वर्ग नें भी देना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु एक स्थान पर टिक कर नक्सलवादी गतिविधियों की रूपरेखा तैयार करना और उसे अंजाम तक पहुँचाना, नक्सलवादियों के लिए न ही सिर्फ जोखिम भरा काम है बल्कि यह उनके लिए बेहद खतरनाक भी। इसी भय से भयभीत हो नक्सलवादी अपने मूल स्थान पं० बंगाल से कट कर ऐसे जगहों पर जाना ज्यादा उपयुक्त समझे जहाँ उनके छिपने और कूटयोजना बनाने के लिए जंगल एवं घाटी क्षेत्र विशेष रूप से उपयुक्त व उपलब्ध हैं। इनके आतंक का क्षेत्र विशेषतया हैं– आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, तमिलनाडू, महाराष्ट्र एवं उड़ीसा आदि।

नक्सलवादी संगठनों के पास उन्नत सूचना–तंत्र, विशेष प्रशिक्षण एवं अत्याधुनिक शस्त्र प्रणाली भी है।

समस्या के रूप में नक्सलवाद :–

वर्तमान में नक्सलवाद देश के 630 जिलों में से 180 जिलों में फैल चुका है और 6.5 लाख गाँवो में नक्सली अपने खूनी खेल को अंजाम दे रहे हैं। इस तरह नक्सलवाद 16 राज्यों की कानून व्यवस्था के लिए चुनौती बना हुआ है, क्योंकि देश के लगभग एक तिहाई हिस्से पर देश का कानून नही चल पा रहा है। लगभग 40 हजार वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में इन नक्सलियों की अपनी अदालतें व सेनाएं हैं। इन राज्यों के 194 में से 58 जिले बुरी तरह प्रभावित हैं। जहाँ नक्सली अपनी अदालतें लगातें हैं और अपना फैसला भी सुनाते हैं, नक्सलवादियों के आतंकी खौफ से लोग वहाँ भारत सरकार के कानून को छोड़कर इनका लाल कानून मानने पर विवश हैं। आज इनके लगभग 50 हजार सदस्य हैं, जिनमें 22 हजार हथियार बन्द हैं। इनके अलग–अलग राज्यों में 100 प्रशिक्षण शिविर हैं। छापामार लड़ाई इनकी प्रमुख युद्ध कला है। वर्तमान में आन्ध्र प्रदेश के विशाखापट्टनम् बन्दरगाह से उड़ीसा के मलकान गिरि व कोरापुट के घने जंगलों से होते हुए छत्तीसगढ़ के दांतेवाड़ा जिले तक इन माओवादियों (नक्सलवादियों) ने अपना लाल गलियारा बना लिया है। जिससे इनके

हथियार व अन्य साजो–सामान विशाखापट्टनम् बन्दरगाह पर उतार कर दांतेवाड़ा तक आसानी से पहुँच जाए। भाकपा माओवादियों के क्षेत्रीय ब्यूरो बने हुए हैं। इनके केन्द्रीय ब्यूरो में आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ का दक्षिण क्षेत्र आता है। उड़ीसा व छत्तीसगढ़ का उत्तरी क्षेत्र उड़ीसा–छत्तीसगढ़ में आते हैं। पूर्वी क्षेत्रीय ब्यूरो में असम, पं० बंगाल, झारखण्ड व समुद्र तटीय इलाका आता है। दक्षिण–पश्चिम क्षेत्रीय ब्यूरो में केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र व कर्नाटक को रखा गया है। उत्तर क्षेत्रीय ब्यूरो में बिहार, उ०प्र०, दिल्ली, हरियाणा व पंजाब है। नवम्बर, 2005 की बहुचर्चित जहानाबाद जेल ब्रेक घटना के बाद भाकपा (माओवादी) के प्रवक्ता ने कहा था, 'जब तक गरीबी, शोषण और भ्रष्टाचार बढ़ता रहेगा तब तक हमारी ताकत भी बढ़ती रहेगी और हमारी क्रान्ति भी बढ़ती जाएगी। ''बन्दूक से आदमी को मारा जा सकता है, विचार को नहीं। हथियार से विचार को मारने की कोशिश वास्तव में उसके विस्तार को ही गति प्रदान करती है। नक्सलवाद के संदर्भ में यही हुआ। यदि ऐसा नही होता तो सिलीगुड़ी के एक छोटे से गाँव नक्सलवाड़ी से निकल कर पूरे देश में नक्सलवाद नहीं फैलता। वर्तमान में 15 प्रमुख नक्सली संगठन अपने अमानवीय कार्यो को अंजाम दे रहे हैं।

नक्सलवाद रोकने के उपाय या सुझाव :-

नक्सलवादी संघर्ष को रोकने के लिए यूं तो अनेक कदम सरकार, स्वयंसेवी संथाएँ तथा प्रशासन ने उठाए हैं। फिर भी कुछ प्रमुख उपाय या सुझाव प्रस्तुत है :–

1) भूमि सुधार की समस्या नक्सलवाद का प्रमुख कारण है। इसे दूर करने का प्रयास गंभीरता से किए जाएँ। इसके लिए भूमि सुधार व फारेस्ट एक्ट लागू करना चाहिए।
2) प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय आदिवासियों को समान अधिकार दिये जाएँ तथा इन अधिकारों का संरक्षण भी सुनिश्चित किया जाए।
3) मादक पदार्थों व हथियारों की तस्करी पर प्रभावी रोक लगायी जाए।
4) सरकारी नौकरियों में स्थानीय लोगों को वरीयता दी जाए।
5) सामाजिक व्यवस्था में सामंतवादी मानसिकता व आर्थिक साधनों पर वर्ग विशेष का आधिपत्य समाप्त किया जाए।
6) जनजातीय क्षेत्रों में स्थानीय लागों की सहमति से पावर प्लांट लगाए जाएँ।
7) प्रभावित क्षेत्रों में सड़कों का विकास किया जाए।
8) सभी को शिक्षित करने का प्रयास किया जाए।

निष्कर्ष :-

उपरोक्त के अनुशीलन से यह तथ्य उभर कर सामने आया है कि नक्सलवाद राष्ट्र व नागरिकों के सम्मुख एक गंभीर चुनौती है। इसके फैलाव को रोकने के लिए सरकार ने उचित तैयारियाँ भी की है। लेकिन जरूरत है, इनको प्रभावी ढंग से लागू करने की। तभी नक्सलवाद समाप्त किया जा सकेगा।

संदर्भ :

1. सहगल, मेजर जनरल विनोद – "अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद", प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– प्रथम 2004.

2. White, J. : "Terrorism : An Introduction", 1991.
3. Brovkin V.N. : Behind the frontline of the Civil War : Political Parties & Social Movement in Russia-1918 – 22.
4. रिचार्ड, जी हवानिजीयन – द आर भटियम जेनोसाइट : हिस्ट्री, पालिटिक्स, ईथिक्स"।
5. हर्ष फील्ड जी, : " द पालिसिज आफ जैनोसाइट एंड सोवियत प्रिजनर्स आफ वार इन नाजी जर्मनी"।
6. पूरी रक्षत : "अपरिभाषित आतंकवाद के परिणाम", हिंदुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, वाराणसी, 2003.
7. जेहाद, अबू, "इस्लामिक फंडामेंटलिज्म इन द वेस्ट बैंक एंड गाजा", 1994.
8. नादीम, रोहादी और मिल्स हाफर : लेबनान हिस्ट्री आफ कान्फ्लिक्टएंड कन्सेशन", 1992.
9. रावल शीला : "आतंक का नया चेहरा" इंडिया टुडे, साप्ताहिक पत्रिका, नई दिल्ली, 22 सितंबर, 2003.
10. चौहान, डा0 भारती : "भारत में उभरती नक्सलवाद की समस्या एवं उसका प्रभाव", प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, अगस्त 2007, पृ0– 76.

पद– विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र विभाग)
संस्था–अवधूत भगवान राम पी.जी. कॉलेज, अनपरा, सोनभद्र
पता–2nd-RN-03, UPRNN कॉलोनी, Near WIE Gate/RTC Company
अनपरा, सोनभद्र, पिन–231225
मोबाइल–9415689907

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 137–144

Role of Women in India's Freedom Movement and Political Development

Dr. Ansari Naseem Jameel Ahmed
Assistant Professor in Political Science
MGV's Arts, Commerce & Science College, Malegaon City. (Autonomous)

Abstract :

The history of India's freedom struggle would be incomplete without highlighting the role of women, whose bravery and sacrifices challenged societal norms that confined them to domestic life. Despite existing in a predominantly patriarchal society, many women demonstrated remarkable courage and leadership in the struggle for independence. The early 20th century, marked by social reforms and education, saw women emerging as powerful political and national figures. Leaders like Madam Bhikaji Cama, Annie Besant, Kasturba Gandhi, Aruna Asaf Ali, Usha Mehta, and Sarojini Naidu became symbols of resilience, combining armed resistance, intellectual activism, and Gandhian non-violence. Women were not only warriors in the independence struggle but also visionaries for India's political future. By organizing protests, mobilizing people, and forming associations like the All India Women's Conference (AIWC), they linked the nationalist cause with the demand for women's rights and social reforms. Their activism laid the foundation for women's lasting role in Indian politics after 1947. Post-independence, they transitioned from freedom fighters to legislators, policymakers, and constitutional framers, shaping crucial laws that advanced social justice and gender equality. From just 5% representation in the first Lok Sabha (1951–52) to nearly 15% in the 2024–25 session, women's participation in politics has steadily grown. The Women's Reservation Act of 2023, mandating one-third reservation of seats in Parliament and state assemblies, marked a historic milestone. Today, women leaders contribute significantly to governance by prioritizing welfare, inclusion, and participatory democracy. Their struggle, sacrifice, and enduring leadership remain central to both India's freedom movement and its democratic evolution.

Keywords : *Freedom, Women, Indian, Role, Political Participation.*

Introduction :

The history of the Indian freedom struggle would be lacking if the involvement of women were not highlighted. Indian women's sacrifices will be prioritized over all others. There are many tales of women's sacrifice, bravery, and devotion in the fight for independence. Many of us don't realize that hundreds of women served in combat alongside their male counterparts. They fought with genuine passion and unshakable courage. The Indian women liberated themselves from various constraints and their traditional domestic responsibilities. Therefore, women's contributions to the National Awakening and the fight for freedom are simply incredible and worthy of recognition. However, it is challenging for women to fight as warriors in a culture where men are the majority. Even though women tried to change the perception of such conventional people who thought women should only take care of the home.

The main cause of this was the predominance of male authority. The women were expected to perform their household responsibilities; they were not allowed to engage in any other employment or activity, nor were they given any platform to voice their opinions. A variety of systems that had negative impacts on women were implemented during this time. Child marriages, restrictions on widows getting married again, female infanticide and feticide, the purdah system, sati, and polygamy are a few examples. Many social reformers, like Raja Ram Mohan Rai, Ishwar Chander VidyaSagar, and Jyotiba Phule, faced many obstacles in their efforts to improve the status of women in Indian society during the period of East India Company.

Women's active participation in political and national battles during the early 20th century was a clear indication of the effects of reform and education. Some of the most inspirational figures in India's freedom movement were visionaries like Madam Bhikaji Cama, Annie Besant, Kasturba Gandhi, Aruna Asaf Ali, Usha Mehta, and Sarojini Naidu. Their involvement was not limited to the background; they spearheaded groups, led movements, raised resistance flags, and faced violent persecution from colonial rulers. Numerous common women also took part in large-scale satyagrahas, non-cooperation, and civil disobedience campaigns, demonstrating that both men and women worked together to achieve freedom.

Beyond the struggle for independence, women played a significant part in India's political evolution. They contested centuries of patriarchal domination by going into politics. Their participation changed India's democratic and social values while also bolstering the independence struggle. The involvement of women showed how crucial equality, representation, and inclusivity are to creating a free country. Their legacy cleared the path for women's rights to be more widely acknowledged in

independent India, which resulted in constitutional guarantees of equality and opportunities in a variety of fields.

Therefore, Women have made a remarkable and inspirational contribution to India's national awakening. Their bravery in the face of harsh limitations is indicative of a broader fight in India to redefine gender, which is not only confined to the home but is intricately linked to the country's future. Therefore, the history of India's freedom is not only a tale of political change but also of social awakening, with women emerging as visionaries, leaders, and fighters who helped shape contemporary India.

Objectives of the study :

- To study the Indian freedom struggle of Women in general.
- To explore the role that women freedom fighter played in the Indian freedom movement.
- To draw attention to the sacrifices and sufferings of Indian women.
- To raise awareness about Contributions of Women in Political Development.
- To present Political Development of Women after Independence.
- To draw conclusion on role of women in India's freedom struggle.

Revolutionary Fighters and early Women Warriors :

In India's fight for independence and subsequent political growth, women have played a crucial and frequently overlooked role. Their engagement shaped the path of freedom and the basis of contemporary Indian democracy, ranging from early armed resistance to ongoing participation in Gandhian non-violent activities. The tale of the bravery, selflessness, and political acumen of hundreds of thousands of women in our nation fills the whole history of the independence movement. Beginning in the early 1800s, women actively participated in the fight for freedom. Women figures like Rani Lakshmi Bai of Jhansi and Bhima Bai Holkar represented bravery and defiance against British colonial encroachment. During the 1857 Revolt, notable female leaders such as Begum Hazrat Mahal spearheaded armed resistance and sparked a general uprising.

Their involvement in the conflict dates back to 1817, when Bhima Bai Holkar engaged in guerilla warfare against and defeated British Colonel Malcolm. The widowed queen of Raja Malla Sarja, Chennamma, thwarted British attempts to annex her kingdom Kittore, a small principality in the present-day Belgaum District of Karnataka, during a crucial period for our motherland when the British East India Company was rapidly growing its empire in India, Tipu Sultan had been overthrown (1799), and the proud Marathas had been subdued (1815). She fought and initially prevailed against the powerful British troops.

Siddhartha Dash's portrayal of Lakshmi Bai, the Rani of Jhansi, had an influence on Indian

culture. She was the second wife of Raja Gangadhar Rao, the monarch of Jhansi, who opposed the "Doctrine of Lapse." She resisted giving up Jhansi, fought valiantly during the Revolt of 1857 while dressed as a man, and lost her life while battling the British army. Many Indians were motivated to rebel against the foreign tyranny by her bravery.

Hazrat Mahal Begum is another woman that comes to mind in this situation. She was married to the overthrown ruler of Lucknow, who actively participated in the 1857 uprising against the Doctrine of Lapse, which called on her to cede Lucknow to Dalhousie. She put up a fierce fight. However, she fled to Kathmandu after Lucknow fell.

One of the most vocal supporters of Mahatma Gandhi's policies was his wife, Kasturba. She participated in the Quit India Movement (1942) and was arrested, making her one of the first women to be imprisoned in the Transvaal. She passed away in Poona while incarcerated.

Numerous Nehru family women joined the fight for freedom. Swarup Rani Nehru, Jawaharlal Nehru's mother, gladly donated her husband and kids to the nation's cause, and she herself, weakened and elderly, jumped into the thick of things. After marrying Jawaharlal Nehru in 1916, Kamala Nehru spearheaded the Civil Disobedience Movement and took part in other movements. She was instrumental in setting up the United Provinces' (now Utt ar Pradesh) No Tax Campaign. Vijay Laxmi Pandit, the sister of Jawaharlal Nehru, joined the Non-Cooperation Movement. In 1932, 1941, and 1942, she was imprisoned three times in relation to the Civil Disobedience Movement. She was elected to the United Provinces' provincial legislature in 1937 and appointed minister of public health and local self-government.

As India's delegate in San Francisco at the UN's inaugural session, she played a significant role by opposing the British power. She was the first female president of the General Assembly of the United Nations. At the age of 13, Indira Gandhi demonstrated her resolve to fight for her nation's freedom by organizing a group of young teens known as the "Monkey Army" (Vanar Sena). She joined Congress in 1938, and the British put her in a 13-month jail sentence in 1942. She served as the first and only female prime minister of India. The Nehru family's four generations of commitment to public issues is exceptional in the history books.

Among India's female liberation fighters, Sarojini Naidu is a proud figure. She was in charge of reawakening Indian ladies. At the Kanpur Session of the Indian National Congress in 1925, she served as the party's first female president. She brought Gandhiji's nonviolence movement message to the United States in 1928. Sarojini led Gandhi's movement after he was detained for protesting in 1930. She attended the Round Table Summit in 1931 together with Pundit Malavyaji and Gandhiji. In 1932, she again served as the Congress's acting president. She spent 21 months in jail after being

detained during the "Quit India" demonstration in 1942. She was referred to as the Nightingale of India and was a talented English-language poet. She became the first female governor of an Indian state (Uttar Pradesh) following independence.

One of the key figures in the Quit Indian Movement was Aruna Asaf Ali. She arose to the occasion when her time of reckoning occurred in 1942 during the Quit India Movement. Thousands of young people rose to follow in her footsteps as she raised the national flag at Bombay's Gowalia Tank Maidan to mark the start of the Quit India Movement. She joined the Quit India Movement as a full-time activist and went undercover to avoid being arrested. She served as editor of the Indian National Congress's monthly publication, "Inquilab."

Significance of Women in the Indian Freedom Struggle :

Women's contributions to the Indian freedom movement are extremely important because they not only bolstered the nationalist movement but also changed social mores. Their proactive involvement helped to connect disparate communities, break down barriers, and advance the larger struggle for empowerment and equality. Promoting Unity Through "Bharat Mata". The participation of women, represented by the idea of "Bharat Mata," promoted unity and fortified anti-colonial feelings among nationalists.

In Fueling Resistance Movements, Women played a key role in resistance actions including picketing and boycotting clothing made abroad, which increased the movement's efficacy. Educated women assumed leadership positions, opening doors for others to enter the public sphere and make meaningful contributions. By defying conventional standards, women's involvement enabled them to move from household responsibilities to positions of authority and employment. They advanced the cause of gender equality in independent India with their contributions to the independence movement, which left a lasting legacy.

Contributions of Women in Political Development :

Women made contributions as political organizers, intellectuals, and activists. In order to promote women's rights and social reforms, women's groups like the All India Women's Conference (AIWC) were established. Following independence, female leaders rose to governmental positions, influencing legislation and promoting gender equality.

Since the first general election in 1951–1952, women have been able to vote and run for office thanks to the Indian Constitution's guarantee of universal suffrage. The percentage of women voting increased significantly, from 46.6% in 1962 to 65.8% in 2024. In the 2024 elections, there were 797 women running for Lok Sabha seats, up from 45 in 1957. With the passage of the 2023 Women's Reservation Bill, which requires 33% of parliamentary and state assembly seats to be

reserved for women, women's participation in the Lok Sabha increased from 5% in the first Parliament to 13.6% in 2024.

An important factor in expanding the agenda for women's advancement was the All India Women's Conference (AIWC), which was established in 1927 and officially registered in 1930. The AIWC's initial goal was to support women's education, but it soon broadened its scope to include social and legal reform. For example, it pushed for the Child Marriage Restriction Act (Sarda Act), mandatory primary education for girls, the elimination of child marriage, a minimum legal marriage age, and a Uniform Civil Code. By securing property and inheritance rights, advancing women's voting rights, and enhancing working conditions for women, AIWC actively engaged in legislative lobbying. Prominent AIWC leaders and other trailblazers for women's rights entered politics after independence, influencing constitutional clauses and promoting gender equality.

Due in large part to reservation regulations in Panchayati Raj institutions, women occupied important leadership positions at the state and local levels in addition to entering Parliament. By 2022, they made up 44% of legislators in local government bodies. Model gram panchayat projects and more recent capacity-building programs have further empowered women at the local level. India's democracy, the continuous growth of women's rights, and the promotion of inclusive social changes are all greatly influenced by the efforts of women.

Political Development of Women after Independence :

The basis for women's participation in India's political system following independence was established by their activism during the freedom movement. Legislation pertaining to social justice and gender equality was significantly shaped by the entry of female leaders into parliament and policy-making bodies. Since gaining independence, Indian women have evolved from freedom movement activists to powerful legislators, constitutional drafters, and policymakers who have shaped important laws for social justice and gender equality.

Change makers like Sarojini Naidu, Durgabai Deshmukh, Hansa Mehta, and Vijaya Lakshmi Pandit, who shaped fundamental rights for women and promoted anti-discrimination principles in the Constitution, were among the 15 out of 299 members of the Constituent Assembly from the beginning. Through their lobbying, equal rights—such as the right to vote for all adults, non-discrimination, affirmative action, and equal compensation for equal labor—were guaranteed by the 1950 Constitution (Articles 14, 15, 16, and 39).

The percentage of female MPs in the current Lok Sabha (2024–25) is approximately 15%, up from 5% in the first Lok Sabha (1951–52). A third of seats in the Lok Sabha and state assemblies must be set aside for women, according to the historic Women's Reservation Act of 2023, which

significantly increases the opportunities for female legislators to participate and have an impact. Women have brought about new methods of government that prioritize welfare, social inclusion, and participatory democracy. Essential services (such as water, health, and education) have been given priority by female MPs and local leaders because, according to studies, women leaders frequently make larger investments in public goods that directly benefit their communities.

In general, progressive social change, legal empowerment, and inclusive development in post-independence India have been sparked by women's activism and representation in parliament, policymaking, and public administration.

Conclusion :

Women's contributions to India's political growth and freedom struggle are evidence of their tenacity, bravery, and ambition for a decent society. Acknowledging and researching their achievements helps us better comprehend India's history and directs our continuous pursuit of inclusive democracy. Acknowledging their work demonstrates how gender and national emancipation are interwoven, encouraging further attempts at equality and political engagement. Women's significant participation in the Indian liberation movement changed their social positions and opened the door for long-lasting leadership in the political growth of the nation. Both independence and later advancements in gender equality, legal reform, and inclusive governance were fuelled by their tenacity and activity.

In addition to taking part in the nonviolent struggle that resulted in India's independence, women played an important part in its accomplishment. The power of a strong worldwide empire that the sun never set was challenged and vanquished by the moral strength of a people equipped only with ideas, courage, and peace—possibly for the first and only time in world history. The historical background would be incomplete if the contribution of women to the Indian freedom movement were not mentioned. To secure our independence, they faced numerous hardships, exploitations, and sufferings while fighting with unwavering bravery and genuine spirit. Many strong-willed women spoke out against the cruelty of British rule. Numerous women staged lectures, protests, processions, and marches in the streets. These women were fiercely patriotic and courageous. We can draw the conclusion that the women's movement has grown and progressively expanded its ties to other movements over the past 50 years, including labor unions, environmental organizations, and other progressive movements that oppose all forms of injustice, oppression, and degradation.

References :

- https://magazines.odisha.gov.in/Orissareview/2010/August/engpdf/74-76.pdf
- Zafarullah Rashid and Dr. S. Veena., (2023). Role of Women in Indian Freedom Movement.

International Journal of Emerging Knowledge Studies. 2(11), pp. 568-572. https://vajiramandravi.com/upsc-exam/women-in-politics/

- Lodhia, Sharmila. "All India Women's Conference". Encyclopedia Britannica, 20 Mar. 2023, https://www.britannica.com/topic/All-India-Womens-Conference. Accessed 24 September 2025.
- A. Basu, Bharati Ray eds. Women's Struggle: A History of the AIWC, 1927-2002, Manohar, 2003, p. 20
- Dr. Yuthika Mishra "Women's Rights and the Archive of the All India Women's Conference" Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education, Vol. XI, Issue No. XXI, April-2016, ISSN 2230-7540, ISSN 2230-7540.
- Wikipedia, "Women's Political Participation in India." 3 Nov. 2021, https://en.wikipedia.org/wiki/Women_of_the_Indian_independence_movement.
- Vajiram & Ravi "Role of Women in Indian Freedom Struggle, Significance." 4 Sept. 2025, https://vajiramandravi.com/upsc-exam/role-of-women-in-indian-freedom-struggle/.

Contact: 9766695487
Email: ansarinja@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 145–161

The Role of Microfinance in India's Economic Development and Financial Inclusion

Dr. Sanjeev Kumar Bansal
Associate Professor, Deptt. of Commerce S.N.D.B. Govt. P.G. College, Nohar (Raj.)
Akashdeep
Research Scholar, Deptt. of Commerce S.N.D.B. Govt. P.G. College, Nohar (Raj.)
Suhani Bharadiya
MA Economics, Maharana Pratap Govt. P.G. College, Chittorgarh (Raj.)

ABSTRACT :

The economic development of any nation is considered meaningful only when every citizen has equal opportunities and equitable access to financial resources. The objective of economic progress is not merely to increase income but also to economically empower the most vulnerable sections of society and promote self-reliance. India is a vast rural and developing economy, where limited access to formal financial services among rural communities, low-income groups, small farmers, women, and micro-entrepreneurs has remained a major challenge to inclusive development. In this context, microfinance has emerged as an effective instrument of financial inclusion by providing financial services such as microcredit, savings, insurance, money transfers, and financial counselling, thereby integrating economically weaker sections into the formal financial system. The present study aims to analyse the role of microfinance in India's economic development and financial inclusion. The study is based on secondary data collected from various government and institutional reports as well as published research papers. The findings reveal that microfinance has significantly promoted self-employment, entrepreneurship development, agricultural and rural development, women's empowerment, poverty alleviation, and financial inclusion. However, over-indebtedness, high interest rates, lack of financial literacy, rising Non-Performing Assets (NPAs), and regulatory challenges continue to affect its effectiveness. The study concludes that microfinance can be made more effective through

responsible lending practices, a robust regulatory framework, digital innovation, the expansion of financial literacy, and institutional coordination, thereby accelerating financial inclusion and making a significant contribution to achieving the goals of inclusive, balanced, and sustainable economic development in India.

Keywords : *Microfinance, Financial Inclusion, Economic Development, Financial Literacy, Entrepreneurship Development;*

1. INTRODUCTION :

A robust and inclusive financial system is considered the foundation of a nation's economic development, as it ensures the efficient allocation of financial resources, promotes investment, encourages entrepreneurship development, and facilitates the participation of all sections of society in economic activities (Levine, 2005). In the contemporary global economic scenario, the concept of economic development is no longer limited to growth in production, income, or GDP; rather, inclusive and sustainable development, social equity, and financial inclusion have become important dimensions of long-term economic progress. Equitable and widespread access to formal financial services plays a significant role in expanding economic opportunities, reducing poverty, decreasing socio-economic inequalities, and promoting inclusive growth (United Nations, 2015; World Bank, 2022). Despite significant economic progress, achieving comprehensive financial inclusion in India continues to remain a challenge. Issues related to the accessibility, affordability, quality, and effective utilization of financial services, along with inadequate financial literacy among rural communities, low-income groups, small farmers, women, and micro-entrepreneurs, continue to affect their integration into the formal financial system. To address these challenges, the Government of India, the Reserve Bank of India (RBI), the National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD), and other financial institutions have introduced various policy reforms and institutional initiatives to expand financial access and promote inclusive finance (RBI, 2024; NABARD, 2024; Ministry of Finance, 2024). Although these initiatives have significantly improved financial inclusion, challenges related to responsible lending, digital inclusion, quality of financial services, and long-term sustainability continue to persist. In this context, microfinance has emerged as an effective instrument for expanding financial access and promoting socio-economic empowerment. Therefore, the present study analyses the role of microfinance in India's economic development and financial inclusion by examining its contribution, effectiveness, major challenges, and future prospects.

2. REVIEW OF LITERATURE :

Basu and Srivastava (2005) examined the outreach of microfinance to the rural poor in India, with particular emphasis on the Self-Help Group-Bank Linkage Programme (SHG-BLP). The study found that the programme significantly improved access to formal financial services and credit for women and low-income rural households. However, its outreach remained uneven across regions due to institutional constraints, limited banking infrastructure, and the inadequate availability of quality Self-Help Groups. The study emphasized the need for effective institutional coordination, a supportive policy framework, and expansion of financial services to enhance the effectiveness of microfinance. **Pitt et al. (2006)** studied the impact of microfinance on women's empowerment in rural Bangladesh. The study found that participation in microfinance programmes improved women's decision-making capacity, mobility, and control over household resources. It concluded that microfinance promotes not only financial inclusion but also broader socio-economic empowerment. However, the study was limited to Bangladesh and did not evaluate the institutional and regulatory aspects of microfinance in countries like India. **Taylor (2012)** examined the relationship between financial inclusion and commercial microfinance in India, particularly in the context of the 2010 Andhra Pradesh microfinance crisis. The study identified excessive commercialization, aggressive lending practices, and inadequate regulation as major causes of borrower over-indebtedness and financial distress. It emphasized the importance of responsible lending, effective regulation, and consumer protection. **Diamond (2012)** reviewed the literature on microfinance and poverty alleviation.

The study found that microfinance contributes to poverty reduction by expanding financial access, encouraging productive investment, generating employment opportunities, and strengthening household economic stability. It also highlighted the importance of complementary measures such as financial literacy, skill development, and institutional quality. **Chakravarty and Pal (2013)** developed an approach to measure financial inclusion across Indian states and analysed major banking policies during the period 1972-2009. The study found that social banking policies implemented during 1977-1990 played an important role in improving financial inclusion and reducing regional disparities, whereas the pace of inclusion slowed in several regions after economic liberalization. However, the study did not examine the contribution of microfinance institutions to economic development. **Ghosh (2013)** critically examined the role of microfinance in financial inclusion and economic development in India. The study concluded that although microfinance improves access to financial services, it cannot alone provide a complete solution for poverty alleviation and

inclusive development. It emphasized the need for effective regulation and institutional strengthening. **Hermes and Hudon (2018)** conducted a systematic review of around 170 studies to identify the factors influencing the performance of microfinance institutions. The study highlighted institutional characteristics, governance, financial resources, and the macroeconomic environment as key determinants. It emphasized maintaining a balance between financial sustainability and social objectives. **Kavita and Suman (2019)** reviewed the determinants of financial inclusion in India. The study identified financial literacy, technological advancement, government initiatives, Self-Help Groups, and microfinance as major factors influencing financial inclusion. It concluded that microfinance institutions play an important role in expanding financial access for economically weaker sections.

However, the study was limited to a review of existing literature. **Venumuddala (2020)** analysed demand-side financial inclusion in India using IHDS panel data and RBI statistics. The study found significant improvement in access to formal financial services during 2004-05 to 2011-12, although regional and rural–urban disparities continued to exist. It highlighted the importance of financial literacy, accessible credit, and microfinance but did not examine the broader impact of microfinance on economic development. **Ahamed and Gutiérrez-Romero (2021)** examined the relationship between financial inclusion and poverty across 79 developing countries. The study found that financial inclusion helps reduce poverty, mitigate the negative effects of income inequality, and enhance economic resilience during crises such as the COVID-19 pandemic. However, it did not specifically analyse the role of microfinance in India. **NABARD (2022-23)** in its Status of Microfinance in India report highlighted continuous growth in savings, bank credit, and women's participation under the SHG-Bank Linkage Programme. The report recognized microfinance as an effective instrument for financial inclusion, rural development, and livelihood enhancement while also identifying challenges such as regional disparities, loan quality, financial literacy, and digital adoption. **MFIN (2023-24)** report highlighted the expansion of India's microfinance sector and its increasing outreach among women and low-income households as a significant achievement in financial inclusion. The report emphasized responsible lending practices, portfolio quality management, prevention of over-indebtedness, digital transformation, and an effective regulatory framework. **Meki and Quinn (2024)** reviewed the evolving nature of microfinance and observed that it has expanded beyond microcredit to include savings, insurance, digital financial services, and flexible repayment mechanisms. The study identified customer-centric services, digital innovation, financial sustainability, and consumer protection as key pillars for the future development of microfinance. Overall, the

existing literature indicates that microfinance plays a significant role in promoting financial inclusion, poverty alleviation, women's empowerment, entrepreneurship development, and rural development. However, most studies have focused on a specific dimension of microfinance, a particular programme, or a limited geographical area. In the Indian context, comprehensive studies based on recent secondary data examining the overall role of microfinance in economic development and financial inclusion remain limited. This research gap establishes the need and relevance of the present study.

3. OBJECTIVES OF THE STUDY :

- To study the concept and evolution of microfinance in India.
- To analyse the role of microfinance in promoting economic development and financial inclusion in India.
- To assess the major challenges affecting microfinance in achieving financial inclusion and sustainable economic development and to provide suggestions for strengthening its contribution.

4. RESEARCH METHODOLOGY :

The present study is descriptive and analytical in nature and is based on secondary data. The required data have been collected from authentic sources, including the Reserve Bank of India (RBI), the National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD), the Ministry of Finance, the Small Industries Development Bank of India (SIDBI), annual reports of leading Microfinance Institutions (MFIs) and the Microfinance Institutions Network (MFIN), the World Bank, government publications, and published research articles. The study utilizes the most recent secondary data available to analyse the role of microfinance in India's economic development and financial inclusion.

5. RESULTS AND DISCUSSION :

5.1 Economic Development and Financial Inclusion: A Theoretical Perspective :

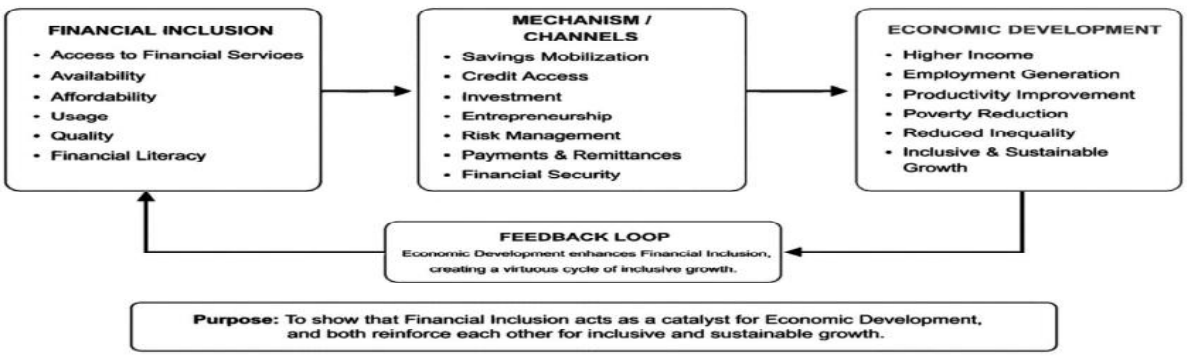
Economic development is a broad, continuous, and multidimensional process that aims not only at increasing Gross Domestic Product (GDP) or national income but also at improving living standards, education, healthcare, employment, productivity, and social welfare. It includes important dimensions such as capital formation, technological advancement, infrastructure development, good governance, efficient utilization of resources, and social equity. According to Myint and Krueger (2016), *economic development is a process of structural transformation of an economy through advanced technologies, resulting in improvements in labour productivity, employment, income, and living standards.*

Therefore, true economic development is considered meaningful only when its benefits reach all sections of society, particularly vulnerable groups. To achieve this objective, the concept of inclusive development has evolved, in which financial inclusion is considered an important means of expanding economic opportunities. According to Amartya Sen's Capability Approach, *development becomes effective only when every individual has equal access to opportunities for enhancing their capabilities and economic well-being.* Similarly, Muhammad Yunus highlighted the importance of access to credit for economic and social empowerment by stating that *"Credit is a fundamental human right."*

Financial inclusion aims to provide all sections of society, particularly the poor, rural communities, women, and other disadvantaged groups, with simple, secure, and affordable access to formal financial services such as savings, credit, insurance, payments, remittances, pensions, and digital financial services. The concept emerged as a response to the problem of financial exclusion. According to Sinclair (2001), *financial exclusion refers to a situation where individuals are deprived of essential financial services due to barriers related to accessibility, cost, eligibility conditions, marketing practices, or other constraints.* The World Bank (2008) defines *"financial inclusion as the process of ensuring responsible and sustainable access to useful and affordable financial products and services that meet the needs of individuals and businesses."* Similarly, the Rangarajan Committee (2008) and the Reserve Bank of India (2021) have *defined "financial inclusion as the process of ensuring timely access to adequate and affordable financial services for vulnerable and low-income groups."*

In India, the formal journey of financial inclusion began with the Co-operative Societies Act, 1904. Subsequently, initiatives such as bank nationalization (1969), Regional Rural Banks (1975), NABARD (1982), the Self-Help Group-Bank Linkage Programme (SHG-BLP), Pradhan Mantri Jan-Dhan Yojana (PMJDY), Aadhaar-enabled banking, digital payment systems, and FinTech have played a significant role in expanding financial access. As a result, financial inclusion is no longer limited to ensuring access to banking services;

Relationship between Financial Inclusion and Economic Development



rather, it has become an effective instrument for promoting savings, investment, entrepreneurship, employment, and income generation.

Thus, economic development and financial inclusion are complementary concepts, as wider and affordable access to financial services expands economic opportunities, reduces poverty and inequality, promotes women's empowerment, and strengthens rural and inclusive development. In the Indian context, microfinance and Self-Help Groups (SHGs) serve as important instruments for connecting financially excluded populations with the formal financial system and promoting economic empowerment and sustainable development.

5.2 Microfinance: Concept and Evolution :

The concept of Microfinance has been defined by various national and international institutions in different ways. According to the Reserve Bank of India (RBI), *microfinance refers to the provision of small amounts of savings, credit, and other financial services to poor and low-income people in rural, semi-urban, and urban areas, enabling them to increase their income and improve their living standards.* The Consultative Group to Assist the Poor (CGAP) defines *"microfinance as the provision of loans, savings, and other basic financial services to poor people."* Similarly, the International Labour Organization (ILO) defines *"microfinance as an economic development approach that provides financial services to low-income people through institutional mechanisms.* Based on these definitions, microfinance can be understood as a system of providing microcredit, savings, insurance, money transfer, and other financial services to poor individuals, low-income households, women, rural communities, and small entrepreneurs. Its primary objective is to integrate financially excluded groups into the formal financial system and promote self-employment, income generation, women's empowerment, poverty alleviation, and financial inclusion.

The historical roots of microfinance can be traced back to the Pawn Shops of 16th-century Europe, the Irish Loan Fund System of the 18th century, and the Financial Cooperatives established in 19th-century Germany. However, during the 1950s-1970s, state-supported agricultural credit programmes failed to achieve the desired outcomes due to problems such as high loan defaults, political interference, and institutional weaknesses. The modern microfinance movement is generally considered to have started in the 1970s. ACCION International launched its first microcredit programme in Brazil in 1973. Subsequently, in 1974, Professor Muhammad Yunus provided an unsecured loan of US$27 to 42 poor villagers in Bangladesh, which led to the establishment of the Grameen Bank in 1976. This model demonstrated the potential of small loans in promoting self-employment, women's empowerment, and poverty alleviation. Later, FINCA and Bank Rakyat Indonesia

made significant contributions to the global expansion of microfinance. In 2005, the United Nations declared the International Year of Microcredit, and in 2006, Professor Muhammad Yunus and the Grameen Bank were awarded the Nobel Peace Prize, providing global recognition to the microfinance movement. Over time, the scope of microfinance expanded beyond credit delivery and included savings, insurance, money transfer, and digital financial services. Microfinance Institutions (MFIs) further strengthened financial inclusion and institutional sustainability.

In India, the tradition of microfinance evolved from community savings groups, the cooperative movement, and informal credit systems. After Independence, bank nationalization in 1969, the establishment of Regional Rural Banks (RRBs) in 1975, and the creation of NABARD in 1982 provided a strong foundation for expanding rural financial services. The establishment of SEWA Bank in 1974 played an important role in providing financial services to women and disadvantaged sections of society. The most significant initiative in the development of modern microfinance in India was the launch of the Self-Help Group–Bank Linkage Programme (SHG-BLP) by NABARD in 1992, which played a crucial role in connecting rural poor, particularly women, with the formal financial system. Subsequently, the active participation of Microfinance Institutions (MFIs), Self-Help Groups (SHGs), NGOs, and Small Finance Banks accelerated the expansion of the sector. In recent years, the Microfinance Regulatory Framework, 2022 introduced by RBI has played an important role in strengthening transparency, responsible lending practices, and consumer protection. Today, microfinance has become an important pillar of India's financial inclusion strategy, promoting rural development, women's empowerment, self-employment, poverty alleviation, and inclusive economic development. Its key components- microcredit, microsavings, microinsurance, and money transfer- provide essential financial services to low-income groups, integrate them into the formal financial system, and contribute significantly to strengthening financial inclusion.

5.3 Current Status of Microfinance in India :

At present, the microfinance sector has emerged as one of the most important pillars of financial inclusion in India. Institutions such as NBFC-MFIs, Banks, Small Finance Banks (SFBs), NBFCs, and the Self-Help Group-Bank Linkage Programme (SHG-BLP) continue to expand access to formal financial services among low-income households, women, rural communities, and micro-entrepreneurs. The sector has played a significant role in promoting credit access, livelihood generation, entrepreneurship development, poverty reduction, and inclusive economic growth.

CRIF - Overall status of portfolio, unique borrowers and loan accounts								
	31-Mar-25				31-Mar-26			
Type of entity	No. of Entities	Unique Borrowers (Cr)	Active loan accounts (Cr)	Portfolio O/s (Rs Cr)	No. of Entities	Unique Borrowers (Cr)	Active loan accounts (Cr)	Portfolio O/s (Rs Cr)
NBFC-MFIs	93	3.7	5.3	1,47,566	86	3.2	4.3	**1,43,586**
Banks	17	3.2	4.5	1,22,826	17	2.3	3.1	**86,033**
SFB	10	1.9	2.1	59,252	10	1.4	1.6	**51,238**
NBFC	92	1.2	1.2	42,129	96	0.9	1.0	**40,013**
Others		0.1	0.1	3,256		0.2	0.2	**4,304**
Total	**212**	**7.8**	**13.3**	**3,75,030**	**209**	**6.4**	**10.1**	**3,25,174**
DPD 0 - 179	**212**		**11.1**	**3,32,636**	**209**		**7.5**	**2,71,267**
Equifax - Overall status of portfolio, unique borrowers and loan accounts								
Total	**176**	**7.5**	**13.0**	**3,73,422**	**188**	**6.5**	**10.2**	**3,32,415**
DPD 0 - 179	**176**		**11.1**	**3,34,746**	**188**		**7.6**	**2,76,742**

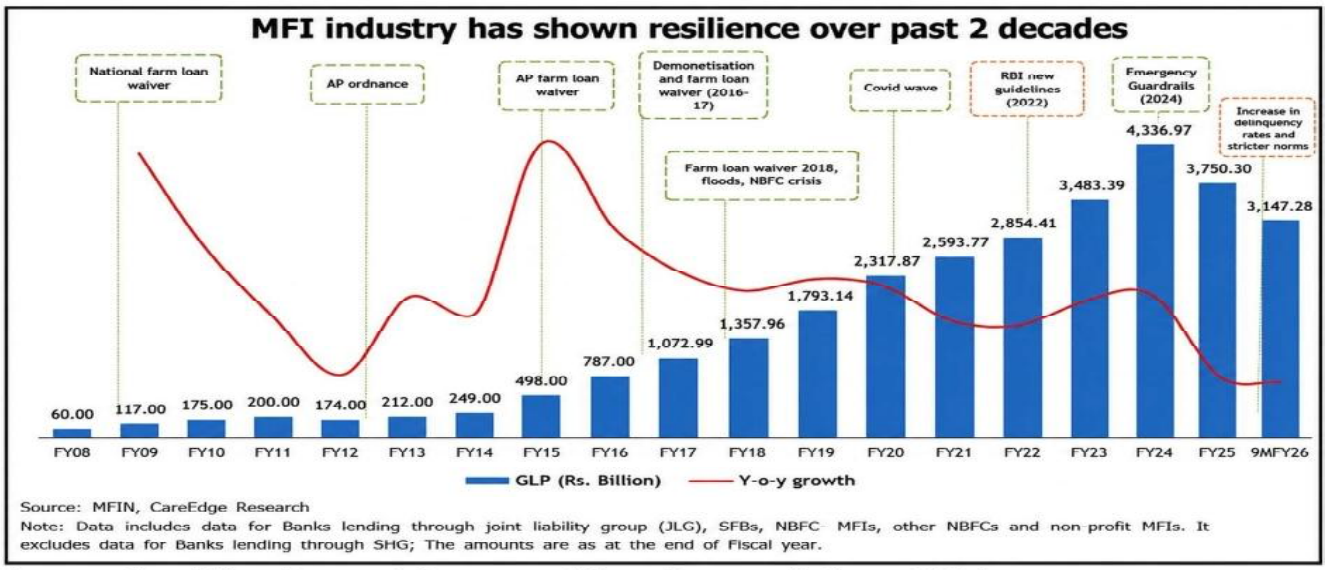
Source: *Microfinance Industry Network (MFIN). Micrometer Q4 FY2025–26 (57th Edition).*

Figure 1 presents the overall status of the Indian microfinance industry based on Equifax High Mark data as on 31 March 2026, published in the MFIN Micrometer Q4 FY2025-26 (57th Edition), the Indian microfinance industry recorded a total Gross Loan Portfolio (GLP) of Rs.3,25,174 crore, covering 6.4 crore unique borrowers, 10.1 crore active loan accounts, and 209 lending institutions**.** Between 31 March 2025 and 31 March 2026, the industry's GLP declined by 13.3% year-on-year, while the number of borrowers and active loan accounts also decreased. This decline was mainly driven by banks' portfolio realignment, tighter underwriting standards, regulatory measures, and the migration of some borrowers from microfinance to retail lending portfolios. Institution-wise, NBFC-MFIs remained the largest providers of micro-credit with an outstanding portfolio of Rs.1,43,586 crore (44.2%), followed by Banks with Rs.86,033 crore (26.5%), Small Finance Banks with Rs. 51,238 crore (15.8%), NBFCs with Rs.40,013 crore (12.3%), and Other MFIs with Rs.4,304 crore (1.3%). These figures indicate that despite the recent moderation in portfolio growth, NBFC-MFIs continued to maintain their leading position in the microfinance sector. Furthermore, as on 31 March 2026, the aggregate Assets Under Management (AUM) of NBFC-MFIs increased to Rs.1,47,331 crore, representing a 4.7% annual growth over March 2025 and a 10.2% increase compared with December 2025 (MFIN Micrometer Q4 FY2025-26, 57th Edition). The growth in AUM indicates that, despite the moderation in overall industry growth, the microfinance sector continued to receive sustained institutional financial support.

5.4 Growth and Performance of the Indian Microfinance Industry :

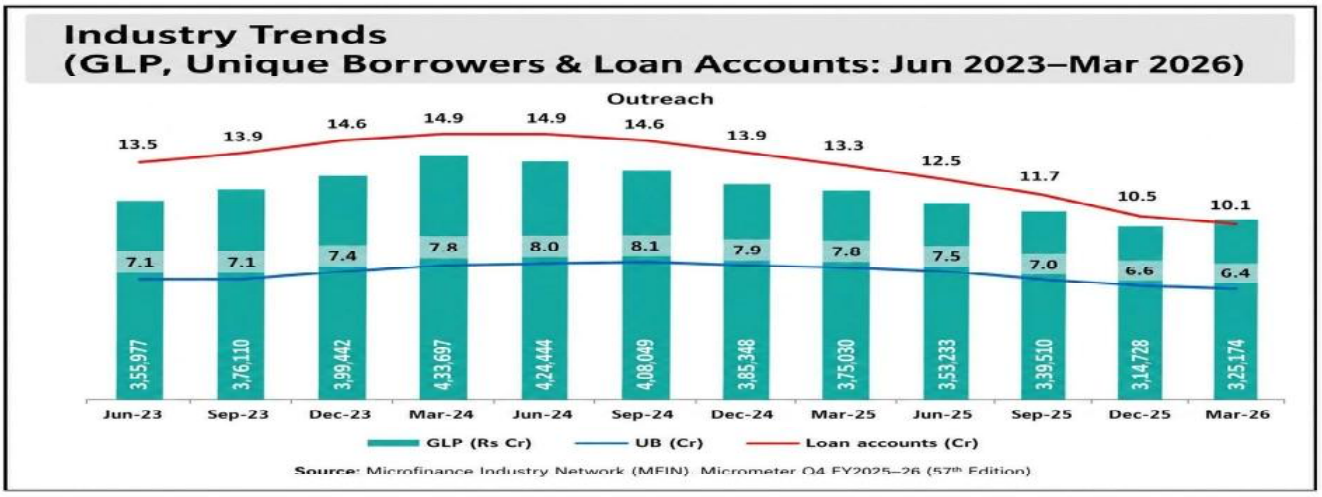
The Indian microfinance industry has witnessed remarkable growth and institutional expansion over the past two decades. Despite facing various economic, financial, and regulatory challenges, the sector has continuously strengthened financial inclusion through

the expansion of its outreach, loan portfolio, and financial services. An analysis of the industry's growth trajectory and recent performance clearly demonstrates its long-term expansion, resilience, and ability to adapt to evolving market and regulatory conditions.



Source: *CareEdge, Research Report on Micro Finance Industry 2026*

Figure 2 illustrates the long-term growth trajectory of the Indian microfinance industry. Despite experiencing several external shocks including the farm loan waivers, demonetisation, the COVID-19 pandemic, RBI's revised regulatory framework, and the Emergency Guardrails introduced in 2024 the sector has demonstrated remarkable resilience over the past two decades. The Gross Loan Portfolio expanded consistently from Rs.60 billion in FY2008 to Rs.4,336.97 billion in FY2024, before moderating to Rs.3,750.30 billion in FY2025 and Rs.3,147.28 billion by the first nine months of FY2026 (9MFY26). This trend reflects both the sector's long-term expansion and its ability to recover from economic and regulatory disruptions.



Source : *MFIN, Micrometer Q4 FY2025-26 (57th Edition).*

Figure 3 illustrates the recent industry trends, indicating that the microfinance sector has entered a phase of consolidation. Between June 2023 and March 2026, the industry's Gross Loan Portfolio (GLP) increased steadily until March 2024, after which it recorded a gradual decline. During the same period, the number of unique borrowers increased from 7.1 crore to a peak of 8.1 crore, before declining to 6.4 crore, while loan accounts decreased from their peak of 14.9 crore to 10.1 crore by March 2026. These trends indicate that lenders have shifted their focus from aggressive expansion to portfolio quality, prudent credit assessment, and responsible lending. Overall, although the Indian microfinance sector is experiencing short-term moderation in portfolio growth and borrower outreach, its institutional framework remains strong. NBFC-MFIs continue to play a leading role in financial inclusion, while improvements in portfolio quality, operational efficiency, and regulatory oversight are expected to further strengthen its long-term sustainability. Consequently, microfinance continues to serve as a vital instrument for promoting financial inclusion, women's empowerment, rural development, entrepreneurship, and inclusive economic growth in India.

5.5 Role of Microfinance in Economic Development and Financial Inclusion :

Microfinance is not merely a mechanism for providing credit; rather, it is an effective instrument for promoting financial inclusion and inclusive economic development. In India, it has connected underserved and low-income populations with formal financial services, thereby contributing significantly to poverty alleviation, women's empowerment, agricultural and rural development, entrepreneurship, employment generation, and digital financial inclusion, while supporting the achievement of inclusive and sustainable development goals.

(1) Microfinance as a Catalyst for Financial Inclusion : Microfinance has emerged as an effective instrument of financial inclusion in India by integrating low-income households, women, rural families, and micro-entrepreneurs into the formal financial system. Through Microfinance Institutions (MFIs), banks, Small Finance Banks (SFBs), NBFCs, and the Self-Help Group-Bank Linkage Programme (SHG-BLP), access to credit, savings, insurance, and other financial services has expanded. According to the MFIN Micrometer Q4 FY2025-26 (57th Edition), as of 31 March 2026, the Indian microfinance industry served 6.4 crore unique borrowers through 10.1 crore active loan accounts, operated by 209 lending institutions, with a Gross Loan Portfolio (GLP) of Rs. 3,25,174 crore, making it a strong pillar of the country's financial inclusion ecosystem. This demonstrates the significant role of

microfinance in expanding access to formal financial services and promoting inclusive economic development.

(2) Microfinance for Poverty Alleviation and Economic Empowerment : Microfinance is an effective instrument for poverty alleviation and economic empowerment, as it provides timely and affordable credit to low-income households, thereby promoting income-generating activities, agricultural investment, and micro-enterprises. According to Muhammad Yunus (2007), access to credit is an important means of enabling the poor to pursue entrepreneurship and move towards self-reliance. Khandker (2005) also found that microfinance programmes significantly improve the income, consumption expenditure, and asset creation of rural households. UNDP (2023) recognized microfinance as an important instrument for achieving SDG-1 (No Poverty) and SDG-8 (Decent Work and Economic Growth). Thus, microfinance plays a significant role in expanding economic opportunities, reducing poverty, strengthening livelihoods, and promoting inclusive economic development.

(3) Microfinance for Women's Empowerment and Social Development : One of the most significant contributions of microfinance in India has been the promotion of women's economic and social empowerment. Through the Self-Help Group-Bank Linkage Programme (SHG-BLP) and Joint Liability Groups (JLGs), women have gained access to formal financial services, regular savings, and institutional credit, enhancing their economic self-reliance, decision-making capacity, financial literacy, and entrepreneurial capabilities. According to NABARD, Status of Microfinance in India 2023-24, as of 31 March 2024**,** 12.3 million SHGs were linked with banks, representing 177 million families and maintaining an outstanding loan portfolio of Rs.2.59 lakh crore. Pitt et al. (2006) found that participation in microfinance programmes significantly improved women's decision-making power and control over household resources. Similarly, Sharma and Bansal (2017) concluded that microfinance strengthens women's self-confidence, economic decision-making capacity, and social participation. Thus, microfinance promotes women's empowerment, gender equality, and social inclusion, thereby contributing significantly to inclusive and sustainable development.

(4) Microfinance for Agricultural and Rural Development : Agriculture and rural development are the foundations of India's economy and livelihoods. Microfinance plays a significant role in strengthening agricultural productivity, rural income, and livelihoods by providing small and marginal farmers and rural households with access to formal financial services. Through Microfinance Institutions (MFIs), the Self-Help Group-Bank Linkage Programme (SHG-BLP), and other financial institutions, affordable finance is provided for

seeds, fertilizers, farm equipment, irrigation, dairy, animal husbandry, and other agriculture-related activities. According to NABARD (2024), the SHG-BLP has made a significant contribution to extending institutional finance to rural households with limited access to banking services. In addition, NABARD's (2023) Livelihood and Enterprise Development Programme (LEDP) promotes skill development and capacity building, along with financial support for agriculture and rural livelihood activities. Thus, microfinance strengthens agricultural investment, productivity, rural income, and livelihoods, thereby making a significant contribution to inclusive and sustainable economic development through agricultural and rural development.

(5) Microfinance for Entrepreneurship and Employment Generation : Microfinance is an important instrument for promoting entrepreneurship, self-employment, and employment generation, particularly in rural areas. It provides affordable finance for micro and small enterprises, cottage industries, dairy farming, animal husbandry, fisheries, handicrafts, and other agriculture-based activities, thereby expanding productive investment and income opportunities. According to NABARD (2024), microfinance and the Self-Help Group–Bank Linkage Programme (SHG-BLP) have significantly supported rural livelihoods and agriculture-related activities. SIDBI (2024) and MFIN (2026) reported that microfinance plays a vital role in expanding micro-enterprises and generating local employment, especially in rural and semi-urban areas. Karmakar (2008) and Das and Sahu (2012) also found that microcredit enables beneficiaries to transition from subsistence-based activities to profitable enterprises. Thus, microfinance promotes entrepreneurship and employment generation, contributing significantly to inclusive economic development.

(6) Microfinance for Digital Financial Inclusion : Digital technology has significantly strengthened the outreach, efficiency, and transparency of microfinance in India. The Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (PMJDY), Aadhaar, UPI, Direct Benefit Transfer (DBT), mobile banking, and digital payment systems have made loan disbursement and repayment faster, safer, more transparent, and cost-effective. According to the Ministry of Finance (2025), more than 55 crore bank accounts have been opened under PMJDY. NPCI (2025-26) reported that UPI processes over 18 billion digital transactions per month. RBI (2024) also noted that digital financial inclusion has expanded access to formal financial services while significantly improving the operational efficiency of microfinance institutions. Thus, the integration of microfinance with digital infrastructure is strengthening financial inclusion and accelerating inclusive economic development.

(7) Microfinance for Sustainable and Inclusive Economic Development : Microfinance is an important foundation for sustainable and inclusive economic development, as it promotes savings, productive investment, entrepreneurship, employment generation, and income growth. Improved access to financial services strengthens households' financial resilience, asset creation, and financial security. According to the United Nations (UN, 2015), financial inclusion is a key instrument for achieving SDG-1 (No Poverty), SDG-5 (Gender Equality), SDG-8 (Decent Work and Economic Growth), and SDG-10 (Reduced Inequalities). The World Bank (2022), UNDP (2023), RBI (2024), and NABARD (2024) have also highlighted that microfinance contributes significantly to long-term inclusive economic development by strengthening productive investment, women's empowerment, rural development, and financial inclusion. Thus, microfinance is not merely a mechanism for providing credit, but an effective instrument for promoting sustainable, inclusive, and equitable economic development.

5.6 Key Challenges Faced by the Microfinance Sector :

Microfinance has made a significant contribution to financial inclusion, rural development, women's empowerment, and livelihood promotion in India. However, despite its progress, the sector continues to face several structural and operational challenges that affect its outreach, effectiveness, and long-term sustainability.

(1) Regional Disparities and Outreach Challenges : One of the major challenges faced by the microfinance sector is its uneven geographical distribution. Microfinance activities are largely concentrated in southern states such as Tamil Nadu, Karnataka, Kerala, and Andhra Pradesh, whereas states like Bihar, Jharkhand, Uttar Pradesh, Assam, and several north-eastern states have comparatively limited access. This regional imbalance restricts the equitable distribution of financial services and highlights the need for expanding microfinance outreach, strengthening institutional capacity, and improving financial access in underserved regions.

(2) Credit Risks and Financial Sustainability Challenges : The relatively high operational costs involved in providing small loans may lead to higher interest rates, creating financial pressure on low-income borrowers. The practice of borrowing from multiple institutions can result in over-indebtedness. The Andhra Pradesh Microfinance Crisis of 2010 highlighted the importance of responsible lending, borrower protection, and credit discipline. Furthermore, agricultural risks, income instability, and economic uncertainties affect loan repayment capacity and asset quality. Therefore, effective risk management, proper credit

assessment, and responsible lending practices are essential for ensuring sectoral sustainability.

(3) Financial Literacy and Digital Inclusion Challenges : Financial inclusion is not limited to access to financial services but also depends on their effective utilization. Many rural and low-income borrowers lack adequate knowledge regarding credit management, savings, insurance, and digital financial services. Although digital payments, UPI, Aadhaar-based services, and FinTech solutions are expanding financial access, limited internet connectivity, availability of digital devices, and inadequate technological knowledge continue to remain challenges. Therefore, strengthening financial and digital literacy is essential for improving the effectiveness of microfinance services.

(4) Regulatory and Institutional Challenges : An effective and transparent regulatory framework is essential for the stability of the microfinance sector. The Microfinance Regulatory Framework, 2022 introduced by the Reserve Bank of India (RBI) has promoted responsible lending, consumer protection, and transparency in the sector. However, small microfinance institutions continue to face challenges related to capital adequacy, compliance costs, technological investment, and institutional capacity building, which may affect their expansion and long-term sustainability.

(5) Economic Shocks and Long-term Sustainability : External economic shocks, such as the COVID-19 pandemic, exposed the vulnerabilities of the microfinance sector. Lockdowns affected the income and livelihoods of low-income households, leading to reduced loan repayments and liquidity challenges for microfinance institutions. Although recovery has been supported through loan restructuring, repayment assistance, and expansion of digital services, microfinance institutions need to strengthen crisis management, portfolio diversification, digital innovation, and sustainable operational strategies to ensure long-term resilience.

6. CONCLUSION AND RECOMMENDATIONS :

Conclusion : Microfinance has emerged as an important instrument for promoting financial inclusion and inclusive economic development in India. The study reveals that MFIs, SHG-BLP, Small Finance Banks, and digital financial services have played a significant role in integrating low-income groups, rural households, women, and micro-entrepreneurs into the formal financial system. Microfinance has made a positive contribution to poverty alleviation, women's empowerment, rural development, agriculture and allied activities, entrepreneurship development, and employment generation. SHG-BLP and digital financial innovations have further strengthened financial participation, self-reliance, and

access to financial services among underserved sections. HIowever, challenges such as regional disparities, over-indebtedness, limited financial and digital literacy, and regulatory issues continue to affect its effectiveness. Therefore, strengthening responsible lending practiccs, institutional framcworks, tcchnological innovation, and a customcr-ccntric approach is essential for ensuring the long-term sustainability and effectiveness of microfinance in India.

Recommendations : To make microfinance more effective, inclusive, and sustainable in India, it is essential to promote digital transformation, FinTech integration, financial literacy, and capacity building. The adoption of mobile banking, UPI, digital payments, biometric identification, and digital credit assessment can improve accessibility, transparency, and efficiency in loan delivery and repayment processes. A strong regulatory framework by RBI, responsible lending practices, and customer protection measures are necessary to ensure financial discipline and long-term stability of the sector. Targeted financial products for women, small farmers, rural entrepreneurs, and marginalized groups, along with better coordination among MFIs, NABARD, banks, SHGs, and government institutions, can expand financial services in underserved regions. Government initiatives such as PMJDY, MUDRA, and SHG-BLP should be effectively integrated with microfinance programmes to strengthen financial inclusion. Furthermore, promoting green microfinance for activities such as renewable energy, organic farming, and sustainable enterprises can support environmentally sustainable development. Through technological innovation, institutional collaboration, and inclusive financial strategies, microfinance can play a more significant role in achieving sustainable and inclusive economic development in India.

References :

- Basu, Priya & Srivastava, Pradeep, (2005). "Scaling-up microfinance for India's rural poor," Policy Research Working Paper Series 3646, The World Bank.
- Pitt, M. M., Khandkcr, S. R., & Cartwright, J. (2006). Empowcring womcn with micro finance: Evidence from Bangladesh. Economic Development and Cultural Change, 54(4), 791-831. DOI: 10.1086/503580
- K. G. Karmakar (ed): Microfinance in India, Sage, Los Angeles, 2008,
- Taylor, M. (2012). The antinomies of financial inclusion: Debt, distress and the workings of Indian microfinance. Journal of Agrarian Change, 12(4), 601-610.DOI: 10.1111/j.1471-0366.2012.00377.x
- Alexis Diamond, (2012). Poverty Literature Review: Microfinance and Poverty Reduction. World Bank.

- Chakravarty, Satya R. & Pal, Rupayan, 2013. "Financial inclusion in India: An axiomatic approach," Journal of Policy Modeling, Elsevier, vol. 35(5), pages 813-837. DOI: 10.1016/j.jpolmod.2012.12.007

- Chakravarty, Satya R. & Pal, Rupayan, 2013. "Financial inclusion in India: An axiomatic approach," Journal of Policy Modeling, Elsevier, vol. 35(5), pages 813-837. DOI: 10.1016/j.jpolmod.2012.12.007

- Myint H, Krueger AO (2016) Economic development. https://www.britannica.com/money/economic-development
- Hermes, N., & Hudon, M. (2018). Determinants of the performance of microfinance institutions: A systematic review. Journal of Economic Surveys, 32(5), 1483-1513. DOI: 10.1111/joes.12290
- Kavita, & Suman. (2019). Determinants of Financial Inclusion in India: A Literature Review. Indian Journal of Finance, 13(11), 53-61.DOI: 10.17010/ijf/2019/v13i11/148417
- Venumuddala, V. R. (2020). Patterns in Demand Side Financial Inclusion in India: An Inquiry Using IHDS Panel Data. arXiv. https://doi.org/10.48550/arXiv.2005.08961
- Ahamed, M., & Gutiérrez-Romero, R. (2021). COVID-19 response needs to broaden financial inclusion to curb the rise in poverty. World Development, 138, 105229. DOI: 10.1016/j.worlddev.2020.105229□
- Muhammad Meki, Simon Quinn, (2024). Microfinance: an overview, Oxford Review of Economic Policy, Volume 40, Issue 1, Pages 1-7, https://doi.org/10.1093/oxrep/grae004
- Sharma, et al. (2023). Role of microfinance institutions in financial inclusion in India. Journal of Contemporary Issues in Business and Government, 29(1). DOI: 10.47750/cibg.2023.29.01.048
- Teena, & Kumar, J. (2024). Microfinance and financial inclusion: A study of role and challenges. AJASRA, 13(2).
- Jalhare, C. (2025). The role of microfinance in economic development: A critical review of impact and effectiveness. International Journal of Innovations in Science Engineering and Management, 4(1), 130-135. https://doi.org/10.69968/ijisem.2025v4il130-135
- National Bank for Agriculture and Rural Development. (2025). Status of Microfinance in India 2024–25.
- Reserve Bank of India. (2025). Annual Report 2024–25.
- World Bank. (2025). The Global Findex Database 2025.
- United Nations. Financial Inclusion and Sustainable Development Goals (SDGs).
- Microfinance Institutions Network. (2026). Micrometer Reports.
- Sa-Dhan. (2025). Bharat Microfinance Report 2025.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 162–168

'छोटा जादूगर' और 'परायी प्यास का सफर' कहानियों में निहित बाल श्रम

उपासना, शोधार्थी
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

शोध सार -

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जीवन यापन के लिए उसे धन की आवश्यकता पड़ती ही है। इसके लिए वह समाज में तरह-तरह के कार्यों को करता है। समाज में धन उपार्जन का दायित्व घर के बड़ो पर रहता है लेकिन इनकी अनुपस्थिति में या तमाम विषम परिस्थितियों में इस दायित्व का निर्वहन बालक स्वयं करने लगते हैं। जिससे उनके शारीरिक विकास के साथ मानसिक विकास पर भी प्रभाव पड़ता है। विपन्नता और असुरक्षा बालक को उसकी वास्तविक आयु से बहुत पहले परिपक्व और गंभीर बना देती है। प्रस्तुत शोध आलेख हिंदी साहित्य की दो प्रसिद्ध बाल मनोवैज्ञानिक कहानियों में निहित बाल श्रम का विश्लेषण करता है।

बीज शब्द - बाल्यावस्था, बाल मनोविज्ञान, हिंदी कहानी, बाल श्रम, भारतीय समाज, आजीविका, अभावजन्य प्रौढ़ता।

शोध आलेख -

"बच्चे राष्ट्र की आत्मा है क्योंकि यही हैं जिनको लेकर राष्ट्र पल्लवित हो सकता है, यही हैं जिनमें अतीत सोया हुआ है, वर्तमान करवटें ले रहा है और भविष्य के अदृश्य बीज बोए जा रहे हैं।"[1]

बाल्यावस्था मानव के समूचे जीवन की आधारशिला है तथा इस अवस्था में ही उसके जीवन को विकास की सही संतुलित दिशा मिलनी चाहिए जिससे स्वस्थ मानव जीवन निर्मित हो सके। लेकिन जीवन के उतार चढ़ाव उन्हें समय से पहले ही बढ़ा कर जाते हैं। बालपन की

चंचलता, चपलता को छोड़ वे गंभीर होने लगते हैं और बचपन को देते हैं। शिक्षा से वंचित रह जाने के साथ-साथ उनमें शारीरिक कमजोरी घर कर लेती है। बालक क्या सोचता है, उसकी अनुभूतियां क्या हैं यह जान पाना बहुत कठिन काम है। अपने एक भाषण में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "शुरू के वर्षों में जो आदतें पड़ जाती हैं और बच्चे जिस तरह सोचने लगते हैं, उसका सारे जीवन पर असर पड़ता है इसलिए मैं इस बात से पूरी तरह से सहमत हूं कि बच्चों पर अधिक ध्यान दिया जाए और इसके लिए राष्ट्रीय नीति तय की जाए।"[2] बालकों के मन के भावों और विचारों को समझने के लिए बालमनोविज्ञान की आवश्यकता पड़ती है।

मनोविज्ञान को दर्शनशास्त्र की एक शाखा के रूप में माना जाता है। मनोविज्ञान के अंतर्गत वातावरण में किसी न किसी प्राणी के व्यवहार और अनुभूतियों का अध्ययन होता है तथा उसे समझने का प्रयास किया जाता है। 'मनोविज्ञान' अंग्रेजी भाषा के साइकोलॉजी शब्द का हिंदी रूपांतरण है। इसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के दो शब्दों psyche और logos से मिलकर हुई है। Psyche का अर्थ है मन अथवा आत्मा, logos का अर्थ होता है विचार करना अथवा अध्ययन करना। भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न रूपों में इसका अर्थ लगाया जाता रहा है। अतः मनोविज्ञान का अर्थ है मन अथवा आत्मा का अध्ययन।

फ्रायड के अनुसार, "मनोविज्ञान बाहरी-भीतरी दबावों एवं प्रभावों के अधीन व्यक्ति के मन में ज्ञान अज्ञान पक्षों, अनुभूतियों, क्रिया-प्रतिक्रियाओं, प्रभावों इत्यादि का विश्लेषक शास्त्र है।"[3]

अतः मनोविज्ञान विज्ञान की एक ऐसी शाखा है जो मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभव व व्यवहार का अध्ययन करने में सहायक है। संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, चिंतन, तर्क, अवधान, रुचि, स्मरण, विस्मरण, संवेग, कल्पना आदि सभी प्रकार की मानसिक क्रियाओं का अध्ययन मनोविज्ञान के अंतर्गत आता है।

बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है इसमें बालकों के व्यवहार का साधारण तथा असाधारण परिस्थितियों में अध्ययन किया जाता है इसके साथ ही उनके शारीरिक व मानसिक विकास का भी अध्ययन किया जाता है।

लोकभारती प्रमाणित हिंदी कोश के अनुसार, 'बाल का अर्थ बालक, नासमझ व्यक्ति जो सयाना न हुआ हो।' मनोविज्ञान का अर्थ- 'वह शास्त्र जिसमें चित्त की वृत्तियां या मन में उठने वाले विचारों आदि का विवेचन होता है।'[4]

हिंदी शब्दकोश के अनुसार, 'बाल का अर्थ बच्चा, बालक, 16 वर्ष से कम उम्र का बालक, नासमझ।' मनोविज्ञान का अर्थ- 'वह विज्ञान जिसमें मानव मन की विभिन्न अवस्थाओं और क्रियाओं का तथा उसके प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।'[5]

मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार, 'बाल मनोविज्ञान का अर्थ बाल स्वभाव की व्युत्पत्ति तथा विकास के विभिन्न पक्षों का क्रमानुसार निरूपण।'[6]

अतः 'बाल मनोविज्ञान इस बात की खोज करता है कि जन्म के समय से ही बालक में कौन-कौन से परिवर्तन होते हैं, चाहे वो शारीरिक हो या मानसिक उसके समुचित विकास को समझने के लिए हमें बाल मनोविज्ञान की दृष्टि अपनानी होती है।'[7] बाल मनोविज्ञान में बाल्यावस्था में होने वाले क्रमिक विकास व्यक्तित्व संबंधी विशेषताओं और मनोदशा का अध्ययन किया जाता है।

बाल श्रम के कारण बालकों का पूर्ण रूप से विकास नहीं हो पाता जिससे एक उन्नत राष्ट्र के निर्माण में बाधा उत्पन्न होती है। **बालश्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम 1986**, ऐसे किसी भी व्यक्ति जिसने 14 वर्ष की आयु पूरी नहीं की हो, के रोज़गार को प्रतिबंधित करता है। इस अधिनिमय तथा अन्य अधिनियमों के उपबंधों के उल्लंघन में बच्चों के रोजगार हेतु दण्ड निर्धारित करता है।[8]

वर्तमान समय में यूनिसेफ, सरकार तथा निजी एंजेसियों के साथ मिलकर बाल मजदूरी समाप्त करने के लिए आवश्यक नीतियां तैयार करता है। साथ ही बाल मजदूरी को जन्म देने वाली उन व्यावसायिक पद्धतियों व उनकी सप्लाई चैन के विकल्प खोजने के लिए काम करता है। वैश्विक तकनीकी समन्वय के माध्यम से आई.एल.ओ., जो बाल मजदूरी के उन्मूलन संबंधी अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में जाना जाता है, बाल मजदूरी के उन्मूलन की प्रक्रिया तथा औद्योगिक शोषण से बच्चों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 1988 में प्रारंभ की गई राष्ट्रीय बाल मजदूरी परियोजना एक समयबद्ध परियोजना है जिसका उद्देश्य बाल मजदूरी के निषेध के प्रवर्तन को और अधिक तीव्र करना तथा बाल मजदूरों के अभिभावकों को रोजगार मुहैया कराना है।[9]

हिंदी साहित्यकारों ने भी बाल जीवन जैसे कोमल और महत्वपूर्ण विषय पर अपनी लेखनी चलाई है जिसमें बाल जीवन व उनको प्रभावित करने करने वाले तत्वों का चित्रण है। चाहे वह सूरदास द्वारा रचित बाल वर्णन हो अथवा बालक वर्ग के लिए विशेष रूप से छपी जाने वाली पत्रिकायें। बाल मनोविज्ञान को केंद्र में रखकर हिंदी साहित्य में तमाम कहानियां मिलती हैं जैसे- प्रेमचंद द्वारा रचित ईदगाह, बड़े भाई साहब, चोरी; मार्कण्डेय द्वारा रचित पानफूल, जूते, मिट्टी का घोड़ा; शेखर जोशी द्वारा रचित दाज्यू, जैनेंद्र द्वारा रचित पाजेब, अपना अपना भाग्य, कृष्ण कुमार गोस्वामी द्वारा रचित पुलपार जैसी तमाम कहानियां पाठक को खुद से जोड़े रखती हैं। जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'छोटा जादूगर' और आलमशाह खान द्वारा रचित 'पराई प्यास का सफर' दोनों ही कहानियां बाल जीवन में आजीविका के दायित्व और उसके संघर्ष को चित्रित

करती हैं यद्यपि दोनों के सन्दर्भ अलग-अलग हैं, स्थितियां अलग हैं फिर भी दोनों कहानियां अपने-अपने कथानक के माध्यम से पाठक पर गहरा प्रभाव छोड़कर जाती हैं और एक बेचैनी उत्पन्न कर जाती हैं।

जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'छोटा जादूगर' कहानी, उनके कहानी संग्रह इंद्रजाल (1936) में संकलित है। इस कहानी का पात्र तेरह- चौदह वर्ष का बालक आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त है। परिस्थितियां किस प्रकार बच्चे के मन पर गहरा प्रभाव डालती है जिसके कारण वह आजीविका के लिए खेल तमाशा दिखाता है। जयशंकर खुद एक पात्र हैं, जो उस बालमन को पढने का प्रयत्न कर रहे हैं। बालक के पिता देश के लिए जेल में बंद हैं। घर की दयनीय स्थिति के कारण उस छोटे बालक को अपना बचपन तो याद नहीं अपितु मां के लिए भोजन और दवाओं की चिंता है ताकि वह स्वस्थ हो जाए। "तमाशा देखने नहीं, दिखाने निकला हूँ। कुछ पैसे ले जाऊँगां, तो माँ को पथ्य दूँगा।"[10]

बालक में स्वाभिमान कूट-कूटकर भरा है जो पैसों की तंगी के चलते भीख मांगने के स्थान पर खेल दिखाकर अर्थात परिश्रम करके पैसा कमाना चाहता है। "मुझे शरबत न पिलाकर आपने मेरा खेल देखकर मुझे कुछ दे दिया होता, तो मुझे अधिक प्रसन्नता होती!"[11] बालक की तेजपरस्ती और चातुर्य को देखकर लेखक सोचने पर मजबूर हो जाता है कि "बालक को आवश्यकता ने कितना शीघ्र चतुर बना दिया।"[12] मां के प्रति अगाध प्रेम व कर्तव्य भाव होने पर आजीविका का प्रश्न उसे इतना भारी नहीं लगता, उसमें सदैव फुर्ती और वाचालता दिखलाई देती है। जीवन के कठिन समय में भी वह अपना संयम नहीं खोता। कहानी के अंत में मां से बिछड़ने के पूर्वाभास ने उसको भले ही व्यथित कर दिया हो लेकिन अपनी आर्थिक विपन्नता से लड़ते हुए के लिए मां के अंतिम क्षणों में भी छोटा जादूगर तमाशा दिखाता है। जहाँ बालक अपने भयानक मानसिक आघात और भय की क्रियाशीलता के आवरण में छिपाने का प्रयास करता है। "यह सब होते हुए भी जादूगर की वाणी में वह प्रसन्नता की तरी नहीं थी। जब वह औरों को हँसाने की चेष्टा कर रहा था, तब जैसे स्वयं काँप जाता था। मानो उसके रोएँ रो रहे थे।"[13] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि छोटा जादूगर कहानी का पात्र अपनी आर्थिक स्थिति के कारण समय से पहले जिम्मेदारियों के बोझ तले दबा हुआ है। जो पैसों का मोल को अच्छी तरह से जानता है। बच्चों को अबोध, नासमझ और ना जाने क्या-क्या कहा जाता है। समय की चोट ने छोटे बालक को जिसके अभी खेलने-खाने के दिन है आत्मनिर्भरता का ऐसा पाठ पढ़ा दिया है कि वह बचपन में ही प्रौढ़ बन गया। उसे अपने दायित्व का बोध हो गया और उसे भली-भांति संभालने में लगा रहा।

आलमशाह खान द्वारा रचित 'परायी प्यास का सफर' कहानी का प्रथम प्रकाशन 1979 में पराग पत्रिका में हुआ। सारिका पत्रिका में भी इसका प्रकाशन हुआ। बाद में लेखक का प्रथम कहानी संग्रह 'परायी प्यास का सफर' नाम से प्रकाशित हुआ। यह कहानी सत्तर के दशक की एक प्रतिनिधि रचना है, जिसने यथार्थवाद का एक नया लेकिन क्रूर धरातल प्रस्तुत किया। यह कहानी बाल श्रम और बालकों के शोषण पर आधारित है। लेखक की बाल मनोविज्ञान पर कितनी गहरी पकड़ है इसमें यह भी देखने पर स्पष्ट होता है। कहानी में दो बाल पात्र 'लखना' जिसकी उम्र बारह वर्ष और उसका हमउम्र 'बड़के' है। दोनों ही बालक अपने परिवार से दूर बंधुआ मजदूर के रूप में कार्य करते हैं। बालक 'लखना' दिन-रात अपने शरीर की परवाह किए बिना अपने परिवार का पेट भरने के लिए संघर्ष करता रहता है। यह काम उसने स्वयं नहीं चुना अपितु पिता के घर छोड़कर चले जाने पर और नए पिता द्वारा जुल्म किए जाने पर अपने सगे भाई-बहनों के पालन-पोषण का भार उसको उठाना पड़ता है इसीलिए वह बारह वर्षीय समय से पहले प्रौढ़ बन गया है।

"तुझे कौन-सा काम चलाना है रे?"

"पेट पालने हैं।"

"तेरे बाल-बच्चे हैं?"

"मेरे नहीं, मेरे बाप के तो हैं।"[14]

ऐसा ही कुछ दृश्य हमें जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना अपना भाग्य' में मिलता है। "मेरे कई छोटे-छोटे भाई बहन हैं, सो भाग आया। वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था और मरता था। माँ भूखी रहती थी और रोती थी।"[15]

होटल का मालिक कम मजदूरी पर अपना काम चलाने के लिए बाल मजदूरों का चयन करते हैं जिन्हें हुकुम देकर अपनी बात मनवाई जा सकती है साथ ही वयस्कों की अपेक्षा फुर्ती से ज्यादा काम कराया जा सकता है। भारत में यह एक गंभीर समस्या बन चुकी है। '1991 की जनगणना के अनुसार देश में बाल श्रमिकों की संख्या लगभग 1.1 करोड़ थी। 2001 की जनगणना के अनुसार 5-14 वर्ष की आयु समूह में 1.26 करोड़ बच्चे काम कर रहे थे, जिसमें ढाबों, होटलों में काम करने वाले बच्चों की संख्या 70934 थी।'[16] 2011 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार, 'भारत में बाल मजदूरों की संख्या 1.01 करोड़ है जिसमें 56 लाख लड़के और 45 लाख लड़कियां हैं। दुनिया भर में कुल मिलाकर 15.20 करोड़ बच्चे- 6.4 करोड़ लड़कियां और 8.8 करोड़ लड़के बाल मजदूर होने का अनुमान लगाया गया है अर्थात दुनिया भर में प्रत्येक 10 बच्चों में से एक बच्चा बाल मजदूर है। भारत में विभिन्न उद्योगों में बाल मजदूरों को काम करते हुए देखा जा सकता है जैसे ईंट भट्टों पर काम करना, गलीचा बुनना,

कपड़े तैयार करना, घरेलू कामकाज, खानपान सेवाएं (जैसे चाय की दुकान पर), खेतीबाड़ी, मछली पालन और खानों में काम करना आदि। इसके अलावा बच्चों का और भी कई तरह के शोषण का शिकार होने का खतरा बना रहता है जिसमें यौन उत्पीड़न तथा ऑनलाइन एवं अन्य चाइल्ड पोर्नोग्राफी शामिल है।'[17]

होटल के मालिक द्वारा पूरी तरह शोषण और गाली गलौज करने के बावजूद नए पिता के साथ घर चलने के लिए मना कर देता है। यह प्रवृत्ति उसके विषम परिस्थितियों में भी जिजीविषा के भाव को दर्शाती है। बड़के द्वारा पूछे जाने पर वह कहता है, "वहाँ भूखों मरने जाता?"[18] बाल मनोविज्ञान का सबसे भयानक पहलू तब प्रकट होता है जब बालक अपने साथ होने वाले शारीरिक और यौन शोषण को अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लेता है। "होता है.....तो क्या? बिगडता है कुछ.....फिर फिलम भी तो दिखाता है!"[19]

कहानी का अंत अत्यंत त्रासदीपूर्ण और विचारणीय है। खाने के बाद तेज प्यास लगने पर जब दोनों एक दूसरे से पानी लाने को कहते हैं और दोनों में से कोई भी पानी लाने को राजी नहीं होता। होटल मालिक द्वारा पानी मांगने पर वो उसे तो पिला देता है लेकिन खुद पीना भूल जाता है। वे दोनों बालक अपनी आकांक्षाओं को इतना दबा चुके हैं कि आवश्यक चीजों की चाह भी उन्हें निरर्थक लगने लगती है। यह अस्मिता के विलोपन की पराकाष्ठा है। प्रेमचंद का हामिद भी अभावों के बीच अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण पाकर नैतिक नायक के रूप में उभरता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पूरी कहानी में होटल में काम करने वाले बालकों के एक-एक पक्ष का जैसे पर्दाफाश कर दिया है। कभी कहीं वहां से दूर भाग जाने की चाह, कभी ग्राहकों द्वारा किए तिरस्कार से आहत होना, दिन भर तमाम लोगों को खिलाने के बाद स्वयं के लिए खाना पकाने का मन न होना ।, दूसरे होटल में जाकर समान उम्र के बालक के साथ वही बर्ताव जो उनके साथ होता आया है, भागने के स्वप्नों को स्वयं ही धराशायी कर देना जैसी तमाम छोटी- छोटी घटनाएं एक ही कहानी में प्रस्तुत हुई हैं। बाल श्रम और बालमनोविज्ञान को आधार बनाकर यदि देखा जाए तो यह एक सफल कहानी के रूप में प्रस्तुत हुई है। आलमशाह खान ने कहानी की भाषा को उसी संदर्भों और परिप्रेक्ष्य में गढ़ा है जिससे यह एक जीवंत कहानी ही लगती है।

निष्कर्ष -

यदि दोनों कहानियों का तुलनात्मक रूप से देखे तो पाएंगे कि छोटा जादूगर कहानी का किशोर पात्र घोर अभावों में भीख मांगने के बजाय स्वरोजगार(खेल दिखाकर) के माध्यम से धन उपार्जन करता है वहीं परायी प्यास का सफर कहानी का पात्र नौकरी के माध्यम से आजीविका प्राप्त करता है। जहाँ प्रसाद की कहानी में राष्ट्रीय चेतना और आदर्शोन्मुख यथार्थवाद दिखलाई

देता हैं वहीँ आलमशाह की कहानी में यथार्थवाद का क्रूर और नग्न रूप है। दोनों ही कहानियां अलग-अलग संदर्भ में होते हुए भी बाल मनोविज्ञान और बाल श्रम को इंगित करती हैं तथा अपना विशेष महत्व रखती हैं। बाल श्रम के कारण बालकों का पूर्ण रूप से विकास नहीं हो पाता जिससे एक उन्नत राष्ट्र के निर्माण में बाधा उत्पन्न होती है। बच्चे जितने सीधे और सरल होते हैं उन्हें समझना उतना ही मुश्किल होता है इसलिए बाल मनोविज्ञान समझना उतना ही आवश्यक है। समाज के शिक्षित वर्ग बच्चों के हितों की रक्षा के लिए आगे आ सकते हैं और समाज के हितधारकों को बच्चों की उस दयनीय स्थिति से अवगत करा सकते हैं जहाँ बच्चों में निराशा के साथ-साथ देर तक काम करने के संकेत दिखाई देते हैं। बच्चों को काम से बाहर निकाल कर उन्हें स्कूल भेजने के लिए शोषित परिवारों को जागरूक करने के लिए सरकारी नीतियों में व्यापक बदलाव करने की आवश्यकता है। प्रत्येक बालक को अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वस्थ वातावरण का अधिकार है।

सन्दर्भ ग्रन्थ -

[1] डॉ० हरिकृष्ण देवसरे, बाल साहित्य मेरा चिंतन, मेधा बुक्स दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2000, पृष्ठ-19

[2] दिविक रमेश, हिंदी बाल-साहित्य कुछ पड़ाव, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015

[3] फ्रायड: मनोविश्लेषण(ए जनरल इंट्रोडक्शन टू साइको-एनालिसिस का पूर्ण और प्रामाणिक हिंदी अनुवाद)- सिगमंड फ्रायड, राजपाल एंड संस दिल्ली, संस्करण 2022

[4] आचार्य रामचंद्र शुक्ल(संपा.) लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2009, पृष्ठ-623

[5] हरदेव बाहरी(संपा.), हिंदी शब्द कोष, राजपाल एंड संस दिल्ली, संस्करण 2022, पृष्ठ-591

[6] नगेंद्र (संपा.), मानविकी परिभाषा कोश, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 1968, पृष्ठ 61

[7] प्रकाश मनु, हिंदी बाल साहित्य की परंपरा और इतिहास, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008

[8] मानव अधिकार एवं बाल मजदूरी, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, दिल्ली, पृष्ठ 14

[9] वही पृष्ठ 23

[10] प्रसाद की संपूर्ण कहानियां, विमला बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृष्ठ 340

[11] वही पृष्ठ 340

[12] वही पृष्ठ 341

[13] वही पृष्ठ 343

[14] आलमशाह खान (सम्पा. हिमांशु पांड्या), दस प्रतिनिधि कहानियां, किताब प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 5

[15] जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, संपा. निर्मला जैन, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1973, पृष्ठ-53

[16] https://labour.gov.in/hi/child-labour-faq-0

[17] https://www.unicef.org/india/hi/node/321

[18] आलमशाह खान (सम्पा. हिमांशु पांड्या), दस प्रतिनिधि कहानियां, किताब प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 7

[19] वही पृष्ठ 7

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 169-190

Corporate Governance and Corporate Social Responsibility : A Legal Perspective

Dr. Anita Parmar
Assistant Professor, School of Law,
Prestige Institute of Management And Research, Indore, Deemed to be University.

Abstract :

Corporate Governance (CG) and Corporate Social Responsibility (CSR) have emerged as complementary pillars of responsible business conduct in the modern global economy. While corporate governance focuses on transparency, accountability, fairness, and stakeholder protection, CSR extends corporate obligations beyond shareholders to society and the environment. In India, the legal framework governing CG and CSR has undergone significant transformation through the **Companies Act, 2013**, **SEBI (LODR) Regulations**, and judicial interpretations. This study examines the legal relationship between corporate governance and CSR, evaluates the effectiveness of existing regulatory mechanisms, and identifies challenges in implementing CSR obligations. The research adopts a doctrinal methodology by analyzing statutes, judicial decisions, policy reports, and scholarly literature. It further explores comparative legal approaches and international standards, including the **OECD Principles of Corporate Governance** and the **UN Sustainable Development Goals (SDGs)**. The study argues that integrating governance principles with CSR obligations enhances corporate accountability, sustainable development, and stakeholder confidence. It concludes by recommending legal reforms to strengthen compliance, transparency, ESG reporting, and corporate ethical responsibility. An abstract is typically a concise summary of the study.

Introduction :

Corporate governance has evolved from a mechanism of internal corporate control

into a comprehensive framework ensuring accountability, transparency, ethical management, and stakeholder protection. Simultaneously, Corporate Social Responsibility (CSR) has transitioned from a voluntary philanthropic activity to a statutory obligation in several jurisdictions, particularly India. The enactment of Section 135 of the Companies Act, 2013, marked a paradigm shift by mandating qualifying companies to spend a prescribed percentage of their profits on CSR activities.

The increasing demand for sustainable business practices has highlighted the interconnectedness of governance and social responsibility. Effective corporate governance promotes responsible decision-making, minimizes corporate misconduct, enhances investor confidence, and ensures compliance with legal obligations. CSR complements governance by encouraging corporations to contribute to environmental sustainability, social justice, community development, and ethical business conduct.

Despite comprehensive legal provisions, challenges remain in achieving meaningful CSR implementation due to inconsistent disclosures, inadequate monitoring mechanisms, greenwashing, and weak enforcement. Furthermore, globalization, technological advancements, and ESG (Environmental, Social, and Governance) expectations require corporations to adopt governance models that integrate legal compliance with sustainable development objectives.

This research examines the legal framework governing Corporate Governance and CSR in India and comparatively evaluates international standards. It analyzes statutory provisions, judicial precedents, regulatory policies, and governance principles to determine whether existing legal mechanisms effectively promote responsible corporate behavior and sustainable economic development.

Novelty of the Study :

1. Examines Corporate Governance and CSR through an integrated legal perspective rather than treating them as separate concepts.
2. Evaluates the effectiveness of mandatory CSR provisions under the Companies Act, 2013.
3. Incorporates ESG governance and sustainability reporting into corporate legal analysis.
4. Provides comparative analysis with international governance standards.
5. Suggests legal reforms for improving transparency, accountability, and CSR compliance.

6. Bridges the gap between corporate law, governance ethics, and sustainable development.

Research Objectives :

a. To examine and critically analyze the legal framework governing Corporate Governance and Corporate Social Responsibility (CSR) in India, with particular reference to the Companies Act, 2013, SEBI Regulations, and other applicable regulatory provisions.

b. To evaluate the relationship between corporate governance principles and CSR obligations by assessing the effectiveness of the existing legal framework in promoting corporate accountability, responsible business conduct, and sustainable governance, while identifying the legal and practical challenges in its implementation.

c. To compare India's corporate governance and CSR framework with selected international jurisdictions and propose legal and policy reforms for strengthening corporate accountability, transparency, and sustainable corporate governance.

Research Questions :

1. What is the legal relationship between Corporate Governance and Corporate Social Responsibility (CSR), and how do corporate governance principles influence CSR performance and corporate accountability in India?
2. How effective is the existing legal framework governing Corporate Governance and CSR in India, particularly under the Companies Act, 2013, SEBI Regulations, and other applicable regulatory provisions, in ensuring responsible corporate conduct and sustainable governance?
3. What are the major legal and practical challenges affecting the implementation and enforcement of Corporate Governance and CSR obligations in India, and how do international corporate governance standards influence the Indian legal framework?
4. What legal and policy reforms are necessary to strengthen Corporate Governance and CSR compliance in India while promoting greater corporate transparency, accountability, and sustainable business practices?

Research Hypotheses :

Primary Hypothesis (H1) :

There is a significant positive relationship between effective corporate governance and the successful implementation of Corporate Social Responsibility.

Null Hypothesis (H0) :

There is no significant relationship between corporate governance practices and CSR implementation.

Secondary Hypotheses :

H2 : Strong board independence significantly improves CSR compliance.

H3 : Enhanced corporate transparency positively influences CSR performance.

H4 : Robust legal enforcement significantly increases CSR effectiveness.

H5 : ESG reporting positively mediates the relationship between corporate governance and CSR outcomes.

Expected Contribution :

- Provides a comprehensive legal analysis of governance and CSR.
- Supports policymakers in improving corporate governance laws.
- Assists regulators in strengthening CSR compliance mechanisms.
- Contributes to academic literature on corporate law and sustainability.
- Offers practical recommendations for corporate boards, regulators, and legal practitioners.

Research Gap : Corporate Governance and Corporate Social Responsibility : A Legal Perspective :

1. Most studies examine Corporate Governance (CG) and Corporate Social Responsibility (CSR) separately, with limited focus on their integrated legal relationship.
2. Existing literature primarily emphasizes voluntary CSR practices and corporate performance rather than mandatory CSR compliance under legal frameworks such as the **Companies Act, 2013,** and **SEBI (LODR) Regulations**.

3. There is insufficient doctrinal research evaluating the effectiveness of legal enforcement, penalties, and judicial interpretation of CSR obligations in India.
4. Recent studies increasingly focus on ESG reporting and sustainability but provide limited analysis of how ESG integrates with corporate governance and statutory CSR obligations from a legal perspective.
5. Comparative legal analyses between Indian corporate law and international governance standards (OECD, UN Guiding Principles, SDGs) remain limited.
6. Few studies propose comprehensive legal reforms to improve corporate accountability, transparency, governance, and CSR compliance in the evolving ESG landscape.

2024	Huang, Ren & Ren	Legal Background Executives, Corporate Governance and Corporate ESG Performance	Empirical study examining whether executives with legal backgrounds influence ESG performance.	Legal expertise in top management significantly improves ESG performance, regulatory compliance, and governance quality.
2025	Ali & Gupta	Job Seekers' Perceptions of CSR Practices and Organisational Attractiveness	Multi-group quantitative analysis.	Strong CSR practices enhance employer attractiveness and organizational reputation.
2025	Provost & Capelos	Emotional Sensibility and Corporate Performance in Supply Chain Governance	Empirical analysis under the UK Modern Slavery Act.	Ethical governance improves supply-chain performance and legal compliance.
2025	Zhang, Jia & Liu	Intellectual Property Protection and Corporate Greenwashing in ESG	Legal-economic analysis.	Strong IP protection reduces greenwashing and enhances ESG credibility.
2025	Adebayo	Conceptualizing Corporate Governance in State-Owned Enterprises	Conceptual review.	Recommends governance reforms emphasizing transparency and accountability.
2025	De Bernardi & Annesi	Water Utility Governance for Climate Resilience	Policy analysis.	CSR-based governance strengthens climate resilience in public utilities.

2026	Chouaibi & Fadhli	Corporate Governance and Integrated Reporting Quality	Empirical analysis across G20 countries.	Green innovation strengthens governance-reporting quality relationship.
2026	Cao, Li & Wu	Board ESG Oversight and International Expansion	Quantitative analysis of Chinese firms.	ESG oversight enhances international competitiveness and expansion.
2026	Agnese, Arduino & Ferri	Determinants of Corporate Social Performance	Empirical research.	Firm size and governance significantly influence CSR performance.
2026	Xia, Chen & Kamal	Responsible AI Governance and Corporate Performance	Quasi-natural experiment.	Responsible AI governance positively affects firm performance.
2026	Zhang, Zhu & Dai	Mandatory Climate Disclosure and CSR	Empirical analysis of US-listed firms.	Mandatory climate disclosures significantly improve CSR performance.
2026	Prados-Castillo, Porras & Guaita Martínez	Blockchain Technology to Boost Corporate Reputation	Conceptual and technological analysis.	Blockchain increases transparency, ESG reporting quality, and corporate reputation.
2026	Batra, Suryavanshi & Kumar	Corporate Governance and Volatility Research	Systematic literature review.	Strong governance reduces market volatility and strengthens risk management.
2026	Shan Zhang	Board Gender Diversity and Corporate Green Performance	Empirical study.	Gender-diverse boards improve environmental performance.
2026	Salehi & Bashirimanesh	Political Connections and CSR Disclosure	Quantitative analysis.	Political connections significantly influence CSR disclosure quality.
2026	Almnadheh, Samara & AlQudah	ESG Integration in Corporate Strategy	Bibliometric and content analysis.	ESG research is expanding rapidly; legal integration

				remains underexplored.
2026	Feng, Leong & Ali	ESG Investments, Corporate Reputation and Market Value	Comprehensive review.	ESG investments improve firm reputation, investor confidence, and market value.
2026	Granovsky-Larsen & Hall	CSR, Violence and Mining Governance	Qualitative discourse analysis.	CSR narratives may coexist with governance failures and human rights concerns.
2026	Moliterni & Planells-Artigot	Corporate Political Activity and CSR	Bibliometric analysis.	Corporate political engagement increasingly intersects with CSR strategies.
2026	Sharma	CSRD and Sustainability Reporting Practices	Case study of German companies.	Mandatory sustainability reporting improves disclosure quality.
2026	Huang, Hurst & Zhou	CSR versus Corporate Social Advocacy (CSA)	Topic modelling and word embedding.	CSR and CSA have distinct conceptual roots but increasingly converge in practice.
2026	Tan, Ren & Chen	Corporate Digital Responsibility Dividend	Empirical analysis.	Ethical digital governance enhances market performance.
2026	Ahdadou	AI and the Destabilization of Agency in Corporate Governance	Conceptual research.	AI challenges traditional governance structures and accountability.
2026	D'Amico, Galloppo & Paimanova	Corporate Governance and Customer Satisfaction as an Antidote to ESG Controversies	Empirical study.	Effective governance reduces ESG controversies and strengthens stakeholder trust.
2026	Li, Shan & Jia	CSR, Process Innovation and Supply Chain Resilience	Quantitative empirical analysis.	CSR and digital technologies improve resilience and innovation outcomes

2027	Stuart I. Greenbaum, Anjan V. Thakor & Arnoud W. A. Boot	Chapter 4: Bank Risks	To explain the major risks faced by financial intermediaries and banks and the principles of risk identification and management. Conceptual and analytical book chapter based on banking theory, financial intermediation, and risk management frameworks.	The chapter identifies the principal banking risks—credit risk, interest rate risk, liquidity risk, operational risk, market risk, and cyber risk—and emphasizes integrated risk management, capital adequacy, and regulatory compliance as essential for financial stability. It also highlights the growing impact of digitalization and financial innovation on banking risks.

2027	Stuart I. Greenbaum, Anjan V. Thakor & Arnoud W. A. Boot	Chapter 16: Milestones in Banking Legislation and Regulatory Reform	To trace the historical evolution of banking legislation and examine the rationale behind major regulatory reforms. Historical and analytical review of banking legislation, financial crises, and regulatory developments.	The chapter reviews the evolution of banking regulation from early banking laws through modern reforms following major financial crises. It discusses the objectives of prudential regulation, capital requirements, deposit insurance, systemic risk

				oversight, and reforms such as the **Dodd–Frank Act**, emphasizing that effective regulation enhances financial stability while adapting to technological and market changes.

Comparative analysis between India, Asian, and European countries with respect to legal aspects

Parameters	India	United Kingdom (UK)	United States (USA)	Germany / European Union (EU)	Japan	Singapore
1. Legal Framework	Companies Act, 2013; SEBI (LODR) Regulations; BRSR Guidelines	Companies Act 2006; UK Corporate Governance Code	Sarbanes-Oxley Act (SOX), Dodd–Frank Act, SEC Regulations	CSRD, CSDDD, German Corporate Governance Code	Companies Act; Corporate Governance Code; Stewardship Code	Companies Act; Singapore Code of Corporate Governance; SGX Listing Rules
2. CSR Legal Status	**Mandatory CSR** under Section 135 (2% average net profits)	CSR is voluntary but supported through governance and reporting requirements	Voluntary CSR; ESG disclosures increasing through SEC regulations	CSR integrated with mandatory sustainability reporting and due diligence rather than mandatory spending	Voluntary CSR integrated into corporate governance and sustainability	Voluntary CSR with mandatory sustainability reporting for listed companies [1]
3. Corporate Governance Mechanism	Independent Directors, Audit Committee, CSR	Independent Board, Audit Committee, Remuneration	Strong shareholder rights, independent directors,	Stakeholder-oriented governance, supervisory boards,	Board independence, institutional investor	Board independence, risk management, corporate

	Committee, Board Evaluation	Committee, "Comply or Explain"	audit committees, executive accountability	employee participation, ESG oversight	stewardship, governance reforms	accountability, governance code [2]
4. ESG & Sustainability Reporting	Mandatory Business Responsibility and Sustainability Reporting (BRSR) for top listed companies	Mandatory climate and sustainability disclosures for large companies	SEC climate-related disclosure framework; ESG reporting increasingly regulated	Comprehensive mandatory ESG reporting under CSRD and sustainability due diligence legislation	TCFD-aligned sustainability disclosures encouraged; ESG integrated into governance	Mandatory sustainability reporting by SGX-listed companies with phased climate disclosures [5]
5. Regulatory Objective	Social welfare, stakeholder protection, sustainable development, statutory CSR compliance	Accountability, transparency, investor protection, responsible governance	Shareholder protection, market integrity, corporate accountability	Sustainable finance, environmental protection, human rights, stakeholder governance	Long-term corporate value creation, responsible investment, sustainable governance	Corporate transparency, investor confidence, sustainable economic growth [3]

Financial Year-wise Corporate Social Responsibility (CSR) Expenditure by Eligible Companies in India (2014–15 to 2023–24) (Amount in ₹ Crore)

Section 135 of the Companies Act, 2013: Legal Framework for Corporate Social Responsibility in India :

The enactment of the Companies Act, 2013 marked a significant milestone in India's corporate regulatory framework by introducing statutory Corporate Social Responsibility (CSR) obligations through Section 135. India became the first major economy to mandate CSR expenditure through legislation, thereby transforming CSR from a voluntary philanthropic initiative into a legally enforceable corporate responsibility. The objective of this provision is to ensure that profitable companies contribute towards inclusive economic growth, environmental sustainability, and social welfare while promoting ethical corporate governance.

Applicability of Section 135 :

Section 135 applies to every company, including its holding or subsidiary company and a foreign company having a branch or project office in India, if during the immediately preceding financial year it satisfies any one of the following thresholds :

- Net worth of ₹500 crore or more;
- Turnover of ₹1,000 crore or more; or
- Net profit of ₹5 crore or more.

Companies meeting any of these criteria are required to comply with the CSR provisions prescribed under the Companies Act, 2013, and the Companies (Corporate Social Responsibility Policy) Rules, 2014.

Constitution of the CSR Committee :

Eligible companies are required to constitute a Corporate Social Responsibility Committee of the Board. Generally, the Committee consists of three or more directors, including at least one independent director, wherever applicable. The Committee performs the following functions:

- Formulates and recommends the CSR Policy to the Board;
- Recommends the annual CSR budget and expenditure;
- Identifies CSR projects and programmes;
- Monitors implementation of CSR activities; and
- Ensures compliance with statutory reporting requirements.

The Board of Directors retains the ultimate responsibility for approving, implementing, monitoring, and disclosing CSR activities in the Board's Report.

Mandatory CSR Expenditure :

Section 135(5) mandates that every eligible company shall spend at least **2% of the average net profits** earned during the three immediately preceding financial years on CSR activities. The expenditure must be directed towards activities specified in **Schedule VII** of the Companies Act, 2013.

Illustrative CSR activities include :

- Promotion of education and vocational skills;
- Eradication of hunger, poverty, and malnutrition;
- Healthcare and sanitation;

- Gender equality and women's empowerment;
- Environmental sustainability and biodiversity conservation;
- Protection of national heritage and culture;
- Rural development projects;
- Disaster management and relief measures;
- Promotion of sports;
- Contributions to specified government relief funds.

These activities demonstrate that CSR is intended to generate measurable social and environmental benefits rather than merely enhance corporate image.

CSR Policy and Disclosure Requirements :

The Board is required to approve a CSR Policy that specifies the company's CSR objectives, implementation strategy, monitoring mechanism, and proposed expenditure. The CSR Policy must be displayed on the company's website, where applicable, and details of CSR initiatives must be disclosed in the Board's Report.

Following recent amendments, companies are also required to provide greater transparency regarding:

- Amount prescribed for CSR expenditure;
- Amount actually spent;
- Ongoing CSR projects;
- Administrative overheads;
- Impact assessment, wherever applicable; and
- Reasons for any unspent CSR amount.

These disclosure requirements strengthen corporate transparency and accountability.

Treatment of Unspent CSR Amount :

The Companies (Amendment) Act, 2019, significantly strengthened enforcement by prescribing a statutory mechanism for unspent CSR funds.

- For **ongoing projects**, the unspent amount must be transferred to a designated **Unspent CSR Account** within thirty days from the end of the financial year and utilised within three financial years.

- If the amount remains unutilized after this period, it must be transferred to a fund specified in Schedule VII.
- Where the unspent amount does not relate to an ongoing project, it must be transferred directly to a Schedule VII Fund within six months from the end of the financial year.

This mechanism ensures that CSR funds are actually deployed for public welfare and are not retained indefinitely by companies.

Penal Consequences for Non-Compliance :

The Companies (Amendment) Act, 2020 shifted the CSR enforcement framework from criminal liability towards civil penalties. Companies failing to comply with the statutory provisions relating to the transfer of unspent CSR amounts are liable to monetary penalties under Section 135. Responsible officers of the company may also be subjected to penalties for default. This approach seeks to improve compliance while avoiding unnecessary criminalization of corporate management.

Judicial and Regulatory Developments :

Although Indian courts have not extensively interpreted Section 135, regulatory authorities, particularly the Ministry of Corporate Affairs (MCA), have issued several General Circulars and clarifications regarding eligible CSR activities, impact assessment, implementation agencies, surplus arising from CSR projects, and administrative expenditure. These guidelines have substantially contributed to the practical implementation of the CSR framework and have reduced ambiguities in compliance.

Critical Analysis :

The statutory CSR regime introduced under Section 135 represents a distinctive model of corporate regulation that integrates business profitability with social responsibility. Unlike many jurisdictions where CSR remains voluntary, India has adopted a mandatory expenditure-based approach. This framework has substantially increased corporate investment in education, healthcare, environmental conservation, rural development, and community welfare. Nevertheless, several implementation challenges remain, including inconsistent project evaluation, inadequate impact assessment, excessive compliance-driven reporting, regional concentration of CSR expenditure, and limited stakeholder participation. Addressing these challenges requires stronger monitoring mechanisms, enhanced transparency through ESG reporting, digital disclosure systems, and greater coordination between corporations, regulatory authorities, and civil society organisations.

Section 135 of the Companies Act, 2013, has fundamentally transformed the landscape of corporate responsibility in India by embedding CSR within the corporate governance framework. The provision reflects a progressive legislative approach that balances shareholder interests with broader stakeholder welfare. By mandating CSR expenditure, strengthening disclosure obligations, and introducing accountability mechanisms, the law contributes significantly to sustainable development and responsible corporate governance. Continued legal reforms, effective enforcement, and greater emphasis on impact-based CSR will further strengthen India's position as a global leader in statutory corporate social responsibility.

Case laws and judicial interpretations :

Although **Section 135 of the Companies Act, 2013** is largely compliance-driven and has generated relatively limited Supreme Court jurisprudence, several decisions by the NCLAT, High Courts, and tax tribunals have clarified its interpretation.

1. **Shri Santosh Meenakshi Textiles Pvt. Ltd. v. Registrar of Companies (NCLAT, 2019)**
2. The NCLAT held that CSR applicability must be determined strictly in accordance with Section 135 and clarified the obligation to constitute a CSR Committee and make appropriate disclosures in the Board's Report.
3. **IBC Knowledge Park Pvt. Ltd. v. Union of India (Karnataka High Court, 2020)**
4. The Court examined the constitutional validity and operation of Section 135, recognizing CSR as a statutory obligation imposed on companies meeting the prescribed financial thresholds.
5. **Coastal Gujarat Power Ltd. v. Central Electricity Regulatory Commission (APTEL, 2021)**
6. The Appellate Tribunal held that CSR expenditure under Section 135 is a **statutory obligation** and cannot ordinarily be treated as a recoverable business or tariff cost, distinguishing CSR from operational expenditure.
7. **Brabourne Commerce Pvt. Ltd. v. State of West Bengal (Calcutta High Court, 2024)**
8. The Court considered proceedings relating to inspection and CSR compliance under the Companies Act, emphasizing that companies are subject to regulatory scrutiny regarding CSR obligations and disclosures.
9. **Sequel Logistics Pvt. Ltd. v. Principal CIT (2024)**
10. The dispute concerned the tax treatment of CSR expenditure. The Tribunal considered whether CSR contributions qualifying under Section 80G of the

Income-tax Act could still be eligible for deduction, notwithstanding the restrictions under Section 37.

Judicial Interpretation key takeaways -

- Courts consistently interpret **CSR as a statutory obligation** rather than voluntary corporate philanthropy once Section 135 becomes applicable.
- Compliance extends beyond spending and includes the **constitution of the CSR Committee, formulation of a CSR Policy, Board oversight, and statutory disclosures**.
- Following the **Companies (Amendment) Act, 2020**, CSR defaults have largely shifted from **criminal prosecution to monetary penalties**, reflecting a move towards civil regulatory enforcement.
- Tax authorities have clarified that while CSR expenditure is generally not deductible as a business expense under Section 37 of the Income-tax Act, eligible contributions may still qualify for deductions under specific provisions such as Section 80G, subject to statutory conditions.

The first objective of this study is to critically examine the legal framework governing **Corporate Governance (CG)** and **Corporate Social Responsibility (CSR)** in India. The research seeks to analyze the statutory, regulatory, and institutional mechanisms that regulate corporate governance and CSR obligations under Indian law. Particular emphasis is placed on the **Companies Act, 2013**, especially **Sections 134, 135, 166, 177, and 178**, which prescribe directors' duties, CSR obligations, board governance, audit mechanisms, and stakeholder protection. The study also evaluates the role of the **SEBI (Listing Obligations and Disclosure Requirements) Regulations, 2015**, the **Business Responsibility and Sustainability Reporting (BRSR) Framework**, the **Companies (CSR Policy) Rules, 2014**, and relevant notifications issued by the **Ministry of Corporate Affairs (MCA)** in promoting transparency, accountability, ethical management, and sustainable business practices.

Furthermore, the objective examines how judicial interpretations, regulatory guidelines, and amendments have influenced the implementation and enforcement of CSR and corporate governance norms. It also assesses whether the existing legal framework effectively balances shareholder interests with stakeholder welfare, environmental sustainability, and corporate accountability. Finally, the study identifies legal challenges, regulatory gaps, and implementation issues and evaluates the extent to which the current framework aligns with international standards such as the **OECD Principles of Corporate Governance** and the **United Nations Sustainable Development Goals (SDGs)**

Research Objective : To critically examine and evaluate the legal framework governing Corporate Governance and Corporate Social Responsibility (CSR) in India, with particular reference to the Companies Act, 2013, SEBI Regulations, and other applicable regulatory provisions, by assessing the relationship between corporate governance principles and CSR obligations, evaluating the effectiveness of the existing legal framework in promoting corporate accountability, transparency, responsible business conduct, and sustainable governance, identifying the legal and practical challenges in its implementation, comparing India's framework with selected international jurisdictions, and proposing legal and policy reforms to strengthen corporate accountability and sustainable corporate governance.

Corporate Governance and Corporate Social Responsibility (CSR) have become fundamental pillars of modern corporate regulation. While corporate governance focuses on ensuring accountability, transparency, fairness, and ethical management within corporate entities, CSR extends corporate responsibility beyond shareholders to include employees, consumers, local communities, and the environment. The integration of these two concepts has become increasingly significant in achieving sustainable economic development and responsible business conduct. In India, the enactment of the Companies Act, 2013, particularly the introduction of mandatory CSR provisions under Section 135, marked a paradigm shift by legally recognizing the social responsibilities of companies alongside their economic objectives. Simultaneously, the Securities and Exchange Board of India (SEBI) has strengthened governance standards through the SEBI (Listing Obligations and Disclosure Requirements) Regulations, 2015, and the introduction of the Business Responsibility and Sustainability Reporting (BRSR) framework, thereby promoting greater transparency and accountability among listed companies.

The primary objective of this study is to critically examine and evaluate the legal framework governing Corporate Governance and CSR in India. This involves an in-depth analysis of the statutory provisions contained in the Companies Act, 2013, the SEBI regulations, and other applicable regulatory mechanisms that collectively establish standards of corporate conduct. The study seeks to understand how these legal instruments regulate corporate behaviour, ensure compliance with governance norms, and encourage companies to integrate social responsibility into their business strategies.

A significant aspect of this objective is to analyse the relationship between corporate governance principles and CSR obligations. Traditionally, corporate governance was viewed primarily as a mechanism for protecting shareholder interests by ensuring transparency, accountability, and effective management. However, the contemporary governance framework increasingly recognises that corporations owe responsibilities not only to shareholders but also to a wider group of stakeholders. CSR complements this broader stakeholder-oriented approach by requiring companies to contribute towards social welfare, environmental protection, education, healthcare, gender equality, and other developmental objectives. Accordingly, the study aims to examine whether CSR

should be regarded merely as a statutory compliance requirement or as an integral component of good corporate governance that enhances corporate legitimacy, stakeholder confidence, and long-term sustainability.

The research further seeks to evaluate the effectiveness of the existing legal framework in promoting responsible corporate behaviour. Although India is one of the few countries that has made CSR expenditure mandatory for eligible companies, questions remain regarding the practical effectiveness of these legal provisions. The study will assess whether mandatory CSR has resulted in meaningful social impact or whether compliance has become largely procedural in nature. Similarly, the effectiveness of governance mechanisms such as independent directors, audit committees, disclosure obligations, board accountability, and sustainability reporting will be examined to determine whether they have strengthened corporate transparency and reduced governance failures. The analysis will consider whether the current legal framework adequately balances regulatory compliance with genuine ethical business practices.

Another important component of this objective is the identification of legal and practical challenges affecting the implementation of corporate governance and CSR laws. Despite significant legislative reforms, several challenges continue to hinder effective implementation. These include inconsistent CSR spending patterns, inadequate monitoring of CSR projects, lack of transparency in fund utilisation, difficulties in measuring social impact, regulatory overlaps, weak enforcement mechanisms, and instances of companies treating CSR as a compliance exercise rather than a strategic commitment. Likewise, governance challenges such as board independence, conflicts of interest, ineffective disclosure practices, and varying standards of corporate accountability continue to affect the quality of governance in many corporations. The study aims to critically examine these issues and evaluate whether existing enforcement mechanisms are sufficient to ensure compliance with legislative objectives.

The research also adopts a comparative approach by examining selected international jurisdictions that have developed advanced corporate governance and CSR frameworks. Jurisdictions such as the United Kingdom, the United States, and South Africa have adopted different regulatory models that emphasize board accountability, stakeholder engagement, environmental, social, and governance (ESG) reporting, and voluntary as well as mandatory sustainability practices. International standards, including the OECD Principles of Corporate Governance, the United Nations Global Compact, the UN Guiding Principles on Business and Human Rights, and the ISO 26000 Guidance on Social Responsibility, have significantly influenced global corporate governance practices. By comparing these international models with the Indian framework, the study seeks to identify best practices and assess whether similar approaches could strengthen the Indian regulatory regime while accommodating domestic socio-economic conditions.

Finally, the study aims to propose legal and policy reforms that can enhance the effectiveness of India's corporate governance and CSR framework. Based on the findings of the legal and comparative analysis, recommendations may include strengthening regulatory oversight, improving CSR monitoring and impact assessment, enhancing board accountability, expanding stakeholder participation in governance processes, encouraging greater transparency through sustainability reporting, and harmonizing CSR obligations with evolving ESG standards. The study may also recommend clearer implementation guidelines, stronger enforcement mechanisms, and greater coordination among regulatory authorities to ensure that corporate governance and CSR function as complementary mechanisms for achieving sustainable corporate development.

Overall, this research objective seeks to provide a comprehensive legal evaluation of the evolving relationship between Corporate Governance and CSR in India. By integrating statutory analysis, critical evaluation, comparative study, and reform-oriented recommendations, the research aims to contribute to the growing discourse on corporate accountability and sustainable governance. The study ultimately seeks to demonstrate that effective corporate governance and meaningful CSR are mutually reinforcing concepts that play a crucial role in promoting ethical business practices, protecting stakeholder interests, and fostering long-term economic and social sustainability.

Explanation of the Research Questions :

The above research questions collectively provide the conceptual and analytical framework for examining the legal dimensions of Corporate Governance and Corporate Social Responsibility (CSR) in India. They are designed to explore the relationship between governance and CSR, evaluate the effectiveness of the existing legal regime, identify implementation challenges, examine international influences, and propose reforms that enhance corporate accountability and sustainable governance.

The first research question focuses on the legal relationship between Corporate Governance and Corporate Social Responsibility and examines how governance principles influence CSR performance and corporate accountability. Traditionally, corporate governance has been understood as a system through which companies are directed and controlled, ensuring accountability, transparency, fairness, and ethical decision-making by corporate management. CSR, in contrast, represents the broader social and environmental responsibilities of corporations towards stakeholders beyond shareholders. Although these concepts developed independently, contemporary corporate law increasingly treats them as complementary aspects of responsible business governance. This research question therefore seeks to determine whether CSR should be viewed merely as a statutory obligation or as an integral component of good corporate governance. It further explores whether effective governance mechanisms—such as independent directors, board committees, disclosure requirements, ethical leadership, and

stakeholder engagement—contribute to stronger CSR performance and enhance public trust in corporate institutions.

The second research question examines the effectiveness of the Indian legal framework governing Corporate Governance and CSR. India occupies a unique position in global corporate regulation because it has introduced mandatory CSR obligations through Section 135 of the Companies Act, 2013, while simultaneously strengthening governance norms through the SEBI (Listing Obligations and Disclosure Requirements) Regulations, 2015, and the Business Responsibility and Sustainability Reporting (BRSR) framework. This question seeks to evaluate whether these legislative and regulatory measures have achieved their intended objectives of improving corporate accountability, transparency, and responsible business conduct. It also examines the extent to which statutory compliance translates into meaningful corporate responsibility rather than formal adherence to legal requirements. The research evaluates whether the present legal framework effectively balances regulatory enforcement with voluntary ethical commitments and whether it adequately addresses the expectations of shareholders, employees, consumers, local communities, and other stakeholders.

The third research question investigates the principal legal and practical challenges affecting the implementation and enforcement of Corporate Governance and CSR obligations in India while also considering the influence of international governance standards. Although the Indian legal framework has undergone substantial reforms, several implementation issues continue to undermine its effectiveness. These include inconsistent CSR expenditure, inadequate monitoring of CSR projects, lack of transparency in fund utilisation, weak enforcement mechanisms, limited board independence, conflicts of interest, and difficulties in measuring the social impact of CSR initiatives. In addition, corporations often perceive CSR as a compliance obligation rather than a strategic governance function. This question therefore analyses the practical barriers that impede the achievement of legislative objectives. It also explores the influence of international standards such as the OECD Principles of Corporate Governance, the United Nations Global Compact, the UN Guiding Principles on Business and Human Rights, and ISO 26000 Guidance on Social Responsibility. By examining these international frameworks, the study seeks to understand how global best practices have shaped Indian corporate law and whether further harmonisation with international standards could strengthen corporate governance and CSR implementation.

The fourth research question focuses on identifying legal and policy reforms necessary to improve Corporate Governance and CSR compliance in India. Since corporate regulation continues to evolve in response to changing economic, environmental, and social expectations, there is a need to assess whether the existing legislative framework adequately addresses emerging governance challenges. This question seeks to identify reforms that may improve transparency, accountability, stakeholder participation, regulatory oversight, sustainability reporting, and corporate

compliance mechanisms. It also considers whether stronger board accountability, improved CSR impact assessment, enhanced disclosure requirements, and better coordination among regulatory authorities would strengthen the implementation of governance and CSR laws. Furthermore, the research examines the growing importance of Environmental, Social, and Governance (ESG) principles and considers how Indian corporate law may evolve to integrate sustainability more comprehensively within corporate governance structures.

Collectively, these research questions provide a coherent framework for examining Corporate Governance and CSR from both doctrinal and comparative legal perspectives. They facilitate a systematic analysis of the statutory provisions contained in the Companies Act, 2013, SEBI Regulations, and related legal instruments while evaluating their practical effectiveness in promoting responsible corporate conduct. At the same time, they encourage a comparative assessment of international governance models and their relevance to the Indian legal system. By addressing these questions, the study aims to identify the strengths and limitations of the current regulatory framework and develop recommendations that contribute to more transparent, accountable, and sustainable corporate governance. Ultimately, the research seeks to demonstrate that effective Corporate Governance and meaningful CSR are mutually reinforcing legal mechanisms that play a vital role in protecting stakeholder interests, strengthening corporate accountability, and supporting sustainable economic development.

Conclusion :

Corporate Governance and Corporate Social Responsibility (CSR) have evolved into two interdependent pillars of responsible corporate regulation that collectively promote accountability, transparency, ethical decision-making, and sustainable development. This study demonstrates that the legal framework in India, particularly the Companies Act, 2013, the SEBI (Listing Obligations and Disclosure Requirements) Regulations, 2015, and the Business Responsibility and Sustainability Reporting (BRSR) framework, has significantly transformed the governance landscape by integrating statutory CSR obligations with broader principles of corporate governance. The introduction of mandatory CSR under Section 135 represents a landmark legislative innovation that distinguishes India from many other jurisdictions where CSR continues to remain largely voluntary.

The analysis confirms that effective corporate governance provides the institutional foundation for successful CSR implementation. Governance mechanisms such as independent directors, board committees, transparent disclosure practices, stakeholder engagement, and board accountability substantially influence the quality, credibility, and effectiveness of CSR initiatives. Consequently, CSR should not be viewed merely as a statutory spending requirement but as an integral component of sound

corporate governance that enhances stakeholder confidence, corporate legitimacy, and long-term business sustainability.

The study further reveals that although India's legal framework is comprehensive and has considerably improved corporate accountability, several implementation challenges continue to limit its effectiveness. These include inconsistent CSR disclosures, inadequate monitoring and impact assessment of CSR projects, regional concentration of CSR expenditure, instances of greenwashing, weak enforcement mechanisms, and a tendency among some corporations to treat CSR as a compliance obligation rather than a strategic governance commitment. The shift from criminal liability to civil penalties has improved regulatory efficiency; however, stronger institutional oversight and greater emphasis on outcome-based compliance remain necessary to ensure that CSR initiatives generate measurable social and environmental benefits.

The comparative analysis indicates that while India's mandatory CSR expenditure model is unique, international jurisdictions such as the United Kingdom, the European Union, the United States, Japan, and Singapore increasingly emphasize ESG integration, sustainability reporting, stakeholder governance, and enhanced board accountability. These global developments suggest that the future of corporate regulation lies not merely in mandatory financial contributions but in embedding sustainability and responsible governance within corporate strategy, risk management, and decision-making processes. The growing influence of international standards, including the OECD Principles of Corporate Governance, the United Nations Sustainable Development Goals (SDGs), and ESG reporting frameworks, further underscores the need for harmonising Indian corporate law with evolving global governance practices.

The research therefore concludes that Corporate Governance and CSR are complementary legal mechanisms that mutually reinforce responsible business conduct. Effective governance strengthens CSR performance, while meaningful CSR enhances corporate reputation, stakeholder trust, and sustainable economic development. The study supports the proposition that stronger governance structures positively influence CSR compliance and corporate accountability, thereby affirming the central research hypothesis.

To strengthen the existing legal framework, the study recommends enhancing regulatory oversight through robust monitoring and enforcement mechanisms, improving CSR impact assessment methodologies, strengthening board-level accountability for sustainability initiatives, expanding mandatory ESG disclosures, promoting digital transparency in CSR reporting, and encouraging greater stakeholder participation in governance processes. Policymakers should also consider harmonising CSR regulations with international sustainability standards while preserving India's distinctive stakeholder-oriented approach to corporate regulation.

In conclusion, the future of corporate governance in India lies in moving beyond procedural compliance towards a value-based governance model that integrates legal accountability, ethical leadership, environmental stewardship, and social responsibility. Such an integrated approach will not only improve corporate performance and investor confidence but also contribute meaningfully to inclusive growth, environmental sustainability, and the broader constitutional vision of social and economic justice. As corporations increasingly become key actors in national development, strengthening the synergy between corporate governance and CSR will remain essential for achieving sustainable, transparent, and responsible corporate citizenship in the twenty-first century.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 191-198

Caste, Untouchability and the Law: Its Origin and Contemporary Forms

Mukesh Kumar
Ph.D. Research Scholar
Department of Political Science, University of Delhi.

Abstract :

This paper explores the origins and contemporary forms of caste and untouchability in India, focusing on the role of law in addressing these inequalities. It traces the transformation of the caste system in a contemporary time and discrimination, particularly against the margin of the society. The study examines key legislations such as the Protection of Civil Rights Act (1955) and the SC/ST (Prevention of Atrocities) Act (1989).

While these legal measures aim to ensure equality and dignity, the paper argues that caste-based discrimination persists in subtle and structural forms which reflects in daily life. It concludes that legal reforms alone are insufficient and must be supported by broader social change to achieve substantive transformation in the society.

Introduction :

In This bibliographic essay, I'm trying to address the caste based social identity which is pertinent to Indian society and other relative elements which are attached with caste. And how it's for someone's privilege and at the same time humiliating activity for Someone in the same society .And Caste based untouchability for some groups based on physical touch and changing form of untouchability in contemporary time where there's no problem in physical touch but indirect and inherent notion of caste based discrimination is present event today. In this essay the emphasis will be on legislation and safeguards which are made by parliament to stop caste based atrocities and provisions in Indian Constitution for welfare of these communities. So this phenomenon has to be understood in larger context like state-society power dynamics in order to understand why it happens and how it can be checked. SO The target of caste based violence are untouchables according to old

structure of Hindu social order .so the practice of untouchability has a long history and quite complex also. The institutional structure which governed social conduct in society are known as "caste system" and according to Hindu social order it's fixed as vertical division of society known as "varna system". At the top of this system are the Brahmana (priestly class), followed by 'kshatriya' (the warrior class) and Shudra (service class) stood at the bottom hierarchy

Untouchables were out of this system. Later during the independence struggle against Britishers ,Gandhi tried hard to remove untouchability and founded All India Harijan Sangh for this purpose. In South India there was a self respect movement led by E.V. Ramasamy. Dr. B.R Ambedkar who formed "All India Depressed Classes Federation" and fought for equality, liberty, fraternity. Kalpana Kannabiran's Caste, Atrocities and the Criminal Justice System (2012) examines the relationship between caste and India's legal framework, with a focus on the SC/ST Act. The author acknowledges the Act as an important legal measure but highlights the difficulties in its enforcement, including systemic biases within law enforcement and the judiciary. So First one is Ghanshyam Shah, Harsh Mander, Sukhadeo Thorat, Satish Deshpande, and Amita Baviskar's Untouchability in Rural India (2006). And the second one is NICHOLAS B. DIRKS's Castes of Mind Colonialism and the Making of Modern India (2001), and third is Sthabir Khora's CASTE, RESERVATION, ATROCITY LAW AND DISCRIMINATION.

Historical background :

Ghanshyam Shah, Harsh Mander, Sukhadeo Thorat, Satish Deshpande, and Amita Baviskar's Untouchability in Rural India (2006), these authors are interrogating untouchability in rural areas why so even today ,after Independence of seventy five year with its change form. So this book elaborate different school of thought and their idea's regarding caste. So they begin with the model of varna system and how ati-shudra (untouchables)are outside from the four dominant category of varna system or earlier social structure of Indian society. So there is one school of though who advocates Aryan invasion theory and emphasized that it's Aryan(white) who conquered the native and made them untouchables or Dasa(slave) because they were not fit according to their text or shastra and religious practices. The 'touchables' were 'white' Aryans who invaded India, and con-quered the black race native to the subcontinent called the Dasas or Dasyus, enslaving them and categorizing them as 'untouchables' (Risley 1908; Dutt 1931).But DR.B.R Ambedkar disagreed with Aryan race theory according to him there is no racial or color difference between brahmins and shudra and he further argued that there Was no separate category of shudra but according to him shudra ranked Kshatriya as part of indo-aryan society.but when conflict arises between brahmins and shudra so brahmins refused to perform upanayanam for Shudra. So he was clear that there's hardly any difference

in physical characteristics Between shudra and brahmins.But a social reformer Jyotika Phule in his writing gulamgiri supported Aryan race theory and declared brahmins as invader to native .this books also discuss another school of thought called Marxist school of thought which argue that untouchability is there because problem is in mode of production. And argued that in India the Popular occupation is agriculture where labour power needed so the majority of the population is working as labourer and tiny class have landholding and untouchables Does not have land. So in the twentieth century the term dalit came in to existence which represent downtrodden class and their struggle for empowerment, dalit panthers in Maharashtra asserts this term and then it become political category.

For Gopal guru (2001) the term not only indicate identity but also aspiration and struggle for change and revolution. For mapping the untouchability, caste based atrocities and its different forms authors surveyed almost eleven state in India and above five hundred village and employed high school level and also some graduate and diverse social background including untouchables and other social group for survey.so this empirical study include first non public institution like common water tank, temple and fields where discrimination happens. So in survey they found that in many village almost 40 to 43 percent dalits are not allowed in public tanks for common use. And in restaurant, tea shops dalit men entry hardly allowed and if somehow open entry then not allowed to sit there and using hand wash and water there and they have to put money in ground also. Same things happen in washerman a dhobi denied service for dalits residential segregation are there in village. They live in different tolla apart from other group. In temple entry and in regions and cultural sphere .there is discrimination wage for work dalits are paid less in comparison to non dalits. In burial and cremation site are denied for dalit and violence happen during their entry. discrimination in public institutions like in police station, Health center and village-Panchayat and educational institutions. So in primary school in mid day meal service dalit students sit in different lines. so these are different sites of discrimination and untouchability or exclusion which are practised in villages which is reflected in survey reports. This book also Emphasize and map discrimination which dalit women are facing during survey. Dalit women faces triple discrimination like caste, class, gendeda dalit women faces discrimination on the basis of their caste like untouchability and because they are financially marginalized and due to economically poor condition faces lots of difficulties in access of health and education.

Because of the patriarchal nature of society they face further gender based discrimination in society and family. So most of the women are working in agriculture like Punjab, Tamil Nadu, Bihar, and Orissa. So they faces discrimination at workplace like untouchability and sexual harassment and sometimes rape happens in field because most of the land is in hand of so called upper caste and even land owner's children are abusing dalit womens in the field and in tune and humiliating with body

language. Most of the dalit women are paid low wage and most of the dirty or polluted work is assigned to them. Dalit women worked for uppercase houses and so the entry is given through back door not from main gate and restricted entry into the kitchen.In Karnataka's Navalgi village, nearly all Dalit households are involved in prostitution. In Orissa, non-Dalits don't touch them when receiving clean clothes but do when giving dirty ones.so caste based occupation like prostitution and devadasi in temples and manual scavenger and washerman are also a burning issues in Indian society which restricted these communities and stops upward mobility in all sphere of life like social, cultural, religious, economic and subjugated these communities.

Nicholas B. Dirks's castes of mind colonialism and the Making of Modern India, dirks argue that caste in modern time is not a product of ancient India but it's produce by colonial administration by ethnographic survey and census and it took more rigid form , earlier it was context specific and flexible because of colonial modernity and their efficient functioning of administration and tracing Indian population's all activities through colonial knowledge system it became more systematized and organised and assertive identity. Caste became one of the important attributes in Indian society for understanding all sphere of life of Indians. And with passes of time it became political category of Indian society. According to Louis Dumont in Hierarchicus explain that how caste is a essence of Indian society and it's different from western society's individualism and rationality. And it's also a product or encounter of orientalism and British colonialism .Orientalism produce colonizers superior and colonized inferior and constructed that western society has rationality but colonised society lack this and are backward and practising dogma and living communal(community) life because of caste based society but western society is living individualistic life and are progressive.

So orientalism shaped different kind of history. It is a kind of knowledge-power nexus. Britishers produce knowledge according to their will and their administrative management because they always want to be a part of power. Caste is thus understood as a colonial nostalgia for a community-oriented society that the modern West has supposedly lost. So dirks challenge the idea that caste is continue in same form or nature that was in ancient time and he put that caste has changed In modern India because of colonial construction and transformed it more systematized through bureaucracy and ideologically Strong. Britishers and orientalist defined Indian society through brahminical text as universal truth and build a uniform and pan-indian concept of caste. Britishers through colonial technology like Census and Indian population, land revenue system and ethnographic codification. But Indian Social reformer and Intellectuals and nationalist challenged colonial construct as well as appropriated it. But at the same time various anti caste movements like dalit movement or non brahmanical movement they also challenged caste system through mobilization based on

caste and caste based assertion and empowerment and united all the so called lower caste. And Also dirks emphasis that how in post-independence India caste play an important role in politics and shape politics and whole debate around reservations and affirmative action that's why dirks emphasis that modern caste definitely has roots in colonial era. He emphasised on caste has gender role in controlling women through marriage and domestic constraint .Indian scholars fail to address this issue .So in contrast preclinical India dirks emphasis that caste was one of many social markers shaped through historical and local dynamics .Colonialism depoliticized Indian society by shaping Caste as main political category and making it sole cultural and religious category and failed to understand historical agency of Indian political institutions and communities.

Sthabir Khora's caste, reservation, atrocity law and discrimination (2025), In This book Khora in part three LAW, ATROCITIES AND DISCRIMINATION argue that the narrative was build that how Prevention of Atrocities act(1989) and Section 498 IPC are being misused which is mean to protect scheduled caste and scheduled tribe and women. So the Popular Perception is in society that SC/ST Act is being misused against certain communities. But there's no empirical evidence or judicial evidence in order to substantiate that claim. But it's clear that power structure of society organization of society are based on caste where certain communities are more powerful and some are more marginalized and at the same time police bias and indirect caste discrimination and mostly victim's community are unaware of legal system because of illiteracy so these things shows that how laws failed to deliver justice. So police 'final Report' under 498A(domestic violence) and SC/ST act shows that in many cases under 498A police closed cases as mistake of fact and under SC/ST act are more labeled as a false cases .So according to author there is structural and procedural injustice in the institutions and societal structure. So the final Report is not scrutinized although it's first step in justice delivery .The poor and marginalized community rarely lodged a FIR against dominant caste because of social pressure and lack of knowledge of legal system. Police work in pressure of social and caste bias so it's a major Hurdle in justice delivery and investigation stage.

So because of complex structure of law there's public-private dichotomy and evidence standards like in 498A, relatives are considered valid witnesses. In case of SC/ST Act cases, community members are considered interested and Biased undermining their testimony. And lately victims have to settle the case because of caste based bias in society and in institutional power structure and reconciliation in 498A is encouraged and simply resulted in by mistake case was filed or mistake of fact. Many genuine cases are not investigated because of myth Constructed that the laws are misused. The Subhash Mahajan case weakened the Act by mandating prior approval for arrest under the Act. The claim was that it's based on NCRB data but that was statistically flawed. This book also Emphasize error in data

or in comparing different stages of legal processing like in acquittal and in final Report. Also this book highlights the regional anomalies in false cases like fifty percent false cases are coming from Rajasthan rather than this repetition at national level. Authors also focuses discrimination on the basis of caste in universities and its indirect and hidden fact that can't be visible easily like discourse of merit and reservation and autonomy and false propaganda against reservation. That's Why mostly dropout happens in universities from dalit community. And Popular Rohit vemula's suicide case which is institutional murder.

Methodology :

Ghanshyam Shah, Harsh Mander, Sukhadeo Thorat, Satish Deshpande, and Amita Baviskar's Untouchability in Rural India (2006), methodology of this book is quantitative as well as empirically document the untouchability prevalence in rural India. And its variance in various state and across the village. The study was conducted in eleven Indian state, covering diverse socio-economic and caste based marginalization and The spheres—public, religious, cultural, economic, and personal—where untouchability is practiced. The institutional role of the state, market, and civil society in either perpetuating or mitigating caste-based exclusion. These included Tamil Nadu, Maharashtra, Rajasthan, Madhya Pradesh, Bihar, Uttar Pradesh, Karnataka, Punjab, Andhra Pradesh, Kerala, and Gujarat. A total of 565 villages were selected for detailed fieldwork. Villages were chosen to represent variation in geography, caste dominance, socio-economic development, and population. Surveyors direct involve in discussion with dalits in village and also stayed two-three days in village and also investigators include diverse socio-cultural background. And they trigulate their observation by official records like Census or school data and interview with dalits and non-dalit and with analysis of actual practices.

Nicholas B. Dirks's castes of mind colonialism and the Making of Modern India, The methodology used by Nicholas B. Dirks in Castes of Mind: Colonialism and the Making of Modern India is historical-anthropological and interdisciplinary, grounded in archival research, discourse analysis, intellectual history, and ethnography. Below is a detailed explanation of his methodology: So dirks primary method is historical analysis of caste with reference to British records and various colonial archival sources like how it conceptualizes and how it's different from ancient times. Records from the India Office Library (IOL), London ,The National Archives of India (NAI), New Delhi ,The Tamil Nadu Archives (TNA), Chennai ,The Government Oriental Manuscripts Library, University of Madras. Documents from SOAS, Nehru Memorial Museum and Library. These sources include Colonial censuses, Gazetteers, Ethnographic reports by British officials (like H.H. Risley) Missionary Writings, Orientalist scholarship. The texts of Orientalist scholars like William Jones, Max Müller

and British administrative tools and dirks closely analyzes the language ,categories and assumptions used by Colonial administration. Critical Engagement with Nationalist and Postcolonial Thought. Dirks analysed how Indian nationalist and social reformers and dalit intellectuals responded to or appropriated colonial construct of caste.

Sthabir Khora's caste, reservation, atrocity law and discrimination (2025), In this book authors uses a multi-pronged empirical and interpretive methodology to interrogate how legal instruments like Section 498A IPC and the Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act, 1989 function in practice. So the methodology is primarily focused on analysing the ground-level application of SC/ST Act and IPC 498A and perception of the society regarding these laws. And its difficulties and challenges in implementation .SC/ST acts success and failure. A case study of final Report (FRs) and detailed empirical studies involves a study of hundred Final Reports each Under section 498A IPC (domestic violence).A more detailed primary study was conducted in six districts of a North Indian state, with the following components Quantitative (Secondary) Data Analysis of 498 Final Reports under the SC/ST Act from all police stations in these districts. Statistical classification:89.36% were labeled as "false"6.02% "civil in nature"3.41% "mistake of fact".

Conclusion :

So this has been written on the basis of three books which are above mentioned on caste , Untouchability and laws related to caste. Ghanshyam Shah, Harsh Mander, Sukhadeo Thorat, Satish Deshpande, and Amita Baviskar's Untouchability in Rural India (2006) in this book authors focus on untouchability in rural India and its changing form .so these authors involve deeply and did empirical survey in many villages to study modern caste but in second book. Nicholas B. Dirks's castes of mind colonialism and the Making of Modern India, explained how caste taken another form with entrance of Britishers and how they changed the concept of caste through administration and various mechanism like Census and ethnographic survey and other colonial technology and with interaction of colonial modernity and orientalist construction of caste and in third book Sthabir Khora's caste, reservation, atrocity law and discrimination (2025) above Focused on the atrocities laws like SC/ST Act and Section 498A so focus was about misunderstanding of this Act and difficulties in implementation and myth in society and also how it failed to deliver justice in society because of various social-political pressure and societal hurdles. So caste is a important issue and main agenda of politics even today so these three Books shows light on understanding caste from different perspective in first book to colonial construct and also legal measures which is taken in independent India Various challenges in it.So lots of political debate around around caste has roots in history and

that's it's reflecting today in New forms .And whole debate around reservations and constitutional majors In contemporary time is a product of history .And traditional form of caste which is more institutionalized today is new challenges in front of academia and state also and complexities of contemporary time.

References :

- Shah, G., Mander, H., Thorat, S., Deshpande, S., & Baviskar, A. (Eds.). (2006). Untouchability in rural India
- Dirks, N. B. (2001). Castes of mind: Colonialism and the making of modern India. Princeton University Press.
- Khora, S. (n.d.). Caste, reservation, atrocity law and discrimination. Routledge India.
- Frankel, F. R., & Rao, M. S. A. (Eds.). (1990). Dominance and state power in modern India: Decline of a social order (Vol. 2). Oxford University Press.
- Chandra, R. (2004). Identity and genesis of caste system in India. Gyan Publishing House.
- Tripathi, S. (2015). Untouchables and human rights: Dr. Bindeshwar Pathak (Padma Vibhushan awardee): The man and his vision. Rawat Publications
- Sharan, M. R. (1999). Last among equals: Power, caste and politics in Bihar's villages. Viking.

Email-mukeshyadav@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 199-205

DR. B. R. AMBEDKAR : A BEACON OF HOPE FOR HUMAN RIGHTS IN INDIA

Maheshpal
Research Scholar, Department of History, University Of Delhi.

ABSTRACT :

This paper delves into the profound contributions of Dr. B.R. Ambedkar a luminary in India's history in advancing the cause of human rights. Human Rights as fundamental to the dignity of all individuals provide the bedrock for a just and inclusive society. Tracing the historical roots of human rights and their evolution, the paper contextualizes Dr. Ambedkar's role within this broader framework. Born into an Untouchable Caste and experiencing firsthand the pervasive discrimination entrenched in society, Dr. Ambedkar became a stalwart advocate for human rights. His journey from facing systemic oppression to becoming the principal architect of the Indian Constitution is a testament to his unwavering commitment to Justice and Equality. The paper explores Dr. Ambedkar's pivotal role in framing the Constitution of India a document that enshrines the principles of Justice, Liberty, Equality and Fraternity . It examines specific Constitutional provisions crafted by Dr. Ambedkar that aimed at dismantling social hierarchies , ensuring equal opportunities and safeguarding the rights of marginalized communities. Dr. Ambedkar's tireless efforts in championing the cause of human rights extended beyond Constitutional Drafting. The paper sheds light on his advocacy for social justice his fight against untouchability and his emphasis on education as a tool for empowerment . It underscores how Dr. Ambedkar 's vision transcends his time resonating as a beacon for ongoing struggles for human rights in contemporary India. Furthermore the paper delves into the enduring impact of Dr. Ambedkar's legacy on the human rights discourse in India. It analyzes the continued relevance of his principles in addressing contemporary challenges and fostering an Environment where human rights are safeguarded for all.

INTRODUCTION :-

HUMAN RIGHTS BRIEF INTRODUCTION :

Human rights cornerstone of an equitable society are intrinsic freedoms and entitlements that

transcend distinctions of race ethnicity, gender, religion, nationality , or any other societal categorization. These inherent rights, inviolable and universal, lay the foundation for a society where very individual experiences dignity, respect, and the potential for personal growth. Human rights constitute a spectrum of entitlements, ranging from the most fundamental, such as the right to life to those that enrich our existence including the rights to nourishment, education, employment, health and freedom.

Beyond the constraints of geographic or demographic specifics these rights are the birthright of every individual, forming a tapestry of entitlements that shape the fabric of a just and compassionate society. At its core this spectrum of rights not only safeguards our basic existence but also lays the groundwork for a life characterized by meaningful pursuits, educational opportunities, dignified work optimal health and cherished freedom to live life on our terms". Human rights stand as the cornerstone of our shared humanity, embodying the essential benchmarks required for individuals to lead lives steeped in dignity and respect. These rights like a compass guiding us through the vast landscape of existence serve as the fundamental building blocks for a world where every person can flourish and thrive", Human rights akin to the nurturing roots of a tree go beyond mere provisions they are the guardians of our essential needs, shielding us from the tempests of adversity. In their embrace vulnerable communities find a fortress against the onslaught off abuse and individuals discover the courage to confront the shadows of societal corruption. Like a symphony of voices human rights champion the melody of freedom of speech and expression carving our spaces for dissent and diverse perspectives. They stand as the sentinels of choice ensuring that people are free to practice the religion of their choice or if they prefer to tread path unbound by religious affiliations. In the realm of love human rights weave a tapestry that celebrates the freedom to love without constrains embracing the beautiful spectrum of human connection. In essence human rights are the architects of a society where each person's journey is respected protected and celebrated. Human rights have been grouped into three broad categories.

- **CIVIL AND POLITICAL RIGHTS** :

These rights emerge as a vibrant tapestry weaving threads of life liberty, freedom of expression, religion, assembly and association. These fundamental freedoms resonate as empowering chords, inviting individuals to actively engage in society and exercise their autonomy.

- **ECONOMIC, SOCIAL AND CULTUREAL RIGHTS :**

This includes the Rights to Food, Shelter, Education, Healthcare, work and the vibrant hues of cultural expression.

- **COLLECTIVE RIGHTS :**

These are pillars of shared aspirations transcending individual realms. These rights bestowed upon groups rather than individuals embody the spirit of self –determination development and a pristine environment. These rights recognize the importance of collective action and shared resources for human well-being."

DR. AMBEDKAR'S HUMAN RIGHTS CRUSADE IN INDIA:

Dr. B.R. Ambedkar stands as a beacon of wisdom and advocacy, globally celebrated as one of the foremost defenders and philosopher of human rights. His visionary outlook has not only shaped a paradigm shift in the conceptualization of human rights but has also played a pivotal role in their legal codification. The echoes of his profound ideas 4esonate across time continuing to kindle the flames of inspiration among contemporary human rights defenders."4 Dr. B. R. Ambedkar emerges as an indomitable champion of human rights leaving an indelible mark on the landscape of India's quest for equality. When the echoes of human rights and the pursuit of gender equality resonate the illustrious name of Dr. Bhimrao Ambedkar unfurls a path paved with the principles of justice and equity. His legacy stands as a guiding light illuminating the way toward a nation where every individual irrespective of background find solace in the embrace of equality.

His leadership holds unparalleled significance particularly for the Dalits of India a community that still grapples with the challenges of occupying the lowest rungs of Indiansociety. Dr. Ambedkar's journey marked by his own Dalit identity , ascended to elevated heights making his leadership a beacon of hope and inspiration for those marginalized and oppressed within the complex social fabric of India. Despite the strides made by Dr. Ambedkar the enduring struggles of the Dalit community highlight the continued need for transformative change and advocacy for their rightful place within the broader social structure.

Dr. Ambedkar is widely recognized for his pivotal role in formulating the Indian Constitution wherein he intricately incorporated numerous provisions aimed at safeguarding the rights of the most marginalized segments of society. His profound commitment to inclusivity and social justice is vividly reflected in the Constitutional framework, which stands as a testament to his visionary efforts in securing the rights if the often overlooked and disenfranchised sections of the population.

CONTRIBUTIONS OF DR. B. R. AMBEDKAR FOR SAFEGUARDING HUMAN RIGHTS IN INDIA.

DRAFTING THE INDIAN CONSTITUTION :

Drafting the Blueprint of Democracy. Dr. B.R. Ambedkar assumed the pivotal role of the Chairman in the Drafting Committee entrusted with the monumental task of fashioning the Indian

Constitution. His visionary leadership left an indelible mark as the Constitution emerged as a beacon of hope embedding fundamental rights and unequivocally putting an end to the deplorable practice of Untouchablity. This historic document not only shaped the governance framework but became the cornerstone for an egalitarian India championing the cause of equal rights and opportunities for every citizen. Dr. Ambedkar's dedication to this Constitutional masterpiece laid the groundwork for a democratic nation where Justice, Liberty, and Fraternity reign supreme.

CONSTITUTIONAL PROVISIONS FOR SAFEGUARDING HUMAN RIGHTS IN INDIA :

The Indian Constitution stands as a fortress ensuring that the flame of basic human rights illuminates the path for every citizen. Nestled within the pages of Part III, the Fundamental Rights breathe life into the very essence of civil liberties forming an impregnable shield against any encroachment on an individual's liberty. In a symphony of Justice these rights not only restrain the State from overreach but also bind it in solemn duty to shield its citizens from any encroachment by society. The Constitution, like a vigilant guardian weaves a narrative where the fundamental fabric of human rights is not just protected but celebrated laying the foundation for a society that cherishes Liberty, Equality and Fraternity."

Fundamentals Rights given in Indian Constitution which ensures human rights for all citizens.

- Rights to Equality (Article 14 -18)
- Right to Freedom (Article 19 -22)
- Right against Exploitation (Article 23 -24)
- Right to Freedom of Religion (Article 25 -28)
- Cultural and Educational Rights (Article 29 -30)

CHAMPIONING DALIT RIGHTS :

In the labyrinth of India's social hierarchy, Dr. B.R. Ambedkar emerges as a beacon of hope spearheading an unwavering movement against the pervasive chains of caste discrimination. His visionary crusade transcends mere rhetoric advocating for a transformative trifecta that encompasses educational empowerment, economic upliftment and political representation for the oppressed Dalits." As the forefront of this metamorphic journey is the Dalit Buddhist Movement, a revolutionary initiative that Dr. Ambedkar pioneered . Beyond a mere social reformation this movement becomes a symbolic pilgrimage toward liberation from the centuries old shackles of the caste system. Dr. Ambedkar's call for emancipation echoes through the annals of history resonating as an invitation to unshackle dreams defy societal constraints and forge a path towards a more egalitarian and inclusive India.

PROMOTION SOCAIL JUSTICE :

Dr. B.R. Ambedkar an architect of social change painted a visionary canvas that extended far

beyond the abolition of Untouchablitity. His indomitable spirit advocated for the fundamental tenet of social justice, orchestrating a symphony of empowerment for all marginalized communities. Dr. Ambedkar's resonant voice echoed i n the corridors of reform championing the cause of women's rights with an unwavering commitment. His pen inscribed tales of emancipation urging society to dismantle patriarchal structure and grant women their rightful place as time. He staunchly advocated for the equal status of women within the sacred institution of marriage. He said "The relationship between husband and wife should be one of closest friends."

In the labyrinth of his ideology Dr. Ambedkar weaved threads of labor rights striving to break the chains that bound the working class. His vision envisioned and equitable society where every individual regardless of caste or creed could toil in dignity and reap the fruits of their labor."

Religious freedom emerged as a cornerstone of Dr. Ambedkar's ideology. In a diverse nation like India, he championed the right of every individual to choose faith fostering an atmosphere where religious plurality thrived Dr. Ambedkar's tapestry of social justice vibrant and encompassing serves as a testament to his enduring legacy- A legacy that transcends time challenging contemporary society to carry forth the torch of inclusivity, equality and justice.

INFLUENCING LEGAL REFORMS :

Dr. B.R. Ambedkar a legal luminary and social reformer assumed the mantle of an architect of justice wielding the law as a powerful instrument for societal transformation. His pivotal role in enacting landmark laws stands as a testament to his unwavering commitment to abolishing discriminatory practices and safeguarding the rights of the vulnerable.

One of his crowning achievements was the fervent advocacy for the Hindu Code Bill, a legislative masterpiece aimed at dismantling age old inequities within the Hindu personal laws. Dr. Ambedkar's legal acumen carved a path toward render justice, championing the rights of Hindu women in matters of marriage divorce and inheritance. His efforts laid the foundation for a more egalitarian society where women could assert their rights with newfound vigor."

In the crucible of legislative action, Dr. Ambedkar's tireless endeavors gave birth to the Scheduled Caste and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act." This transformative piece of legislation became a bulwark against atrocities inflicted upon marginalize communities providing a shield of legal protection. Dr. Ambedkar's foresight recognized the imperative of not just legal and equality.

LESSONS FROM HIS LIFE :

Dr. Ambedkar's life unfolds as a compelling narrative that transcends geographical boundaries offering universal lessons for human rights struggles worldwide. His journey imparts profound insights

into the mechanisms that drive societal transformation and the ongoing fight for justice. Let's explore some of these invaluable lessons.

- **EDUCATION AS A TOOL OF EMPOWERMENT :**

Dr. Ambedkar's relentless pursuits of knowledge Untouchability to becoming a scholar and a legal luminary highlight the role of education as a catalyst for social justice and individual liberation. Dr. Ambedkar's life advocates for the idea that knowledge is not just power it is a path to breaking the chains of discrimination.

- **THE IMPORTANCE OF LEGAL FRAMEWORKS :**

At the heart of Dr. Ambedkar's legacy lies the Indian Constitution a groundbreaking legal framework that guarantees fundamental rights and seeks to protect vulnerable groups. His meticulous efforts as the chairman of the Drafting Committee paved the way for a Constitution that stands as a bulwark against injustice.

- **SOCIAL MOBILIZATION AND POLITICAL REPRESENATATION :**

Dr. Ambedkar's life teaches us the importance of collective action and political participation. From leading social movements to advocating for political representation he exemplified the power of mobilizing communities to demand their right full place in society." His journey reinforces the notion that social change is often a collective endeavor requiring active participation and representation in political processes.

- **STRATEGIC ADVOCACY AND COALITION BUILDING :**

Dr. Ambedkar's approach to advocacy combines unwavering principles with strategic pragmatism. His ability to build approach to advocacy combines with like –minded individuals and a group demonstrates the effectiveness of a strategic approach to social change." Dr. Ambedkar's life encourages us to blend principles with pragmatism navigating the complex landscape of social transformation. In essence Dr. Ambedkar's life is not just a chapter in Indian history it is a universal guide for those engaged in human rights struggles globally. His legacy transcends borders, offering a blueprint for leveraging education, legal frameworks social mobilization, and strategize advocacy in the pursuit of justice and equality, Dr. Ambedkar's life is a testament to the enduring power of the human spirit to overcome oppression and carve a path toward a more just and equitable world.

CONCLUSION :-

Dr. B.R. Ambedkar's narrative transcends the boundaries of personal triumph it serves as a compelling testament to the indomitable spirit of human resilience and an unwavering commitment to the cause of human rights. In a world still contending with pervasive issues of inequality and discrimination. Dr. Ambedkar's legacy shines as a beacon of hope. His enduring contributions resonate

as a powerful reminder that the pursuit of a just and equitable society is not merely essential but also within our grasp.

NOTES AND REFERENCES :

- https://en.wikiedia.org/wiki/Human_roghts
- Ibid
- "The official Website of Dr. Ambedkar International Center-DAIC." https://web.archive.org/web/20210414035552/http;//daic.gov.in/lastaccessed 1/12/2023.
- Corinne Lennox Dr. Ambedkar: a visionary for human rights https;//talkinghumanrights.blogs.sas.ac.uk/2016/04/13/dr-ambedkar-a –visionary-for-human-rights/last accessed 1/12/2023.
- Prasoon Shekhar Human Rights and Constitution of Indiahttps;//blog.ipleders.in/human-rights-constitution-india/last accessed 1/12/2023.
- Dhananjay Keer (1995) 'Dr. Ambedkar Life and Mission, Popular Prakashan, ISBN-978-81-7154-237-6.
- Kumar, Ravinder (1985) "Gandhi, Ambedkar and the Poona Pact, 1932" South Asia; Journal of South Asian Studies. 8(1-2); 87-101, dui: 10.1080/00856408508723068..
- Guha, Ramchander (2013) "Makers of Modern India, Harvard University Press, ISBN-978-0-674-72596-6.
- Kadambari Aggarwal Rights of the Scheduled Caste and Scheduled Tribes : A Legal Primerhttps://nyaaya.org/guest-blog/rights-og the-scheduled-castes-and scheduled-tribes-a legal –primer/ last accessed 1/12/2023.
- Indian Political Thinker – B.R. Ambedkar Dristhti IAS https://www.drishtiias.com/to the points/Paper2/ indian political thinker b.r. Ambedkar last accessed 7/12/2023.
- Kalvakunitla Kavitha Ambedkar's approach towards social change shaped India's characterhttps://www.hindustantimes.com/opinion/ambedkar –s –approach toward- social-change-shaped-India-s character/story-yFFITQmOYLYyjc3hSwaXto.htmllast acceseed1/12/2023.

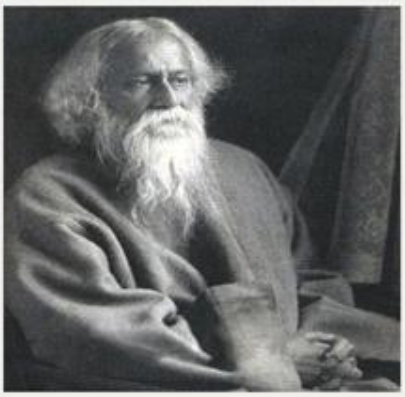
संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 206–216

Okakura Tenzing interaction with Rabindranath Tagore

Ankur Majumdar
Research Scholar, Department of East Asian studies, University of Delhi.

Abstract :

The 1902 meeting in Calcutta between Rabindranath Tagore and Okakura Tenshin fostered a significant cultural exchange that linked the Indian Swadeshi movement with Japanese Pan-Asianism. Their dialogue challenged Western colonial art and ideology, promoting an alternative, united Asian aesthetic and philosophical identity.Rustom Bharucha, has produced an informative and insightful narrative on the spiritual friendship between Rabindranath Tagore (1861-1941) and Okakura Tenshin (1862-1913). Set against the volatile backdrop of the anti-English Swadeshi movement in Bengal, and Japanese imperialism of the late Meiji period, this book questions Ideas of Asia through encounters between these two iconic figures: Tagore as India's national poet and the first Asian Nobel Prize winner, and Okakura as the internationally renowned Japanese art historian and curator for the Japan Institute of Fine Arts (Nihon Bijutsuin), the Tokyo Fine Arts School and the Museum of Fine Arts, Boston. These two men of culture held very different views towards Asia as they did towards each other; while Tagore stood for universal humanism, Okakura was branded an imperialist and even an 'ultra-Nationalist'.

Introduction :-

This Article highlights about the two asian intellects Tagore and Tension,as both were the belivers in pan asianism .The intellectual partnership between Okakura Tenshin and Rabindranath Tagore, highlighted by their 1902 meeting in Calcutta, was pivotal in fostering early 20th-century pan-Asianism and connecting Eastern aesthetics. While rooted in shared cultural ideals, their friendship also featured distinct differences regarding Japanese imperialism and humanism. In an Article Another Asia by Rustom Bharucha mentions Another Asia, well researched and lucidly written, is a remarkable achievement. It undertakes an original project as much in forging new ground in its critical engagement with friendship between "two luminaries of Asia," "break(ing) earlier myths of inter-Asian unity" (p. xv), as in delineating the political pressures on artists during times of global crises, as during world wars I and II. Lessons of the past are represented for readers in our post-9/11 era.

Another Asia makes significant contributions to the fields of Asian studies (linking South and East Asia) and area studies, where Bharucha rethinks national and linguistic boundaries by deploying contemporary theories on postcolonialism and globalization. Bharucha is an established scholar with several pathbreaking books on theater and seminal essays on intercultural performance. His progressive politics never lose sight of his base in Calcutta, India.

Bengali poet Rabindranath Tagore (1861–1941) and the Japanese art historian and curator Okakura Tenshin (also known as Okakura Kakuzo, 1862–1913). Their friendship was an ideological and aesthetic meeting of minds that helped shape the pan-asian movement in the early 20th century.

Key aspects of the Friendship :- The key aspects of their friendship include are as follows :-

- **The 1902 Encounter :** The two luminaries first met in Calcutta in 1902, when Okakura traveled to India. This period coincided with the anti-british swadeshi movement in Bengal and the modernizing Meiji era in Japan.
- **Shared Pan-Asian Vision :** Both men dreamt of a revitalized Asia that celebrated its own distinct cultural, spiritual, and aesthetic heritage. While Okakura's rallying cry was "Asia is one," Tagore focused more on universal humanism and ultimately warned against the dangers of aggressive nationalism
- **An Idealized Bond :** Their relationship is notable because it was largely defined by a silent, mutual affection and respect rather than extensive documented correspondence. They were cosmopolitans who deeply valued each other's commitment to art and the revival of Eastern philosophy.
- **Profound Cultural Exchange :** Okakura was closely aligned with figures like Sister Nivedita and heavily influenced the Bengal School of Art. Tagore, who famously wrote the national anthems for India and Bangladesh, later founded the university of Santiniketan to build upon these cultural

legacies.

Tagore's View of Art as a Vehicle for Cultural and Spiritual Expression : has never been a secret that art is a potent means of expressing culture and both Rabindranathan Tagore And Okakura Tenshin regarded art to be the center of cultural revival and preservation. Art was not such a Strict aesthetic form, and these types of thinkers recognized it as a valuable means of communication, which Embodied cultural and spiritual values. Their ideas on the role of art in the revival of the cultural life were Very much intertwined with their general philosophies of their identity as a nation, their cultural Independence and struggle against the colonial and Westernizing influences. Through analysis of their sides We do not only get the insight on the significant role of art in the formation of the individual consciousness And collective cultural identity in the period of crisis. As noticed that Tagore regularly occupied himself in his poems with matters of spirituality, nationalism and intimate Connection between the person and the sacred. His well known line of songs Rabindra Sangeet was not just The celebration of Indian music but also a tool of making the country united. These works were aimed at Helping Tagore make people of India take pride in their culture and awaken this national awareness towards Fighting the colonialism and rediscovering their identity (Mukherjee, 2018).

On a similar note, Tagore visual art was a platform through which he was able to express his personal Understanding of a cultural renaissance. His freedom of knowing the Indian culture and spirituality was Reflected through his paintings which were usually abstract and included numerous symbolical Representations. The application of art was not, however, thought out by Tagore as a mere decoration, on the One hand, there was an even deeper root in his philosophy of cultural revival, as he intended to make Something that would address the soul and intellect of his compatriots (Das, 2019). which were usually abstract and included numerous symbolical Representations. The application of art was not, however, thought out by Tagore as a mere decoration, on the One hand, there was an even deeper root in his philosophy of cultural revival, as His freedom of knowing the Indian culture and spirituality was Reflected through his paintings which were usually abstract and included numerous symbolical representations. The application of art was not, however, thought out by Tagore as a mere decoration, on the one hand, there was an even deeper root in his philosophy of cultural revival, as he intended to make Something that would address the soul and intellect of his compatriots (Das, 2019).

The Awaking of Japan published in 1904, Okakura was militant in his Promotion of the Japanese annexation of Korea, believing outright that Korea Was part of Japan. As he became a stronger imperialist, Okakura's rhetoricRevealed schizophrenic symptoms: 'Japan is and is not a part of Asia', 'we are actually not one'. Bharucha illuminates Okakura's linguistic and 'cultural schizophrenia' by detecting a combination of Englishness and Orientalism in his militaristic logic in the Awaking of the

East. Okakura wrote the book while he was in Calcutta in 1902, but it was published posthumously; first in aJapanese translation in 1938 and then in its original English in 1940. Even After his death, Okakura was complicit in justifying the so-called Greater East Asia War. Performance Paradigm 4 (May 2008) How could Tagore not have been disturbed by Okakura's contracted notions of 'One Asia'? Why did the great poet keep such an enigmatic silence over his friend's colonial thoughts? In the longest chapter of Another Asia, Tagore and his repulsion towards Nationalism take centre stage. Exploiting archival evidence, Bharucha confirms that Tagore had simply not read Okakura's texts when they were published. Bharucha points out in the final chapter, that it was not until 1938 that Tagore painfully confronted his late friend's staunch militant persona through an exchange of letters with his younger Japanese Friend, Yonejiro Noguchi. As a response to Tagore's condemnation of the Japanese invasion of China, Noguchi defended the war as an inevitability for Which Okakura would have pledged support were he still alive. In addition to This latency, we learn that Okakura perhaps did not ask or even want his Indian friend to read his books. Okakura chose to write in English so as not to address to his Japanese contemporaries, and even less his Indian ones. HisTarget audience was in 'the West' and particularly the United States – his Business base.

Bharucha also points out that Tagore's omission of Okakura in his lecture in1916 in Japan is probably related to Tagore's erasure of his own involvementIn the Swadeshi movement against British colonial rule, in which Okakura wasAlso visible in 1902. Although Tagore wrote an essay entitled Swadeshi Samalj in 1904, locating the spirit of swaraj (self-rule) in Hindu civilization, Kinships and everyday life, by 1908 he had gradually withdrawn himself fromPolitical activism. In saying 'I am only a poet', Tagore then consolidated his Rapturous vision of universal humanism by declaring himself againstNationalism and the modernity of the West. Tagore's ever-developing poetic license or the political incorrectness of his views on ongoing issues such as The West, Nation, modernization and history resulted in a series of Misunderstandings and criticism surrounding his work. After conducting Extensive analysis of Tagore's texts, full of ambivalent meaning and Metaphoric richness, Bharucha aptly concludes this chapter on Nationalism with the following words: 'the poet's enduring significance could lie in the fact that he compels us to reformulate the existing question . . .. I would say thathe is a profoundly anti-nationalist nationalitarian, whose universality cannot be collapsed into political internationalism, still less into globalism' (110).

Emphasis on the Importance of Preserving Indigenous Cultural Practices :-

Another common ideal between Tagore and Okakura was their conviction of the critical importance of Preserving indigenous cultural practices as a way of preserving national identity. Art and philosophy were regarded by both thinkers as being necessary to this preservation. For Tagore,

India's cultural identity was closely linked with its traditional arts, which he believed to be the spirit and values of the Indian civilization. Through his poems, songs and plays, Tagore attempted to encapsulate the essence of the Indian culture and sought a reviving of these arts as a way of reconnecting with the spiritual roots of India(Sarkar, 2019). His works in which he had put together themes from Hindu philosophy, Bengali folklore and classical music, was an attempt to liberate India's cultural consciousness in a modern setting, indicating the ways by which traditional practices could be made relevant in a way that adapts themselves to new realities.In Japan, Okakura's emphasis on the preservation of the traditional Japanese arts, above all those connected With the tea ceremony, calligraphy and Zen-inspired art, was a form of preserving the country's particular asesthetic and philosophical heritage. Okakura very concerned that Japan's adoption Westernization in the Sector of art and culture could be leading to the disappearance of these practices. His writings emphasized the Fundamental connection between art and culture and held that the indigenous art traditions of Japan were not The products of the past, but the living manifestation of Japan's spiritual values. Like Tagore, Okakura Assumed that art was the crucial element to the preservation of Japan's cultural integrity in a fast-changing world.

The Idea of Engaging with Modernity Without Losing Cultural Heritage :-

Both Tagore and Okakura saw the importance of, but insisted that such engagement should not take place, at any cost, with the fundamental values of their cultures. Rather than rejecting modernization as such, therefore, Both thinkers attempted to come up with ways in which traditional culture could coexist with and even enrich Modern developments. In particular, Tagore was far ahead of the times in this regard. He believed that India had much to gain from advancements of the West, particularly in the fields of science, technology and education. However, he argued that India had to fit these advancements in the framework of traditional values. From the perspective of Tagore, the idea of modernity should not be a one sided iconoclasm of the Ideas of the West, rather it should be a two-sided interaction that can achieve the goal of allowing India to Retain the essence of its spiritual and cultural values and to acquire the useful aspects of the constructive elements of modernity at the same time. He had a vision of a modern India that could assert itself in the Community of nations but which was grounded solidly in indigenous Indian traditions of art and philosophy. Likewise, Okakura postulated that the emodernization process of Japan should avoid erosion of its cultural Heritage. Faced with Western industrialization and aesthetic currents, he proposed a model of modernity that encompassed traditional Japanese values – especially those that had to do with aesthetics, spirituality, and the Natural world.

He proposed a Japan, which could take the results of the western technology and industrial

Processes and combine it with the cultural uniqueness. The attempts of Okakura were directed to ensuring That the idea of Japanese modernisation was not swept away by the ideas of philosophy and aesthetics that Had ruled the country centuries.Conclusively, Tagore and Okakura are – much like – equally concerned about preserving their cultures amid Western colonialism and westernization. Both men demanded a new impulse of native national cultural Inclinations and application of art and philosophy in national identity protection. However, they never Ignored the worth of engaging with modernity but made it a condition that engaging with modernity should Not be done at the peril of the constitutive heritage of culture. Their ideals are a very strong vision of how Traditions can develop in the conversation with the modernity, and can teach a lot to contemporary Discussions on cultural preservation in the globalised world.

Artistic Consciousness :

The Role of Art in Cultural RevivalIt is common knowledge that art has always been a great expression of culture, and both Rabindranath Tagore and Okakura Tenshin regarded art as the core of cultural restoration and maintenance. To such Minded thinkers, art was not a highly aesthetic thing but rather a significant channel of communication which was receptive to cultural and spiritual beliefs. Their ideas about the place of art in the revival of the cultural Life were closely interwoven with their general philosophies related to the national identity, cultural Independence of their country and their struggle against the impact of the colonial powers and Westernization. We also learn about the significance of art in the process of creating an inner world and Collective cultural identity in the moments of crisis by examining their sides.

The Role of Art in Shaping Cultural Consciousness and National Identity :-

Both Tagore and Okakura became aware that art was basic to the cultural consciousness and national identity. They did not regard art as an individual problem, on the contrary, they saw it as a collective entity that had a Role to play in the broader social and political environment. Both philosophers considered works of art as Manifestation of cultural ideas and social values and was influential in comprehending ones place in the World by the individuals and societies. Tagore's work was tied inextricably, for example, with his vision of The independent India, with a vigorous culture. His expressions through art was meant to bring feeling of Unity, and pride in the rich cultural heritage of India particularly in this ages, when India was under the rule Of the British. Through his poetry, songs and his visual art, Tagore attempted to fight the colonial version of India which often portrayed her as a spiritually poor and culturally backward nation. Instead he focussed on The greatness of Indian civilisation and forced himself to think about its spiritual depth and ability to have a Contribution to the international cultural dialogue. His art was a rallying cry to cultural self-assertion, and Was

meant to inspire a generation of Indians to reconnect with their heritage and to reclaim their national Identity from the forces of colonial domination.

To sum up, both Tagore and Okakura considered art to be a good means of cultural revival which will also Help teach the artistic consciousness to the respective societies. Whether through Tagore's multi-disciplinary Approach to art as spiritual and cultural expression of the Indian national identity, or Okakura's focus on the Spiritual and aesthetic aspects of Japanese art, both thinkers understood the role of art in the formation of Cultural consciousness. By connecting art with the broader themes of cultural and spiritual revival, both Tagore and Okakura helped to cement the place of artistic expression as a cornerstone of national identity against the cultural pressures from the outside. Their work continues to be a testament to the power of art in Cultural rebirth.

The contents of pan-Asian thought :-

Okakura Tenshin (also known as Okakura Kakuzo) was one of the most prominent early architects of Pan-Asianism thought. He believed in a shared, glorious, and spiritual Asian identity in the face of aggressive Western materialism, famously opening his 1903 book The Ideals of the East with the declaration, "Asia is one." At the same time that the pan-Asian movement was becoming more influential In political circles, its ideology became more concrete and better defined. During most of the Meiji period, as Takeuchi Yoshimi has pointed out, Asianism was a loose set of ideas rather than a coherent ideology.58 Takeuchi Had in mind the activities of pan-Asian activists who, without adhering to a clearly defined ideology but rather out of vague and romantic feelings of "Asian-ness," supported independence and revolutionary movements in Various Asian countries. Particularly well-known are the efforts of the early Kokuryukai members in assisting the early uprisings of Sun Yat-sen and the Anti-American uprising of Emilio Aguinaldo (1869–1964) in the Philippines, The struggle of Miyazaki Toten for the cause of Sun Yat-sen,59 the efforts of Oi Kentaro (1843–1922) to assist Korean reformers and the assistance given by Soma Aizo (1870–1945) to Indian revolutionary Rash Behari Bose (1886–1945).60 Since many of these activists were connected to the early Movement For Freedom and People's Rights (jiyu minken undo), the export of the Revolution to Asia – a contribution to the overthrow of the ancient régimes in Korea, China, etc. – was a central part of the motives of these activists.

Okakura Tenshin (1862–1913) in Ideals of the East claimed that "Asia is One," meaning an Asia Comprised of Indian ideals, Chinese ethics, and Japanese destiny. Asianism as An ideological inclination appealing for unity under Japanese leadership had Become an influential idea in Japanese society by the beginning of the twentieth Century.Furthermore, with the coming of the Showa era (1926–89), the vital Interests that were of life and death significance to the state, and the accompanying

consciousness of foreign crisis, were redirected toward resisting the Anglo-American powers who were seeking to prevent what they saw as Japanese attempts to control China. Once again this feeling of foreign crisis Gave birth to the idea of an Asia rallied beneath the leadership of Japan. For Example, Ozaki Hotsumi (1901–44), in a series of papers on The Idea of "East Asian Community" and the Objective Foundation for Its Realization published n the late 1930s, presented a theory enabling resistance to Chinese ethnic Nationalism (minzokushugi). Namely, he advanced the logic that unless Japan,China, and Manchuria could at once cooperate through a supra-state body to Harmonize their fate and conceive a solution to Asian agricultural problems, Asia would be unable to break loose from a state of semi-colonialism.

Tagore's views on Pan Asianism :-

Rabindranath Tagore's vision of Pan-Asianism was fundamentally cultural and ethical rather than political. He advocated for a spiritual and intellectual alliance across Asian nations to counter Western imperialism and materialism. However, he fiercely condemned Japan's militant expansion, warning that state-driven Pan-Asianism was merely a disguise for a new Asian imperialism.Tagore's Pan-Asianism was centered on the belief that Eastern civilizations shared a fundamental ethos emphasizing spiritual harmony, relatedness, and humanism. Rather than forming an aggressive political bloc, he believed that Asian countries should reconnect through intellectual, artistic, and educational exchanges to preserve their unique identities against the tide of Western industrialization and nationalism. Institutionalizing Unity: To bring this vision to life, Tagore founded the Visva Bharati University in 1921, establishing it as a premier center for Asian culture and cross-cultural dialogue. Revisiting "Greater India": He frequently spoke about ancient ties and cultural networks across Southeast Asia, promoting cooperation based on a shared historical heritage.

Critique of Imperial Pan-Asianism :-

While he initially collaborated with thinkers like Okakura Tenshin, Tagore grew deeply disillusioned with how the concept was hijacked by Japan. During his 1916 and 1929 visits to Japan, he publicly criticized the country for adopting the aggressive, profit-driven nationalism of the West.Tagore argued that driving out Western imperialists only to replace them with an equally brutal Japanese imperialism contradicted the true spirit of an interconnected Asia. He made his stance clear on multiple occasions: In his lectures, he warned that a Pan-Asianism driven by power and state dominance would become a "curse" rather than a blessing.He eventually severed ties with certain Japanese supporters when he realized they were attempting to use his philosophical rhetoric to legitimize their military conquests.

Okakura's Indian Trip: Japan's Reach into South-Asia :-

Asia from his university days, Okakura Tenshin accompanied Ernest Fenollosa a professor of political science, economics, and philosophy at the University of Tokyo on surveys of ancient temples and art across Japan. Fenollosa's interest in Japanese Buddhist antiquities was closely linked to the concurrent rise of European Indology. Thus, Okakura's connection with India originated during this period. After graduating from the University of Tokyo in 1880, Okakura became a civil servant at the Ministry of Education. For around two decades, he conducted domestic and overseas art surveys, as well as establishing a modern art education system. This continued until 1898, when he resigned from his positions as the director of art at the Imperial Museum and the president of the Tokyo School of Fine Arts. This eighteen-year working experience rejects Okakura's deep involvement in the Meiji government's modernization projects. Even after resigning, he con-tinued overseeing the compilation of History of Art in the Japanese Empire. Therefore, although Okakura held no official position when he visited India in 1901, this journey can-not be simplistically characterized as a purely personal cultural activity.The cultural and political nature of Okakura's India visit is illustrated by anotherprominent Japanese who traveled to India and other places outside Japan around the same time: the Buddhist explorer Otani Kozui. In the late 19th and early 20th centuries,while Western explorers headed into Asia, the Otani Expedition led by Otani Kozui be-came the first Japanese team to penetrate inland Asia. Given Otani's position as the head of Jodo Shinshu Hongwanjiha sect of Buddhism, some scholars (Masaaki 2025, p. 187) characterize his continental expeditions not as national projects, but as purely academic surveys.

However, such interpretations overlook Otani's hidden connections with the imperial regime. First, he is the head of Jodo Shinshu Hongwanji-ha, the Buddhist sect most closely aligned with state power. Second, his wife Otani Kazuko was the sister of Empress Teimei (consort of Emperor Taisho), which means the Otani family has direct kinship with the imperial household. Thus, while Otani's continental expeditions were not officially commisioned by the emperor, these expeditions should not be framed as purely academic surveys. The Otani Expedition conducted three continental campaigns between 1902 and 1914. Though focused on Central Asia, Otani himself visited India multiple times. While these activities centered on Buddhist scholarship, the frequent appearance of a Japanese expedition—closely tied to the imperial regime—across Central Asia and India at the turnoff the 20th century was inherently suggestive. Did this expedition from Japan, much like those from the West, also covet the Asian continent? The answer is yes. Shirasu Joshin's research on Otani Kozui and Sven Hedin reveals the significant role that continental explorers of the early 20th century played in modern diplomacy (Shirasu 2014). Moreover, Shibata Mikio's research—which reveals Otani

Kozui's ambitious plans for tropical agriculture in Taiwan, the Pan-Asian Development Plan, and a Eurasian railway—lends significant weight to this line of inquiry (Shibata 2014). Considering this broader context,Otani's explorations in Asia appear as a prelude to an emerging Japan's advance onto the Eurasian continent.

Conclusion :-

To Conclude this we had get to know that both Tagore and Tensin share great intellectual ideas as they both share a principle of Pan-Asianism,Historian and cultural critic Rustom Bharucha notes the distinct lack of physical correspondence but the powerful "spiritual friendship" the two shared." We get to know Although their fields Of action were national, colonial India and rapidly modernizing Japan, both realized that the struggle for Cultural survival was not only political or economic, but also artistic and spiritual. Tagore regarded art as a Living force that could arouse a society from within. Through poetry, music, education, and the visual, he Attempted both to reconnect people to the inner cultural resources of India, as well as keeping a humane Openness to the world. Okakura, in similar spirit, defended Japanese and more general Asian aesthetics Against Western artistic domination. By making traditional practices such as the tea ceremony and classical Art into spiritual and philosophical experiences, he came to argue that cultural forms were a cargo of a Nation's soul and required protection from careless imitation and the loss of the cultural.At the core of the thinking on both thinkers is a similar commitment: cultural identity must be preserved, but Not at the cost of freezing culture in the past. They believed modernity could be engaged thoughtfully –Taking what is useful – but safeguarding the values and beauty and wisdom that had its roots in indigenous Traditions. Their cultural revival projects therefore become models of balance: resistance, but not isolation; Modernization, but not self-erasure. At last their ideas were inspired by those million people not only Asia but all over the world.

References :-

1. Cultural Revival And Artistic Consciousness:Tagore And Okakura Tenshin by Dr. Sukanto Mazumder.
2. Choudhury, M. (2008). Rabindranath Tagore: Cultural nationalism and globalism. University Press.
3. Kar, S. (2011). The philosophical foundations of cultural revival: A study of Tagore and Okakura. Indian Journal of Philosophy, 34(2), 115-130.
4. Chakrabarti, A. (2021). Cultural resistance in post-colonial India: Tagore's engagement with Westernization. Indian Cultural Studies Journal, 12(3), 45-60.

5. Tiwari, S. (2020). The modernity of tradition: Okakura Tenshin's philosophical contributions to Japanese cultural thought. Journal of East Asian Philosophy, 8(2), 111-128.
6. Sarkar, P. (2019). Reviving cultural consciousness: Tagore's vision for the future of Indian art and Philosophy. Journal of South Asian Studies, 22(1), 47-59.
7. Kato, H. (2021). The art of cultural preservation: Okakura Tenshin and the transformation of Japan's artistic identity. Japanese Cultural Heritage, 14(2), 85-99.
8. Choudhury, S. (2020). Tagore's philosophy of art and culture: A dynamic approach to spiritual Revival. Indian Journal of Cultural Studies, 15(2), 45-58
9. Mukherjee, R. (2018). Rabindra Sangeet and the cultural politics of nationalism. South Asian Music Review, 12(3), 110-125.
10. Das, A. (2019). Tagore's visual art: A reflection of India's cultural renaissance. Journal of Indian Art And Aesthetics, 21(1), 70-85.
11. Okakura Tenshin and His Contribution to Japan-India Cultural Exchange by Aneesah Nishaat, Soka University, Japan
12. Pan-Asianism in Modern Japanese History Colonialism, regionalism and border Edited by Sven Saaler and J. Victor Koschmann
13. Culture as PowerBuddhist Heritage and the Indo-Japanese Dialogue Edited By Madhu Bhalla
14. Buddhist Exchanges Between India and Japan
15. Japanese Buddhists Encountering India and Modern Buddhist Studies Edited By Ranjana Mukhopadhyaya, Togawa Masahiko
16. ISSN: 2321-9939 | ©IJEDR 2026 January 2026, Volume 14, Issue 1 | www.ijedr.orgIJEDR2601038 International Journal of Engineering Development and Research (www.ijedr.org) 260

Image Credit :-

1. Portrait of Okuhara Tensin and Rabindranath Tagore, Image Credits:- Google

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 217–221

प्राचीन भारत में श्रेणी व्यवस्था और बौद्ध धर्म का अर्न्तसम्बन्ध

विजय कुमार
शोधार्थी, प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय।

शोध सार :–

इस शोध पत्र के द्वारा प्राचीन भारतीय इतिहास में द्वितीय नगरीकरण के बाद विकसित हुये दो महत्वपूर्ण घटकों संस्थागत व्यापारिक संघ और नवीन वैचारिक आन्दोलन बौद्ध धर्म के मध्य अर्न्तसम्बन्धों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। तत्कालीन सामाजिक आर्थिक परिदृश्य में इन दोनों का उदय महज एक संयोग नही था बल्कि एक ऐतिहासिक जरूरत थी। प्राचीन भारतीय समाज में सामाजिक आर्थिक गतिशीलता के मध्य लगी पाबन्दियों के चलते एक ऐसे धर्म का विकास हुआ जिससे पारंपरिक रूढ़िवादिता को नकारते हुये व्यापारिक वर्ग को एक नैतिक स्वीकृति प्रदान की। जिसके बदले में वणिक वर्ग ने बौद्ध धर्म के विकास में योगदान दिया। व्यापारिक संघों ने इन्हें वित्तीय सुरक्षा प्रदान की। इस शोध पत्र में प्राथमिक और पुरातात्विक साक्ष्यों के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया कि कैसे इन दोनों के अर्न्तसम्बन्ध ने भारत के आन्तरिक व्यापार और सुदूर पूर्व के अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार को विस्तृत आकार दिया।

मुख्य बिन्दु :–

- श्रेणी का संस्थागत ढॉचा और उसकी स्वायतता।
- बौद्ध आर्थिक दर्शन एवं वैश्य वर्ग।
- वित्तीय पूँजी और धार्मिक बुनियादी ढाँचा।
- कला स्थापत्य और सामाजिक गतिशीलता।
- वैश्विक विस्तार सिल्क रूट और समुद्री साम्राज्य।
- श्रेणी और बौद्ध धर्म के अर्न्तसम्बन्धों का पतन।

प्रस्तावना :–

छठी शताब्दी ईसा पूर्व हुये लौह तकनीक के विकास ने मध्य गंगा घाटी के सामाजिक आर्थिक ताने–बाने को पूरी तरह से परिवर्तित कर दिया था। कृषि क्षेत्र में हुये अधिशेष उत्पादन के चलते एक बड़ी आबादी का भरण–पोषण हुआ साथ ही गैर कृषि कार्यों जैसे शिल्प, धातु, कुम्हार आदि का विकास हुआ। इसके अलावा आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार को भी बढ़ावा मिला। मार्क्सवादी ऐतिहासिक विचारधारा के संदर्भ में देखे तो भौतिक

आधार पर आया यह बदलाव अनिवार्य रूप से संरचनात्मक बदलाव की मांग कर रहा था।

उत्तरवैदिक काल की सामाजिक संरचना पारम्परिक और रूढ़िवादी थी, जिसमें धन संचय और विदेशी व्यापार को हेय दृष्टि से देखा जाता था। इसके विपरीत इसी समय उदित हुये बौद्ध धर्म नें एक लचीला वैचारिक ढांचा प्रस्तुत किया। इस तरह हम देखते हैं कि एक तरफ जहाँ आर्थिक स्वतंत्रता की तलाश में श्रेणियॉ जुटी थी और दूसरी तरफ नये धार्मिक मानदण्डों की स्थापना करता बौद्ध धर्म था। इन दोनों के मध्य जो अर्न्तसम्बन्ध स्थापित हुआ, उसने प्राचीन भारत के आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास की दिशा तय कर दी।

(1) श्रेणी का संस्थागत ढांचा और उसकी स्वायत्ता :-

प्राचीन भारत में श्रेणी शब्द केवल व्यापारियों के एक समूह का वाचक नहीं था बल्कि यह एक जटिल संप्रभु और कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त वाणिज्यिक संस्था थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं धर्मशास्त्रों से पता चलता है कि श्रेणियों के पास अपने आंतरिक नियम बनाने का पूर्ण अधिकार था जिसे राज्य द्वारा किसी प्रकार की चुनौती भी नही दी जा सकती थी। व्यापारिक श्रेणियों के कार्य बहुआयामी थे जिन्हें वे अपने विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से करवाती थी। ये कार्य निम्नवत् थे।

- कच्चे माल की खरीद एवं मूल्य का निर्धारण करना था।
- कारीगरों के कौशल और गुणवत्ता के मानक का निर्धारण करती थी।
- समकालीन समाज में श्रेणियॉ क्रेडिट बैंक की तरह कार्य करती थी जहाँ राजा से लेकर आम नागरिक तक अपनी पूँजी का निवेश करते थे।

इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि बौद्ध काल तक आते–आते श्रेणियॉ इतनी शक्तिशाली हो गयी थी कि उनके पास सिक्का जारी करने तथा अपने सुरक्षा बल रखने का अधिकार प्राप्त हो गया था।

(2) बौद्ध आर्थिक दर्शन एवं वैश्य वर्ग :-

बौद्ध धर्म को आमतौर पर एक वैराग्यवादी आन्दोलन के रूप में माना जाता है किंतु इसके सुत्तपिटक के अन्दर आर्थिक न्याय और धन संचय को लेकर काफी व्यवहारिक एवं प्रगतिशील विचार दिये गये हैं जिन्हें निम्न रूप में देख सकतें हैं।

(क) धन संचय की धार्मिक वैधता :-

सिगोलावाद सुत्त में बुद्ध ने गृहस्थों को स्वयं सलाह दी थी कि धन का सृजन कैसे किया जाये और चार भागों में कैसे विभाजित किया जाये। उन्होंने बताया एक भाग को उपभोग के लिए दूसरे को व्यवसाय में पुनर्निवेश के लिए और एक भाग भविष्य के संकट के लिए रखा जाये। उपरोक्त विचार वर्तमान वाणिज्यक सिद्धांतों के काफी नजदीक प्रतीत होते है।

(ख) ब्याज और समुद्री यात्राएँ :-

ब्रह्मण ग्रंथ जहां समुद्री यात्रा करने वाले को सामाजिक और धार्मिक रूप से पतित मानते थे वहीं बौद्ध जातक कथाएं महाजनक जातक की तरह समुद्री व्यापारियों को एक नायक के रूप में प्रस्तुत करती हैं। ब्याज पर धन देना ब्रह्मण धर्म में सही नही माना गया वहीं बौद्ध धर्म द्वारा ब्याज की प्रक्रिया को अजीविका का एक वैध साधन माना गया। इससे बैंकिंग क्षेत्र से जुड़ी श्रेणियों का आत्मविश्वास बढ़ा।

(3) वित्तीय पूँजी और धार्मिक बुनियादी ढाँचा :-

श्रेणियों और बौद्ध संघ के बीच का लेन–देन महज अध्यात्मिक नहीं बल्कि एक सोंची समझी व्यवस्था थी जिसे निम्न बिन्दुओं के माध्यम से देख सकते हैं।

(क) अक्षय निधि का अर्थशास्त्र :-

पुरातात्विक और अभिलेखीय साक्ष्य विशेषकर पश्चिमी भारत के नासिक और जूनागढ़ के शिलालेख अक्षय निधि की एक अनूठी व्यवस्था को उजागार करते हैं। कोई भी दानकर्ता किसी विशिष्ट श्रेणी के पास एक निश्चित राशि स्थायी रूप से जमा करा देता था। श्रेणी उस मूल धन को छू नही सकती थी, लेकिन उस पर मिलने वाले मासिक या वार्षिक ब्याज को सीधे बौद्ध बिहारों को हस्तानान्तरित कर दिया जाता था। यह व्यवस्था वह सुनिश्चित करता था कि श्रेणियों के पास व्यापार के लिए पर्याप्त नकदी बनी रहे साथ ही बौद्ध भिक्षुओं को उनके भोजन वस्त्र और दवाओं के लिए बिना किसी अवरोध के वित्तीय सहायता मिलती रहें।

(ख) भूगोल और व्यापारिक मार्ग :-

यदि हम प्राचीन भारत के दो मुख्य मार्ग उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ का अध्ययन करें तो पायेंगे कि बौद्ध चैत्य बिहार ठीक उन्हीं रणनीतिक मोड़ो एवं दर्रों पर स्थित थे। जहाँ व्यापारिक कारवां (सार्थ) विश्राम करते थे। इसी प्रकार पश्चिमी घाट में कार्ला, भाजा और बेडसा की गुफाएँ महज़ पूजा स्थल नहीं थी ये पहाड़ काटकर बनाये गये विशाल परिसर थे, जो व्यापारिक सामानों के सुरक्षित भण्डारण एवं व्यापारियों के लिए ऋण सुविधा के केन्द्र थे। अधिकांश भिक्षु साक्षर होते थे इसलिए वे श्रेणियों के व्यापारिक अनुबंधो और लेखा जोखा के लिए गवाह और मध्यस्थ की भूमिका भी निभाते थे।

(4) कला स्थापत्य और सामाजिक गतिशीलता का लोकतंत्रीकरण :-

प्राचीन भारत मे कला और स्थापत्य मुख्य रूप से शाही खजाने पर निर्भर होते थे। यह प्रथा हमें मुख्यतः मौर्य काल तक दिखाई देती है किंतु मौर्योत्तर काल तक आते–आते कला का स्वरूप पूरी तरह से सामूहिक और लोकतांत्रिक हो गया जहाँ समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा निर्माण कार्य कराये जाने लगे इसमें वणिक वर्ग द्वारा भी बढ़ चढ़ कर भूमिका निभायी गयी। जिन्हें निम्न बिन्दुओं के माध्यम से देख सकते है।

(क) जन सहयोग द्वारा निर्मित स्थापत्य :-

जन सहयोग द्वारा निर्मित स्थापत्य में सांची और भरहुत के स्तूप इसके जीवंत प्रमाण है। सांची के तोंरण द्वार पर राजाओं के नाम की अपेक्षा आम कारीगरों के श्रेणियों के नाम अधिक खुदे हुये हैं। उदाहरण के लिए विदिशा के हाथीदांत शिल्पकारों द्वारा सांची के एक पूरे तोरण द्वार का निर्माण कराया गया था। इससे यह पता चलता है कि श्रेणियों के पास इतना अधिशेष धन था कि वे अपने सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए बौद्ध स्थापत्य में भारी निवेश कर रही थी।

(ख) सामाजिक गतिशीलता में परिवर्तन :-

पारंपरिक ब्रह्मणवादी वर्णव्यवस्था में चर्मकार, कुम्हार, बुनकरों जैसे शिल्पियों को समाज में निचले पायदान पर रखा गया था लेकिन श्रेणी व्यवस्था ने उन्हें आर्थिक सशक्तीकरण प्रदान किया और बौद्ध धर्म ने उन्हें गहपति या श्रेष्ठी जैसी प्रतिष्ठित सामाजिक उपाधियॉ प्रदान की। साथ ही संघ में प्रवेश या संघ को दान देकर ये वर्ग समाज में एक नई पहचान बनाने में कामयाब रहे।

(5) वैश्विक विस्तार : सिल्क रूट और समुद्री सम्राज्य :-

श्रेणियों और बौद्ध धर्म का यह अर्न्तसम्बन्ध केवल भारतीय उपमहाद्वीप तक ही नही सीमित रहा बल्कि इसका गठजोड़ हमें अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर भी दिखाई पड़ता है। हम देखते हैं कुषाण काल में जब सिल्क रूट सक्रिय हुआ तो भारतीय श्रेणियों द्वारा मध्य एशिया में अपने व्यापारिक उपनिवेश स्थापित किये गये। व्यापारियों के रक्षक के रूप में अर्थात सामाजिक एवं धार्मिक मान्यता प्रदान कराने के लिए बौद्ध भिक्षु उनके साथ यात्रा की। जिसके कारण व्यापार वाणिज्य के विकास के साथ–साथ चीन व कोरिया जैसे राष्ट्रों में बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार भी हुआ। इसी प्रकार दक्षिण पूर्व एशिया के साथ समुद्री व्यापार करने वाली दक्षिण भारतीय श्रेणियाँ जैसे मणिग्रामम ने जावा सुमात्रा और कम्बोडिया में बौद्ध संस्कृति की नींव रखी। यहाँ व्यापारिक मुनाफे का एक बड़ा हिस्सा महायान बौद्ध विहारों के निर्माण में लगाया गया, जिससे भारत का सांस्कृतिक प्रभाव वैश्विक स्तर पर स्थापित हुआ।

(6) श्रेणी एवं बौद्ध धर्म के अर्न्तसम्बन्धों का पतन :-

सातवीं शताब्दी तक आते–आते श्रेणियों एवं बौद्ध धर्म के मध्य अर्न्तसम्बन्धों में दरार आने लगी जिसके पीछे अनेक कारक उत्तरदायी थे उनमें से एक कारण आर्थिक था जिसे निम्नवत् स्पष्ट किया जा सकता है।

(क) सामंती अर्थव्यवस्था का उदय :-

गुप्तोत्तर काल तक आते–आते केन्द्रीय सत्ता कमजोर हुयी और भूमि अनुदान की एक नयी प्रथा का जन्म हुआ। राजा अब व्यापारियों को नकद वेतन के बजाय अधिकारियों एवं ब्राह्मणों को सीधा जमीन देने लगा जिससे समाज में एक नवीन सामन्त वर्ग का उदय हुआ। इससे किसानों का शोषण बढ़ा और शिल्पों का विनाश होने लगा। इससे शहरीकरण की व्यवस्था ध्वस्त होने लगी और ऐसे में जब व्यापारिक नगर ही उजड़ गये तो श्रेणियों का आधार ही समाप्त हो गया।

(ख) विहारों में अलगाव और वैचारिक पतन :-

व्यापार वाणिज्य का विनाश एवं व्यापारिक पूँजी बंद होने के कारण बौद्ध विहार आम जनता और श्रेणियों से कट गये। वे अब केवल राजकीय भूमि पर ही निर्भर रहने लगे। सामन्तवाद के इस दौर में बौद्ध धर्म ने अपनी वह प्रगतिशीलता और व्यापार अनुकूल छवि खो दी जिसके चलते कभी वैश्य वर्ग को आकर्षित किया था। परिणामस्वरूप जब 11वीं–12वीं सदी में तुर्क आक्रमण हुये तो वित्तीय और सामाजिक रूप से कमजोर हो चुके बौद्ध केन्द्र पूरी तरह से ढ़ह गये।

निष्कर्ष :-

अतः उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि श्रेणियों एवं बौद्ध धर्म के मध्य अर्न्तसम्बन्ध दोनों की आवश्यकता थी। जहां एक तरफ बौद्ध धर्म ने पारंपरिक रूढ़िवादी मान्यताओं का खण्डन करके व्यापार वाणिज्य के विस्तार में श्रेणियों की मदद की और उन्हें समाज में एक उच्च स्थान प्राप्त करवाया। वहीं श्रेणियों ने बौद्ध धर्म को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करके राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार–प्रसार में सहयोग प्रदान किया। क्योंकि किसी भी वैचारिक क्रांति को सफल बनाने के लिए आर्थिक मजबूति महत्वपूर्ण होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. श्याम मनोहर मिश्र, भारत मे आर्थिक जीवन (प्रामानिक पब्लिकेशन्स इलाहाबाद, 1997) पृ0–223
2. डी.डी. कौशाम्बी, एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी आफ इण्डियन हिस्टोरी (बाम्बे पापुलर प्रकाशन, 1996) पृ0–138–140
3. रोमिला थापर, फ्राम लीनिमेज टू स्टेट सोशल रिफार्मेशन्स इन द मिड द फर्स्ट मिलेनियम B.C (आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1984) पृ0–95
4. आर.सी. मजूमदार, कार्पोरेट लाइफ इन एनसियन्ट इण्डिया (कलकत्ता युनिवर्सिटी प्रेस, 1992) पृ0–45–48
5. रामशरण शर्मा, मैटेरियल कल्चर एण्ड सोशल रिफार्मस इन एनसियन्ट इण्डिया (मैकमिलन, 1983) पृ0–112
6. दीर्घ निकाय, सिगोलावाद सुत्त (31)
7. डा0 भरत सिंह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल (सम्यक प्रकाशन, 2021) पृ0–397–400
8. डा0 मदन मोहन सिह, बुद्ध कालीन समाज और धर्म (बिहार हिन्दी ग्रंथ, अकादमी पटना प्रकाशन, 2017) पृ0–22–24
9. डा0 गोविन्द चन्द्र पाण्डें, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान प्रकाशन लखनऊ, 2015) पृ0–105–120
10. डी.एन. झा, एनसियन्ट इण्डिया इन हिस्टोरिकल आउटलाइन (पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1998) पृ0–142
11. डा0 भरत सिंह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल (सम्यक प्रकाशन, 2021) पृ0–403–407
12. श्याम मनोहर मिश्र, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन (प्रमानिक पब्लिकेशन्स इलाहाबाद, 1997)
13. डा0 भरत सिंह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल (सम्यक प्रकाशन, 2021) पृ0–217–225
14. डा0 यमुना काल, प्राचीन भारत में बौद्ध धर्म प्रचारक, (सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009)
    डा0 भरत सिंह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल (सम्यक प्रकाशन, 2021) पृ0–185–190
15. डा0 मदन मोहन सिंह, बुद्ध कालीन समाज और धर्म (विहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना प्रकाशन, 2017)
    डा0 भरत सिंह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल (सम्यक प्रकाशन, 2021) पृ0–29–30
16. श्याम मनोहर मिश्र, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन (प्रमानिक पब्लिकेशन्स इलाहाबाद, 1997)
    डा0 भरत सिंह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल (सम्यक प्रकाशन, 2021) पृ0–229–230

vijayalimau@gmail.com

9807362643

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गिना प्रकाशन द्वारा
जयपुर, भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540
Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :
Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना देवी शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय #202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

कोमल गांधार नाटक में नारी अस्मिता और आत्मसंघर्ष का विमर्श

Authored by

डॉ. शालिनी सी.

सह–प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
राजकीय महिला महाविद्यालय, वझुथाकौड, तिरुवनंतपुरम,
केरल–695014

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 08-17

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

अनुराधा बेनीवाल की यादों के दस्तावेज : लोग जो मुझमें रह गए

Authored by

भँवरी महरानिया

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 18-21

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

आधुनिक स्त्री की चेतना और स्वर : मंजुल भगत के उपन्यास "टूटा हूआ इन्द्रधनुष" के परिप्रेक्ष्य में

Authored by

अंजली प्रकाश, शोधार्थी,

Department Of Hindi, Nirmala College Muvattupuzha (Autonomous)
Affiliated to Mahatma Gandhi University, Kottayam.

डॉ. श्रीजा जी. आर, शोध निर्देशिका,

Assistant Professor, Nirmala College Muvattupuzha.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,

Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 22-25

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

The Politics of Vilification : Eurocentrism, Ethnocentrism, and the Discursive Construction of India as an Intolerant Civilization

Authored by

Mr. Hari Shanker Singh

Ph.D. Scholar, Department of Political Science,
University of Delhi.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 26-43

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

ग्रामीण रोजगार का सामाजिक व्यवस्था पर प्रभाव

Authored by

डॉ. रंजना सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, छत्रपति शाहूजी महिला महाविद्यालय,
कर्वी, जनपद–चित्रकूट।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 44-47

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

TRAINING FOR YOUTH IN TRANSISITION : A HOLISTIC DEVELOPMENT MODEL TO FOSTER CONFIDENCE, COURAGE AND CHARACTER

Authored by

Vikram Kumar

Assistant Professor (Guest Faculty)
Department of Zoology,
Govt. Girls College, Pokaran, Dist- Jaisalmer (Rajasthan)
INDIA

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 48-54

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

अद्वैत वेदान्त परम्परागत गुरू–शिष्य सम्बन्ध की वर्तमान में प्रासंगिकता

Authored by

गायत्री मिड्ढ़ा

शोधार्थी, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,
अमृतसर, पंजाब।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 55-58

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

Displacement And Identity in Bengal : Narratives of Refugee Lives Across Borders

Authored by

Sagar Sarker
Research Scholar, Department of Political Science
Munger university, Munger, Bihar -811201

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 59-65

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

প্রথম প্রতিশ্রুতি উপন্যাসে নারীমুক্তি ও সমাজ-বাস্তবতা

Authored by

রতন বর্মন (গবেষক)

মুঙ্গের বিশ্ববিদ্যালয়, বাংলা বিভাগ মুঙ্গের, বিহার - 811201

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 66-70

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

POLITICS OF AUTONOMY IN SIXTH SCHEDULE AREAS IN NORTHEAST INDIA

Authored by

Tina Kimngaiting Vaiphei
PhD Scholar, Department of Political Science,
University of Delhi.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 71-77

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

स्वयं सहायता समूह और महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण

Authored by

सोनम डावर, शोधार्थी (समाज कार्य)

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

डॉ. वर्षा पटेल, शोध निर्देशिका, सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र)

श्री अटल बिहारी वाजपेयी, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 78-85

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

An Analytical Study of India- Bangladesh Relations : Recent Challenges and Possibilities

Authored by

Prof. Bina Rai, Principal,
Avadh Girls' Degree College, University of Lucknow.

Nikhil Kumar Rai, Ph.D Research Scholar,
Department of Political Science, University of Lucknow

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 86-94

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

Digital Governance and the Transformation of the Welfare State :A Case Study of the Parivar Pehchan Patra (PPP) in Haryana

Authored by

Kamal

Research Scholar, Department of Political Science
University of Delhi, New Delhi.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 95-106

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

रीवा जिले में महिला उद्यमिता एवं स्वरोजगारमूलक योजनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन

Authored by

डॉ. मनीष शुक्ला, प्राध्यापक (वाणिज्य),
शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म0प्र0)

शालिनी श्रीवास्तव, शोधार्थी (वाणिज्य),
शासकीय टी.आर.एस. महाविद्यालय, रीवा (म0प्र0)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 107-116

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

1857 की क्रांति से 1947 तक : स्वतंत्रता संग्राम में मुसलमानों का योगदान

Authored by

खालिक हुसैन

यूजीसी–नेट, इतिहास, शोध अध्येता,
इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 117-122

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

अतिपिछड़ा वर्ग, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक राजनीति : लालू प्रसाद यादव युग का मूल्यांकन

Authored by

आरती कुमारी साह, शोध निर्देशित, विश्वविद्यालय अर्थशास्त्र विभाग,
बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।

नवल कुमार, शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग,
बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 123-126

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

आधुनिक नारीवाद और ताराबाई शिन्दे का वैचारिक दर्शन : एक अवलोकन

Authored by

डॉ. अरूण कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान)
राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 127-131

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

नक्सलवाद : समस्या एवं निराकरण हेतु सुझाव

Authored by

डॉ. जय शंकर पाण्डेय

विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र विभाग)

अवधूत भगवान राम पी.जी. कॉलेज, अनपरा, सोनभद्र।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 132-136

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

Role of Women in India's Freedom Movement and Political Development

Authored by

Dr. Ansari Naseem Jameel Ahmed

Assistant Professor in Political Science
MGV's Arts, Commerce & Science College,
Malegaon City. (Autonomous)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 137-144

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

The Role of Microfinance in India's Economic Development and Financial Inclusion

Authored by

Dr. Sanjeev Kumar Bansal, Associate Professor, Deptt. of Commerce
S.N.D.B. Govt. P.G. College, Nohar (Raj.)

Akashdeep, Research Scholar, Deptt. of Commerce
S.N.D.B. Govt. P.G. College, Nohar (Raj.)

Suhani Bharadiya, MA Economics,
Maharana Pratap Govt. P.G. College, Chittorgarh (Raj.)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 145-161

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

'छोटा जादूगर' और 'परायी प्यास का सफर' कहानियों में निहित बाल श्रम

Authored by

उपासना

शोधार्थी

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 162-168

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

Corporate Governance and Corporate Social Responsibility : A Legal Perspective

Authored by

Dr. Anita Parmar

Assistant Professor, School of Law,
Prestige Institute of Management And Research, Indore,
Deemed to be University.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 169-190

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

Caste, Untouchability and the Law : Its Origin and Contemporary Forms

Authored by

Mukesh Kumar

Ph.D. Research Scholar
Department of Political Science,
University of Delhi.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 191-198

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

DR. B. R. AMBEDKAR : A BEACON OF HOPE FOR HUMAN RIGHTS IN INDIA

Authored by

Maheshpal
Research Scholar, Department of History,
University Of Delhi.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 199-205

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

Okakura Tenzing interaction with Rabindranath Tagore

Authored by

Ankur Majumdar
Research Scholar,
Department of East Asian studies, University of Delhi.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 206-216

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

प्राचीन भारत में श्रेणी व्यवस्था और बौद्ध धर्म का अर्न्तसम्बन्ध

Authored by

विजय कुमार

शोधार्थी, प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-1, Page No. 217-221

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com